उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

MAHI-108(N)

आधुनिक गद्य

उपन्यास : स्वरुप एवं विकास

खंड

1

उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-I

इकाई-1
आख्यान के विभिन्न रूप और उपन्यास 7

इकाई-2
उपन्यास का अर्थ और स्वरूप 17

इकाई-3
उपन्यास का उदय तथा उसके कारण 25

इकाई-4
उपन्यास और अन्य विधाएँ 34

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन
ए-20/17, कुतुब एन्क्लेव,
फ़ेज-1, गुड़गाँव, हरियाणा

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. असगर वज़ाहत
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली

प्रो. गोपाल राय
सी-3, कावेरी, इग्नो आवासीय
परिसर, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. सत्यप्रकाश मिश्र
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रो. ललिताम्बा
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इंदौर, मध्य प्रदेश

संकाय सदस्य
प्रो. वी.रा. जगन्नाथन
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. रीता रानी पालीवाल
डॉ. सत्यकाम
डॉ. राकेश वत्स
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. विमल खांडेकर
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक
प्रो. परमानंद श्रीवास्तव
गोरखपुर

इकाई संख्या
1 से 4

संपादक
प्रो. जवरीमल्ल पारख

पाठ्यक्रम संयोजक
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रोफेसर, हिंदी संकाय
इं.गां.रा.मु.वि.

सामग्री निर्माण सहयोग

मुद्रण
श्री कुलवंत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ
इं.गां.रा.मु.वि.

कैमरा रेड्डी कॉपी निर्माण
श्री नरेश कुमार
निजी सहायक
मानविकी विद्यापीठ
इं.गां.रा.मु.वि.

आवरण सज्जा
सुश्री पन्ने कुँवर बच्छावत

फरवरी, 2004 (पुनः मुद्रण)

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2002

ISBN- 81-266-0539-1

सर्वाधिकार सुरक्षित । इस सामग्री के किसी भी अंश को इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय मैदानगढ़ी, नई दिल्ली-68 से प्राप्त की जा सकती है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित, 2024

मुद्रक : के. सी. प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा - 281003.

पाठ्यक्रम का परिचय

एम.ए. के द्वितीय वर्ष में आप 16 क्रेडिट के 4 पाठ्यक्रमों का 'उपन्यास' नामक माड्यूलर पढ़ रहे हैं। इन चारों पाठ्यक्रमों में सबसे पहला पाठ्यक्रम (एम.एच.डी.-13) 'उपन्यास : स्वरूप और विकास' है। यह पाठ्यक्रम कुल 5 खंडों में विभाजित है और प्रत्येक खंड में कुल 4 इकाइयाँ हैं। इस प्रकार पूरे पाठ्यक्रम में कुल 20 इकाइयाँ हैं। इस माड्यूलर के सभी पाठ्यक्रम 4-4 क्रेडिट के हैं। यह पाठ्यक्रम भी 4 क्रेडिट का है।

'उपन्यास : स्वरूप और विकास' नामक इस पाठ्यक्रम में उपन्यास के सैद्धांतिक पक्ष की विवेचना की गई है। इसके साथ ही विश्व साहित्य, भारतीय साहित्य और हिंदी साहित्य में उपन्यासों के विकास पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उपन्यास के सिद्धांत पक्ष पर चर्चा करते हुए इस पाठ्यक्रम के आरंभ में ही एक विधा के रूप में उपन्यास के विकसित होने का उल्लेख किया गया है। उपन्यास यद्यपि एक आधुनिक विधा है और जैसा कि आप इकाइयों में पढ़ेंगे कि इसके विकास का संबंध पूंजीवाद के विकास के साथ जुड़ा है। लेकिन इसके सूत्र हमें उपन्यास के अस्तित्व में आने से पहले के कई साहित्यिक रूपों में मिल जाते हैं जिनमें आख्यान के विविध रूप शामिल हैं। उपन्यास के लोकप्रिय होने के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में एक अन्य घटना घटित हुई और वह थी एक विधा के रूप में महाकाव्य का धीरे-धीरे विलोपन। इस पाठ्यक्रम में इस बात पर भी विचार किया गया है कि क्या उपन्यास के उदय का महाकाव्य के विलोपित होने से कोई संबंध है? क्या उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जा सकता है? उपन्यास के उदय के इन विभिन्न कारणों के साथ-साथ इस पाठ्यक्रम में उन विधाओं के साथ इनके संबंधों की भी चर्चा की गई है जिन्होंने उपन्यास की गतिशीलता को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। इन विधाओं में कथात्मक और कथेतर दोनों तरह की विधाएँ शामिल हैं। हाल की परिघटना यह है कि फिल्म, टेलीविज़न आदि दृश्य माध्यमों ने भी उपन्यास के स्वरूप पर प्रभाव डालना शुरू कर दिया है जिसे जानना और समझना काफी रोचक होगा।

उपन्यास के सिद्धांत पक्ष पर चर्चा करते हुए उसके वस्तु और शिल्प पक्ष पर, उसकी भाषिक संरचना पर तथा विभिन्न तरह के उपन्यासों के लेखन से उपजे इस सवाल पर कि उपन्यास को किन-किन आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है, इस पर भी पाठ्यक्रम में विचार किया गया है।। उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति का प्रश्न कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। एक साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास को जाँचने और समझने की विभिन्न दृष्टियों का मूल्यांकन भी उपन्यास के सैद्धांतिक पक्ष को समझने में सहायक होगा।

उपन्यास के विकास को समझने के लिए यह जानना भी ज़रूरी है कि हिंदी और दूसरी भाषाओं में उपन्यास लेखन का विकास किस रूप में हुआ। दूसरी भाषाओं में भारतीय भाषाओं तथा दूसरे देशों की भाषाओं में लिखा गया उपन्यास साहित्य शामिल है। इस बात को स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए कि उपन्यास से हिंदुस्तानियों का परिचय यूरोप के माध्यम से हुआ। अंग्रेजी भाषा में लिखे गये उपन्यासों या अंग्रेजी में अनूदित उपन्यासों के माध्यम से भारतीय पाठकों और लेखकों ने उपन्यास विधा से परिचय प्राप्त किया जिसका स्पष्ट प्रभाव 19वीं शताब्दी में उपन्यास लेखन के प्रयत्नों में देख सकते हैं। आज भारतीय उपन्यास ने अपनी एक स्वतंत्र पहचान बना ली है। इस भारतीय उपन्यास साहित्य में हिंदी का भी कम योगदान नहीं है जिसने प्रेमचंद, अज्ञेय, रेणु जैसे महान् उपन्यासकार दिये हैं। हमने इस पाठ्यक्रम में 'विश्व साहित्य में उपन्यास', 'भारतीय साहित्य में उपन्यास' और 'हिंदी साहित्य में उपन्यास' नाम से तीन अलग-अलग खंड दिये हैं जिनसे आपको उपन्यास के समृद्ध भण्डार को जानने और समझने का अवसर मिलेगा। इस पूरे पाठ्यक्रम का खंडवार और इकाईवार विवरण नीचे दिया गया है :

खंड-1 : उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-।

इकाई-1 आख्यान के विभिन्न रूप और उपन्यास
इकाई-2 उपन्यास का अर्थ और स्वरूप
इकाई-3 उपन्यास का उदय तथा उसके कारण
इकाई-4 उपन्यास और अन्य विधाएँ

खंड-2 : उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-II

इकाई-1 उपन्यास : वस्तु और शिल्प

इकाई-2 उपन्यास की भाषिक संरचना

इकाई-3 उपन्यास : वर्गीकरण तथा उसके विभिन्न आधार

इकाई-4 उपन्यास की आलोचना दृष्टियाँ

खंड-3 : विश्व साहित्य में उपन्यास

इकाई-1 विश्व साहित्य में उपन्यास का उदय और प्रथम विश्वयुद्ध तक के उपन्यास (1919 तक)

इकाई-2 द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व के उपन्यास (1919-1945)

इकाई-3 द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के उपन्यास

इकाई-4 तीसरी दुनिया के उपन्यास

इन इकाइयों का अध्ययन करते हुए आप महसूस करेंगे कि इनमें बार-बार विभिन्न उपन्यासों का उल्लेख किया गया है। इसलिए यह ज़रूरी है कि आप अधिक से अधिक इन प्रतिनिधि उपन्यासों को ज़रूर पढ़ें, जिनको पढ़कर आपको उपन्यास के स्वरूप और विकास को समझने में बहुत अधिक मदद मिलेगी। इसके साथ ही आपने इन इकाइयों में देखा होगा कि जार्ज लुकाच, राल्फ फॉक्स, प्रेमचंद आदि महत्वपूर्ण लेखकों का नामोल्लेख बार-बार हुआ है। उनकी बातों को उद्धृत किया गया है। ऐसे कई लेखकों ने उपन्यास के सिद्धांत पक्ष पर गंभीरता से विचार किया है। उपन्यास के सिद्धांत पक्ष पर लिखे गये ऐसे कुछ महत्वपूर्ण लेखों या पुस्तक अंशों को हमने अलग से पुस्ताकार प्रकाशित किया है। आप 'उपन्यास-सिद्धांत विवेचना' नामक पुस्तक को भी अवश्य पढ़ें ताकि आपको इस पाठ्यक्रम को समझने में सहायता मिले।

शुभकामनाओं सहित!

खंड 1 का परिचय

एम.ए. हिंदी के द्वितीय वर्ष में 'उपन्यास' नामक मॉड्युलर के पाठ्यक्रम 'उपन्यास : स्वरूप और विकास' का पहला खंड 'उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-।' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस खंड में कुल चार इकाइयां हैं जो निम्न प्रकार हैं :

1. आख्यान के विभिन्न रूप और उपन्यास
2. उपन्यास का अर्थ और स्वरूप
3. उपन्यास का उदय तथा उसके कारण
4. उपन्यास और अन्य विधाएँ

पहली इकाई में आप आख्यान की परंपरा का परिचय प्राप्त करेंगे। इसके साथ ही उपन्यास विधा को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयत्न करेंगे। अंग्रेजी के 'नॉवेल' शब्द के पर्याय के रूप में प्रचलित विभिन्न भारतीय शब्दों में उपन्यास की विभिन्न अर्थ-छवियों का भी इकाई में विवेचन किया गया है। इस इकाई में उपन्यास और यथार्थ के अंतःसंबंधों, उपन्यास की लोकप्रियता, उपन्यास और पाठक वर्ग और उपन्यास के विविध रूपों पर भी विचार किया गया है। इस इकाई को पढ़ने से आपके सम्मुख उपन्यास की सैद्धांतिकी की पर्तें खुलने लगेंगी।

इस खंड की दूसरी इकाई का शीर्षक है : 'उपन्यास का अर्थ और स्वरूप'। इस इकाई में आरंभ में उपन्यास के अर्थ और उसके विभिन्न नामांतरणों पर विचार किया गया है। इसके बाद उपन्यास में यथार्थ और संभाव्यता पर भी विचार किया गया है यानी कि उपन्यास का संबंध 'जो है', उससे ही नहीं है, बल्कि 'जो हो सकता है' और 'जो होना चाहिए' से भी है। इकाई में आगे उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर भी प्रकाश डाला गया है। इनमें आदर्श, फंतासी, नाटकीयता, रोमांस तत्व, जादुई तत्व आदि के यथार्थ से संबंधों की भी उपन्यास के संदर्भ में विवेचना की गई है। उपन्यास के उदय के साथ-साथ यथार्थवाद की अवधारणा का भी विकास हुआ है। इकाई में इस पक्ष की भी संक्षिप्त चर्चा की गई है।

खंड की तीसरी इकाई 'उपन्यास का उदय और उसके कारण' में उन परिस्थितियों पर विचार किया गया है जिन्होंने उपन्यास विधा के उदय को संभव बनाया। इकाई के आरंभ में उन्नीसवीं सदी में भारतीय उपन्यास के उदय की रूपरेखा पेश की गई है। बाद में उपन्यास के उदय के कारणों पर विचार करते हुए सामंतवाद के पतन, पूंजीवादी सभ्यता के विकास, आधुनिक मध्यवर्ग का उदय, मुद्रण कला का विकास और पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन पर भी विचार किया गया है। उपन्यास के उदय का संबंध गद्य के विकास से भी है, इसलिए इस पहलू पर भी इकाई में प्रकाश डाला गया है। इकाई में उपन्यास की संरचना के संदर्भ में नये पाठक वर्ग के उदय, उपन्यास में देश-काल का चित्रण, किसान-चेतना और स्त्री चेतना की उपन्यासों में अभिव्यक्ति और नायकत्व की संकल्पना का भी विवेचन किया गया है।

खंड की अंतिम इकाई में साहित्य की अन्य विधाओं के संदर्भ में उपन्यास विधा पर विचार किया गया है। सबसे पहले उपन्यास और महाकाव्य के अंतःसंबंधों पर प्रकाश डाला गया है। बाद में अन्य गद्य विधाओं के साथ उपन्यास की तुलना की गई है। इसके साथ ही यह भी देखा गया है कि इन विधाओं के किन पक्षों का उपन्यास पर प्रभाव दिखाई देता है। इन गद्य विधाओं में कहानी, आत्मकथा, जीवनी को विशेष रूप से लिया गया है। इकाई के अंत में दृश्य माध्यमों के विकास का इस विधा पर पड़ने वाले प्रभाव को भी समझने की कोशिश की गई है।

इन चारों इकाइयों को पढ़ने से आपके सामने उपन्यास के सिद्धांत पक्ष की कुछ आरंभिक लेकिन अहम बातें स्पष्ट होंगी। दूसरे खंड में हम उपन्यास की आंतरिक संरचना पर ज्यादा सूक्ष्मता और ज्यादा गहराई से विचार करने की ओर अग्रसर होंगे।

इकाई 1 आख्यान के विभिन्न रूप और उपन्यास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 आख्यान : अर्थ और परंपरा
1.3 उपन्यास विधा : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
1.4 उपन्यास के विविध भारतीय पर्याय
1.5 उपन्यास और यथार्थ का संबंध
1.6 उपन्यास की लोकप्रियता
1.7 उपन्यास और पाठक वर्ग
1.8 उपन्यास के विविध रूप
    1.8.1 उपन्यास और उपन्यासिका
    1.8.2 उपन्यास और लघु उपन्यास
1.9 सारांश

1.0 उद्देश्य

एम.ए. हिंदी के द्वितीय वर्ष के उपन्यास से संबंधित मॉड्यूल के पाठ्यक्रम 'उपन्यास : स्वरूप और विकास' से संबंधित पहले खंड : 'उपन्यास : स्वरूप और विकास' की यह पहली इकाई है। इस इकाई के अंतर्गत हम पहले 'आख्यान' शब्द की सीमा और सार्थकता पर विचार करेंगे और उसके अर्थ तथा परम्परा की चर्चा करने के साथ 'उपन्यास' नामक विधा के रूप की विशिष्टता पर ध्यान देंगे। हम पहले ही स्वीकार कर लें कि उपन्यास एक आधुनिक गद्य-रूप है जो जस का तस आख्यान नहीं है पर आख्यान और आख्यायिका के अनेक रूपों से प्रभाावित नया साहित्य रूप है जो आधुनिक जीवन के यथार्थ से स्फूर्ति प्राप्त करता है। और अन्य भाषाओं में प्रचलित पर्याय-शब्दों से अलग-अलग प्रभाव और प्रेरणा ग्रहण करता है। जैसे अंग्रेजी में या अंगरेजी ढंग का 'नावेल', गुजराती में 'नवल कथा', मराठी में 'कादम्बरी', बंगला में 'उपन्यास'। कह सकते हैं कि आख्यान या वृत्तांत (नैरेटिव) के अनेक रूपों में ही एक है उपन्यास। पर अपनी निजी विशेषताओं के साथ। इस इकाई में हम इन्हीं सब पहलुओं पर विचार करेंगे। इस इकाई को पढ़ने से आप उपन्यास के पूर्व रूपों की पहचान कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप आख्यान के विभिन्न रूपों और उपन्यास के विकास की पृष्ठभूमि पर विचार करने जा रहे हैं। इस पाठ्यक्रम में आप उपन्यास नामक विधा के सैद्धांतिक पहलुओं पर विचार करेंगे। उपन्यास एक कथात्मक गद्य विधा है। साहित्य में काव्य के अध्ययन की एक लंबी परंपरा रही है। इस दृष्टि से उपन्यास के अध्ययन की शुरूआत अपेक्षाकृत हाल की घटना है। महत्वपूर्ण यह है कि पहले एम.ए. स्तर के विश्वविद्यालय अध्ययन-अध्यापन में बहुत-सा पाठ्यक्रम कविता-केंद्रित रहा है। आधुनिक युग में अकारण नहीं है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आधुनिक काल को 'गद्य-काल' संज्ञा दी है। याद रखें कि उपन्यास को औद्योगिक सभ्यता, प्रेस की स्थापना और मध्यवर्ग के उदय के साथ सम्बद्ध करके आधुनिक जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। भारतीय जीवन के यथार्थ से सम्बद्ध करते हुए उसे किसान जीवन का महाकाव्य भी कहा गया है। हालांकि दुनिया भर में उपन्यास में नगरीय जीवन की ही प्रधानता अधिक रही है। हिंदी भी इसका अपवाद नहीं है। इधर के प्रयोगों में इस साहित्य-रूप को स्त्री-जीवन की त्रासदी से सम्बद्ध करके भी देखा गया है।

हिंदी साहित्य का अध्ययन करते हुए हमें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि उपन्यास को आमतौर पर योरोपीय साहित्य रूप माना जाता है। स्वयं इतिहासकार रामचंद्र शुक्ल ने जब आधुनिक गद्य के प्रथम उत्थान का उल्लेख किया और श्रीनिवास दास के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' को पहला हिंदी उपन्यास कहा तो उनके शब्द थे : "अंगरेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले पहल हिंदी में लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु' ही निकला था।" साथ ही उन्होंने पहले जोड़ा - "नाटकों और

निबंधों की ओर विशेष झुकाव होने पर भी बंगभाषा की देखा-देखी नए ढंग के उपन्यासों की ओर भी ध्यान जा चुका था।' इस प्रकार उपन्यास हिंदी में अनुवादों के रास्ते आने वाला नया गद्य-रूप है। उसकी भारतीयता सिद्ध करने के लिए हम आख्यान के व्यापक भारतीय अर्थ और प्रकारों का स्मरण कर सकते हैं पर है वह नये युग की नयी वास्तविकता का परिणाम।

1.2 आख्यान : अर्थ और परम्परा

'आख्यान' का सामान्य अर्थ है - कथन, निवेदन, कथा-कहानी पुरावृत्त कथँन, ऐतिहासिक-पौराणिक कथा। कथा, कथानक, आख्यायिका, वृत्तांत - ये आख्यान के ही पर्याय हैं। महाभारत यदि एक तरह का आख्यान है तो कादम्बरी दूसरे प्रकार का आख्यान है। आख्यान की अपनी परम्परा रही है। साहित्य पुराने आख्यानों की ओर पहले भी जाता रहा है पर तब उद्देश्य कुछ और था कि कथा प्रामाणिक हो, जनप्रिय हो, जिसके कारण रसोद्‌बोधन में बाधा न उपस्थित हो। नाटक' ख्यातवृत्त' में ख्यातवृत्त का मुख्य कारण ही यह था कि उस वृत्त या आख्यान के विरूद्ध जाना संभव न हो। अब स्थितियाँ बदल गयी हैं। राम जैसे पौराणिक चरित्रों के भी कई-कई आख्यान हैं और कल्पना का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि 'अपने अपने राम' (लेखक : भगवान सिंह) जैसा उपन्यास भी लिखा जा सकता है। कथा-समीक्षक देवीशंकर अवस्थी ने कहा है कि आधुनिक मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, नृतत्वशास्त्र या इतिहास ने इन वृत्तों की प्रामाणिक ख्याति को नष्ट कर दिया है। इसलिए उपन्यास आख्यान-परम्परा में होकर भी नया साहित्य रूप है। यहाँ ऐतिहासिक कल्पना भी सर्जनात्मक रूप ले लेती है, तभी उपन्यास संभव होता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी उपन्यास को गल्प कहते हैं, यह इसी कल्पना को ध्यान में रखकर।

1.3 उपन्यास विधा : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

जैसा हमने अब तक अनुभव किया है कि उपन्यास रचना के स्रोत चाहे, जिन आख्यान रूपों में हों - रामायण-महाभारत में, गुणाढ्य की वृहत्कथा में, बौद्ध जातक कथाओं में, बाणभट्‌ट की कादम्बरी में, अरबी-फारसी की दास्तान-परम्परा में या फिर अंगरेजी ढंग के नावेल में - भारतीय उपन्यास का जन्म आधुनिक युग की वास्तविकता से ही हुआ है और अनेक प्रभावों को लिये-दिये नया गद्य-रूप बना है। हिंदी उपन्यास का जन्म भी आधुनिक युग की परिस्थितियों से ही हुआ है। लाला श्रीनिवासदास के परीक्षागुरु' (1882) को भले ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पहला अंग्रेजी ढंग का नावेल कहा हो पर वास्तविकता यह है कि सभी आरंभिक उपन्यास 'अंग्रेजी ढंग का नावेल' बन नहीं पाते। ठाकुर जगमोहन सिंह के श्यामा स्वप्न को किसी अर्थ में अंग्रेजी ढंग का नावेल नहीं कहा जा सकता। स्वयं लेखक ने इसे गद्य प्रधान चार खण्डो में एक कल्पना' कहा है। हिंदी उपन्यास की परम्परा को पीछे ले जाने के लिए कुछ लोग देवरानी जेठानी की कहानी' (1870) और 'भाग्यवती' (1872) को हिंदी के पहले उपन्यासों में गिनते हैं पर हैं ये स्त्रीजनोचित शिक्षा के ग्रंथ। शिक्षामूलक सुधारवाद से हिंदी के अनेक उपन्यास उस दौर में प्रभावित हैं। जैसे, 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान (बालकृष्ण भट्‌ट) निस्सहाय हिंदू (राधाकृष्ण दास)। देवकीनंदन खत्री का अत्यंत लोकप्रिय तिलस्मी उपन्यास 'चन्द्रकाता (1891) आश्चर्यजनक रूप से स्वाधीनताकाल के संघर्ष की याद दिलाता है। इस समय के अन्य उपन्यास है प्रणयनी परिणय और 'हृदयहारिणी' (किशोरी लाल गोस्वामी)।

हिंदी में उपन्यास लेखन के इन आरंभिक प्रयासों में औपन्यासिक कला को विकसित करने की ओर अधिक ध्यान नहीं गया था बल्कि उस उद्देश्य पर ध्यान ज्यादा था जिसके द्वारा वे अपनी बात पाठकों को रोचक ढंग से समझा सकें। यह प्रवृत्ति सिर्फ हिंदी में ही नहीं दिखाई देती बल्कि यूरोपीय उपन्यासों में भी दिखाई देती है जहाँ इस विधा का जन्म हुआ था। लेकिन धीरे-धीरे जब उपन्यास का लेखन बढ़ता गया उपन्यासकारों का ध्यान उपन्यास के शिल्प को विकसित करने की ओर भी गया। यहाँ शिल्प से तात्पर्य उपन्यास कला से ही नहीं वरन् उपन्यास की अंतर्वस्तु में निहित उस नजरिए से भी है जो हर दौर में परिस्थितियों के साथ अंतर्क्रिया में बदलता रहा है।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यास में स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद या आदर्शवाद और यथार्थवाद का संगठन देखा जा सकता है। प्रेमचंद (1880-1936) ने उपन्यास लिखते हुए एक नये प्रकार के यथार्थवाद से परिचित कराया। वे 'सेवासदन' (1918), 'प्रेमाश्रम' (1922), 'रंगभूमि' (1924), 'गबन' (1930),

'कर्मभूमि ' (1932), 'गोदान ' (1936) लिखने के क्रम में मुख्यतः गांधीवाद और अंतिम चरण में मार्क्सवाद से प्रभावित हुए। जहाँ स्वाधीनता-संघर्ष-काल का वे एक तरह का इतिहास लिखते हैं वहीं 'गोदान' में वे किसान जीवन की त्रासदी भी चित्रित करते हैं। 'निर्मला' जैसे लघु उपन्यास के आधार पर उन्हें स्त्रीचेतना के उपन्यासकार के रूप में भी देखा गया है। जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों में 'कंकाल' यथार्थपरक है तो 'तितली' भावात्मक आदर्शवाद से प्रेरित है। जैनेन्द्र कुमार के आरंभिक उपन्यासों - 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' के साथ ही एक नया शिल्प विकसित हुआ। बाद के उपन्यासों को उन्हीं का विस्तार कहा जा सकता है। जैनेन्द्र अपने उपन्यासों में एक नयी नैतिकतावादी दृष्टि के लेखक के रूप में जाने गये। वृंदावन लाल वर्मा ने 'गढ़कुंडार' और 'मृगनयनी' लिखकर सौंदर्य-प्रेम-केंद्रित ऐतिहासिक उपन्यास की रूपरेखा बनायी।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास के इतिहास में 'शेखर एक जीवनी' (1941) के लिए विशेष चर्चित हुए। यह उपन्यास रोमांटिक विद्रोह की कथा के रूप मे प्रसिद्ध है और एक नये काव्यात्मक गद्य का उदाहरण है। उनके अन्य उपन्यास हैं - 'नदी के द्वीप' (1951) और 'अपने अपने अजनबी' (1961)। इनमें एक यदि प्रेमकथा है तो दूसरे में जीवन और अस्तित्व के जटिल प्रश्न हैं। यशपाल का 'झूठा सच' (1958-1964) देश विभाजन की त्रासदी को बड़े फलक पर चित्रित करने वाला उपन्यास है। इससे पहले के महत्वपूर्ण उपन्यासों में हैं 'चित्रलेखा' (भगवती चरण वर्मा, 1934) और 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (हजारीप्रसाद द्विवेदी, 1946)। 1941 में ही इलाचंद्र जोशी का उपन्यास 'संन्यासी' प्रकाशित हुआ और उपेन्द्रनाथ अश्क का चर्चित उपन्यास 'गिरती दीवारें' (1940) में।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के कुछ महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास हैं - 'मैला आंचल' (1954, फणीश्वरनाथ रेणु) और 'सागर लहरें और मनुष्य' (उदयशंकर भट्ट)। फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'परती परिकथा' 1957 में प्रकाशित हुआ। रुद्र का 'बहती गंगा', नागार्जुन के 'बलचनमा' और 'नयी पौध' अमृतलाल नागर का 'बूँद और समुद्र' आजादी के बाद के महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। आश्चर्यजनक रूप से निराला के जिन उपन्यासों 'कुल्लीभाट' (1939) और 'बिल्लेसुर बकरिहा' (1942) को संस्मरण और रेखाचित्र के खाते में डाल दिया गया था, वे अब मनोहरश्याम जोशी और विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों के पूर्वज जान पड़ते हैं।

यहाँ हम 'आंचलिक उपन्यास' पद को थोड़ा और स्पष्ट कर लें। कुछ ही दिनों पहले शिवपूजन सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनिया' (1926) को हिंदी का पहला आंचलिक उपन्यास कहा जाने लगा है। आंचलिक उपन्यास की एक व्याख्या तो यह है कि एक छोटे द्वीप सरीखे 'अंचल' को ही उसकी बोली बानी, संस्कृति, रीति रिवाज, गीत गान और कथाओं के आधार पर कथा का केंद्र या नायक मान लिया जाता है। पर व्यापक अर्थ में आंचलिक उपन्यास गाँव की ज़िंदगी या अन्य सीमांत क्षेत्रों की ज़िंदगी से जुड़ने लगता है। यहाँ तक कि 'गोदान', 'गणदेवता' जैसे उपन्यास भी अर्द्धआंचलिक लगने लगते हैं। आज़ादी के बाद श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'रागदरबारी' (1968), राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव', शानी के उपन्यास 'काला जल' में अपने अपने ढंग की आंचलिकता है। इन्हीं दिनों शिवप्रसाद सिंह का 'अलग अलग वैतरणी' प्रकाशित हुआ। रांगेय राघव के उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' में भी आंचलिकता का स्पर्श है। भारतीय कथारस के उपयोग से जब हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'पुनर्नवा' जैसा उपन्यास लिखा तो उसमें पांडित्य और लालित्य के संयोग से संभव रचनात्मक कल्पना की प्रधानता थी। यदि आपने उपर्युक्त उपन्यासों को पढ़ा है तो आप आंचलिक उपन्यास में 'आंचलिक शब्द' के निहितार्थ को भी समझ रहे होंगे।

आजादी के बाद के वर्षों में 60-70 के बीच या आगे-पीछे जो उपन्यास आये उनमें एक ओर प्रेमचंद के यथार्थोन्मुख आदर्शवाद की प्रधानता थी - यथार्थ पर विशेष बल था - इतिहास का नया साक्षात्कार था। जैसे भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' (1973) और 'मय्यादास की माड़ी' या कृष्णा सोबती का 'ज़िंदगीनामा' या गिरिराज किशोर का 'जुगलबंदी', 'ढाई घर' और अब उनका जीवनीपरक उपन्यास 'पहला गिरमिटिया'। यहीं मन्नू भण्डारी एक ओर स्त्री-पुरुष संबंधों के तनाव के दुखद परिणामों के आइने में 'आपका बंटी' रचती हैं, तो दूसरी ओर राजनीतिक उपन्यास 'महाभोज' लिखती हैं। एक दूसरे ही छोर पर निर्मल वर्मा की उपन्यास-यात्रा है - 'वे दिन' से इधर ही प्रकाशित 'अंतिम अरण्य' तक।

इधर के वर्षों में उपन्यास विधा में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। उत्तर आधुनिक कहे जाने वाले नये दौर में इतिहास के अंत, विज़न के अंत की चर्चा है और मनोहर श्याम जोशी 'कुरु कुरु स्वाहा' और 'कसप' लिखकर चर्चा में हैं। विनोद कुमार शुक्ल ने निम्न मध्यवर्ग का नया विवरण रहित आख्यान रचते हुए 'नौकर की कमीज़' लिखा है और अब 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' भी उसी खिलन्दड़ेपन और काव्यात्मक कल्पना के लिए चर्चा में है। पर यही वह समय है जब अलका सरावगी इतिहास, यथार्थ और कल्पना के संघटन से राष्ट्र का नया मुक्त आख्यान लिखती हैं-'कलिकथा वाया बाई पास'। गीतांजलि श्री 'हमारा शहर उस बरस' जैसा उपन्यास साम्प्रदायिक दंगों की राजनीति के संदर्भ में लिखती हैं। उसका शिल्प डायरी जैसा मुक्त गद्य वाला ढीलाढाला क्यों न हो, है तो वह इतिहास की त्रासदी ही। मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' स्त्रीचेतना के लिए चर्चित है तो कुछेक उपन्यासकार उपन्यास में दलित जीवन की आत्मकथा भी लिखते हैं। हम यहाँ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की ओर संकेत भर कर रहे हैं। आप स्वयं पढ़कर, जानकर तय करें कि क्या महतवपूर्ण है जो यहाँ नहीं आ सका है पर अलग-अलग याद आ सकता है। इस पर भी ध्यान दें कि ऐतिहासिक विकास-प्रक्रिया में उपन्यास लगातार बदलता रहता है। कभी कथानकहीन पर जैनेन्द्र का बल था, अब बड़े आकार के कथा प्रधान उपन्यास लगातार आ रहे हैं। इतिहास और आख्यान आज नये उपन्यासों का भी प्रेरक स्रोत हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जब उपन्यास को 'गल्प' कह रहे थे तो कथा की विश्रृंखलता, मंथरता गुण बन जाती थी।

1.4 उपन्यास के विविध भारतीय पर्याय

यहाँ बहुत ज़रूरी है कि हम 'योरोपीय' कही और समझी जाने वाली गद्य-विधा 'उपन्यास' के विविध 'भारतीय' पर्यायों की चर्चा करते चलें। हम यहाँ उपन्यास के 'नवलकथा', 'कादम्बरी' जैसे भारतीय पर्यायों पर विचार कर सकते हैं। पर अधिकतर भारतीय भाषाओं में भी 'नावेल' या 'रोमांस' की ही चर्चा मिलती है। जहाँ तक 'उपन्यास' शब्द का प्रश्न है यह बंगला से ही हिंदी में आया है। विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े ने 1902 में 'कादम्बरी' शीर्षक से एक निबंध लिखा था। यहाँ 'कादम्बरी' मराठी में उपन्यास का ही पर्याय है। मराठी में 'कादम्बरी' की चर्चा मिलते ही हमें बाणभट्ट की 'कादम्बरी' याद आ सकती है। बंगला में 'उपन्यास' शब्द ही चलता है पर बंकिमचंद्र के उपन्यासों को भी 'रोमांस' कहा गया है। यहाँ कुछ आवश्यक संदर्भों को ध्यान में रख सकते हैं। नामवर सिंह ने इधर ही अपना निबंध लिखा है : "अंग्रेजी ढंग का नावेल और भारतीय उपन्यास"। इसमें वे पहले तो रामचंद्र शुक्ल के इस निर्णय पर टिप्पणी करते हैं कि उन्होंने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में 'परीक्षागुरु' (श्रीनिवास दास) को 'हिंदी में अंग्रेजी ढंग का पहला उपन्यास' कहा। यहीं वे स्पष्ट करते हैं कि हिंदी के सभी उपन्यास न अंग्रेजी ढंग के नावेल थे, न ऐसा होना चाहते थे। ठाकुर जगमोहन सिंह का उपन्यास 'श्यामास्वप्न' किसी भी अर्थ में अंग्रेजी ढंग का नावेल नहीं है बल्कि संस्कृत की कादम्बरी की याद दिलाता है। वे यह भी मानते हैं कि अंग्रेजी ढंग के नावेल का तिरस्कार वस्तुतः उपनिवेशवाद का ही तिरस्कार है। यहीं उनके इस अनुमान पर लोठार लुत्से जैसे जर्मन विद्वान ने प्रतिक्रिया भी व्यक्त की है। नामवर सिंह के इस अनुमान को हम ध्यान में रख लें और आगे बढ़ें। वे लिखते हैं : "कभी-कभी यह ख्याल भी आता है कि यदि सभी भारतीय भाषाओं ने मराठी की तरह 'नावेल्स' के लिए 'कादम्बरी' संज्ञा स्वीकार कर ली होती तो शायद अपनी जातीय स्मृति अधिक सुरक्षित रहती और अपनी परम्परा का प्रत्यभिज्ञान हमारी कथात्मक सर्जनात्मकता में कुछ और रंग लाता।" यहीं याद आता है कि कभी हिंदी कथाकार निर्मल वर्मा ने भी मान लिया कि प्रेमचंद ने योरप से प्राप्त उपन्यास या नावेल के मॉडल को ज्यों का त्यों अपना लिया। यदि उसे तोड़कर नया कथा रूप अपनाया होता तो उनकी सर्जनात्मकता का शिखर कुछ और होता। सवाल यह है कि क्या प्रेमचंद पर हिंदी की आख्यान परंपरा या उर्दू-फारसी की दास्तान परम्परा का कोई असर नहीं है या दूसरी भारतीय भाषाओं के पर्याय रूपों का? उन्होंने तो अलग से उपन्यास पर तीन निबंध लिखे हैं और याद किया है कि बंगला ने बंकिम पैदा किया, गुजराती ने गोवर्धनराम त्रिपाठी, मराठी ने हरिनारायण आप्टे, उर्दू ने रतननाथ सरशार, जो संसार के किसी उपन्यासकार से घटकर नहीं हैं।

जहाँ तक 'उपन्यास' शब्द के दूसरे भारतीय पर्यायों का प्रश्न है, गुजराती में 'नावेल' के ही वज़न पर 'नवल कथा' शब्द चलता है। 'नवल कथा' में नवीनता पर ही बल है। नर्मदाशंकर ने जब 'करणघलो' (1866) लिखा तो उनके मन में वाल्टर स्कॉट के उपन्यास थे। 'नावेल' अंग्रेजी साहित्य में ही नहीं, योरप में भी नया था। ब्रिटिश उपनिवेश बने भारत में मुद्रण कला के विकास, गद्य के विकास, नये पाठकवर्ग के विस्तार के साथ उपन्यास आया तो 'नावेल' की प्रेरणा से, पर नये पर्याय

शब्द निरर्थक न थे। गुजराती, 'नवल कथा' में कथा की एक ढीलीढाली संरचना भी मौजूद है। महिपत राम के उपन्यास 'सासु बहुनी लढ़ाई' (1866) में उपन्यास का कुछ अपना रूप भी था। नर्मदाशंकर ने 'नावेल' के लिए 'वार्ता' शब्द का प्रयोग भी किया है। गोवर्धनराम त्रिपाठी का 'सरस्वतीचंद्र' (भाग एक 1887, भाग दो 1892, भाग तीन 1898, भाग चार 1901) मुख्यतः तीन पीढ़ियों और तीन परिवारों की कथा है। यहाँ 'नवलकथा' रूप को मुक्त प्रसार प्राप्त है।

उपन्यास का 'मराठी' में प्रचलित पर्याय है 'कादम्बरी'। पर यह केवल संस्कृत की कथा 'कादम्बरी' का प्रभाव नहीं है, उपन्यास विधा की वृत्तान्तोन्मुखता (नैरेटिव) का भी प्रभाव है। बाबा पदमनजी का 'यमुना पर्यटन' 1857 में प्रकाशित हुआ जिसे मराठी का पहला उपन्यास कहा जाता है। इसके पहले से अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद होते आ रहे थे। पर यदि यह कृति 1857 में ही प्रकाशित है और बंगला का पहला कहा जाने वाला उपन्यास 'आलालेर घरेर दुलाल' (प्यारी चंद्र मित्र) 1858 में ही प्रकाशित किया गया तो इससे क्या आगे की इस मान्यता को बल नहीं मिलता कि 'भारतीय उपन्यास' और स्वाधीनता संघर्ष का गहरा संबंध है?

क्या 'उपन्यास', 'नवलकथा', 'कादम्बरी' जैसे नावेल के भारतीय पर्याय भारतीय समाज की उथल-पुथल उपनिवेशवाद के प्रभाव और उसके साथ संघर्ष, समाज सुधार के आंदोलन आदि से अप्रभावित रह सके होंगे - यह प्रश्न हम आपकी कल्पना के लिए छोड़कर आगे बढ़ सकते हैं। अभी इतना ही कहा जा सकता है कि भारतीय उपन्यास और विशेष रूप से हिंदी उपन्यास को बनाने में बहुत-सी परिस्थितियों का योगदान है। हिंदी में तो प्रेमचंद के सभी उपन्यास स्वाधीनता संघर्ष काल की ही देन हैं। यहाँ तक कि देवकीनंदन खत्री का अद्भुत तत्व भी साम्राज्यवाद से संघर्ष की झलक देता है।

पंजाबी में उपन्यास रूप का विकास 'किस्सा काव्य' (Long narrative in verse) के रूप में हुआ। सामाजिक यथार्थवाद, रोमांटिक आदर्शवाद और नैतिक सुधारवाद ने 'किस्सा काव्य' को विस्तार दिया। राजस्थानी में आरंभिक उपन्यासकार अपने उपन्यासों को गुजराती के प्रभाव में 'नवलकथा' ही कह रहे थे। पर व्यापक अर्थ में 'उपन्यास' का फलक विस्तृत हुआ है। इस दौर में जब मंजूर एहतेशाम हिंदी में 'दास्तान-ए-लापता' लिखते हैं तो दास्तान कुछ और ही हो जाती है। भोलाभाई पटेल, हरिनारायण आप्टे के उपन्यास 'पण लक्ष्यांत कोण घेतो' को उन्नीसवीं शताब्दी का पहला नारीवादी उपन्यास कहते हैं और हम मिर्ज़ा हादी रुस्वा के उर्दू उपन्यास 'उमरावजान अदा' (1899) को पढ़ते हैं तो नारीवादी उपन्यास के भारतीय बीजरूपों को भी याद करते हैं। क्या यह केवल संयोग है कि अभी-अभी हिंदी की एक युवा कथा लेखिका अलका सरावगी ने अपने नये स्त्रीकेंद्रित उपन्यास को 'शेष कादम्बरी' कहा है। अर्थात् उपन्यास के भारतीय पर्यायों को, 'नवलकथा' और 'कादम्बरी' को, उपन्यास या नावेल या रोमांस के साथ याद करने की अपनी सार्थकता है।

1.5 उपन्यास और यथार्थ का संबंध

इस विषय के आरंभ में ही हम इसकी सीमा स्वीकार कर लें कि हम अपने पाठ्यक्रम के अंतगर्त उपन्यास की सैद्धांतिकी की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। पर किसलिए! कि हम किसी उपन्यास को ठीक तरह से पढ़ और समझ सकें और उसका आवश्यकतानुसार विश्लेषण भी कर सकें। आगे इसका मूल्यांकन भी कर सकें। हम देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और प्रेमचंद के उपन्यासों में अंतर भी कर सकें। प्रेमचंद का 'गोदान' किसान-जीवन की त्रासदी का उपन्यास है तो किस अर्थ में! क्या होरी की मृत्यु त्रासदी होने के लिए यथेष्ट कारण है!

इसी दृष्टि से हम उपन्यास और यथार्थ के संबंध पर विचार करेंगे। पहले के तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों में अद्भुत तत्व की प्रधानता थी। सुधारवादी उपन्यासों में उपदेश-प्रधान हो गया और उपन्यास का आकर्षण जाता रहा। जब से उपन्यास में यथार्थ की प्रतिष्ठा हुई हमें सजीव मानव चरित्र मिलने लगे और वास्तविकता पर हमारा ध्यान जाने लगा। यहीं देखें कि कुछ शब्द यथार्थ के विरोधी लगते हैं पर उन्हें छोड़कर हम उपन्यास के सच्चे यथार्थ या यथार्थवाद की कल्पना भी नहीं कर सकते। एक तो प्रचलित अर्थ में एक क्षेत्र कल्पना का है दूसरा यथार्थ का। एक यथार्थ का है तो दूसरा आदर्श का। कल्पना के लिए भी कई शब्द चलते हैं - फैंटेसी एक विशेष प्रकार की अयथार्थवादी कल्पना है। पर यथार्थ को हम उपन्यास में सार्थक बनाने के लिए इन सबका इस्तेमाल करते हैं।

प्रेमचंद के इस कथन को आप ज़रूर ध्यान में रखें : "यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है, तो *आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है,* वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धांतों की पूर्ति मात्र हों - जिसमें जीवन न हो।" उलझन यही है। यथार्थ चित्रण से उपन्यास में विश्वसनीयता आती है पर एक प्रकार का यथार्थवाद प्रकृतवाद या नग्नतावाद भी हो सकता है या कि वह निराशा मात्र देकर अलग हो सकता है। प्रेमचंद ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का सहारा लिया। पर कहा जाता है कि 'गोदान' तक आते-आते प्रेमचंद एक प्रकार के ऐतिहासिक मोहभंग का अनुभव कर चुके थे। इसलिए जहाँ होरी का अंत है, वहीं पर होरी में अपराजेय जिजीविषा भी है। कोई आरोपित आशावाद नहीं है। यह एक विशेष कला है कि हम किस यथार्थ या यथार्थवाद का चित्रण करें। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 1910 में 'उपन्यास' पर निबंध लिख रहे थे और छोटी-छोटी घटनाओं के यथार्थ को इतिहास के सच से ज्यादा मूल्यवान बता रहे थे। प्रेमचंद बहुत विकसित यथार्थ-ज्ञान के आधार पर लिख रहे थे - "अभी *हम झूठ को सच बनाकर दिखाना चाहते हैं, भविष्य में सच को झूठ बनाकर दिखाना होगा।" सामान्य* सच अतिपरिचय से हमारे काम का न रह जाएगा! इधर यथार्थवाद के व्याख्याताओं ने अपरिचयीकरण (Defamiliarization) की बात शुरू की है, जादुई यथार्थवाद (Magical realism) की चर्चा होने लगी है। विनोद कुमार शुक्ल का उपन्यास इसका उदाहरण है - 'दीवार में एक खिड़की रहती थी'। अर्थात् उपन्यासकार यथार्थ को ज्यों का त्यों इस्तेमाल नहीं करता। यथार्थ का चित्रण भी कला है।

यथार्थवाद के दो भेद जाने पहचाने हैं - आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद। कई समाजवादी चिन्तकों ने उपयोगितावाद या उद्देश्यपरकता के आधार पर समाजवादी यथार्थवाद का पक्ष लिया। पर कई दूसरे आलोचकों ने उद्देश्यपरकता को कला में बाधक बताया और आलोचनात्मक यथार्थवाद का समर्थन किया और उसे चयनधर्मी बताया। फ्रेडरिक एंगेल्स तक ने कहा कि यथार्थ *कला में जितना छिपा रहे, उतना ही अच्छा।*

जैनेन्द्र का 'त्यागपत्र' उपन्यास कई आलोचकों की दृष्टि में मनोविज्ञान की सूक्ष्मता के कारण महत्वपूर्ण है। यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का उदाहरण है। उपन्यास की नायिका मृणाल वर्गच्युत होकर एक बड़े कमजोर वर्ग के साथ खड़ी हो जाएगी, यह अविश्वसनीय लगेगा पर यही मोड़ उपन्यास को मार्मिक बनाता है। इसलिए उपन्यास का यथार्थ से संबध सीधा सरल इकहरा नहीं है। जटिल है और एक अर्थ में द्वन्द्वात्मक है। यह बहुत सूक्ष्म बात है पर उदाहरणों से समझ में आ जाएगी। भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। एक तो वह साम्प्रदायिकता के मनोविज्ञान की तह में जाता है, उन ताक़तों को बेनकाब करता है जो दंगे कराती हैं। दूसरी विशेषता यह कि छोटे-छोटे ब्यौरों में यथार्थ चित्रण सजीव है। जैसे शुरू में नत्थू द्वारा सुअर मारने का प्रसंग। वह दहशत फैलाता है पर सच्चाई को उजागर करता है।

यहाँ हम उपन्यास और यथार्थ के संबंध पर विचार करते हुए यह भी जान लें कि यथार्थ खंड-खंड भी हो सकता है। वह संभावित भी हो सकता है और घटित भी हो सकता है।'आप बीती और जग बीती' भी हो सकता है और कल्पना पर आश्रित भी हो सकता है। यथार्थ सीधा, सरल, एकरेखीय भी हो सकता है और बहुपक्षीय बहुआयामी भी हो सकता है। एक महान् उपन्यास सरल इतिवृत्तात्मकता में भी अर्थवान हो सकता है। देश-विभाजन की त्रासदी के बीच यशपाल का 'झूठा सच' एकरेखीय हो सकता है, अखबारी रिपोर्टर की कलम से रचा गया जान पड़ता है पर यशपाल की वर्णन-क्षमता के कारण वही एक महावृत्तान्त या महान् उपन्यास भी है। अभी हाल के उदाहरणों में कामतानाथ का 'कालकथा' सरल एकरेखीय हो सकता है, जबकि अलका सरावगी का 'कलिकथा वाया बाईपास' काल में आगे-पीछे जाने वाला, अधिक कलात्मक उपन्यास लग सकता है। पर महत्वपूर्ण दोनों हैं। इस अंतर से यह तो हम जान ही सकते हैं कि यथार्थ का उपन्यास से संबंध उपन्यास की कलात्मक सार्थकता से भी जुड़ा हो सकता है। यथार्थ उपन्यास में बहुपक्षीय, बहुआयामी, कई स्तरों पर संचरणशील हो सकता है। कृष्णा सोबती का 'मित्रो मरजानी' एक तरह का उपन्यास है पर उन्हीं का 'समय सरगम' दूसरी तरह का उपन्यास है।

कुछ और अंतर भी यहाँ ध्यान में रख सकते हैं। जहाँ यथार्थ उपन्यास को गाथात्मक बना सकता है वहीं वह उपन्यास को नाटकीय भी बना सकता है। सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' नाटकीय यथार्थ वाला उपन्यास है। गिरिराज किशोर का 'पहला गिरमिटिया' लगभग इतिहास है - गाथात्मक है। हम पहले मराठी चिंतक विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े के निबंध 'कादम्बरी' का उल्लेख कर चुके हैं। वे 1902 में उपन्यास के मूल में यथार्थ की **विचारधारा देख रहे थे पर उपन्यास की कलात्मकता**

को 'अद्‌भुत' के स्पर्श में देख रहे थे। यह 'अद्‌भुत' तिलस्मी एयारी उपन्यासों वाला नहीं है। यह उससे भिन्न है - वह निराला से 'कुल्लीभाट' की रचना करा लेता है जो साधारणता में महान् हो उठता है। दुर्गुणों से भरा, पर अंतिम परिणति में दिव्यता की चमक पा लेने वाला। होरी की दुर्बलताएँ भी यथार्थ है पर होरी की जीवनी शक्ति और संघर्ष-क्षमता विलक्षण है इसलिए उपन्यास में यथार्थ और अयथार्थ, यथार्थ और कल्पना, यथार्थ और अद्‌भुत, साधारण और अप्रत्याशित का योग हो सकता है। इसे आप अपने अनुभव, आस्वाद और पाठ के अनुसार जाँचने का प्रयत्न करें।

1.6 उपन्यास की लोकप्रियता

यों तो समूचे साहित्य को लेकर लोकप्रियता का प्रश्न उठ सकता है कि वह किस सीमा तक लोकप्रिय या जनप्रिय है या साहित्य के पाठक कितने हैं। फिर कुछ विधाओं के लोकप्रिय होने की संभावना अधिक होती है। जैसे उपन्यास के पाठक समाज के सभी वर्गों से आये हुए लोग हो सकते हैं। उपन्यास लोग मनोरंजन के लिए भी पढ़ते हैं। यात्राओं में पढ़ते हैं। उपन्यास में मन रम जाय तो दिन रात पढ़कर ख़त्म कर सकते हैं। पर साहित्य के विद्यार्थी को तो लोकप्रियता के विभिन्न रूपों और स्तरों में भेद भी करना है। एक सनसनीखेज या सस्ता मनोरंजन देने वाला उपन्यास भी लोकप्रिय हो सकता है और प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थ का इतिवृत्त बताने वाले उपन्यास भी लोकप्रिय हो सकते हैं। दोनों की लोकप्रियता में फर्क है। दृष्टिकोण के कारण भी यह फर्क है। एक उपन्यास जानबूझकर 'बिकाऊ माल' बनाया जा सकता है और गंभीर लेखक सस्ती लोकप्रियता से इनकार करने वाला साहस भी दिखा सकते हैं।

यह मान लेना काफ़ी नहीं है कि उपन्यास लोकप्रिय साहित्य रूप है। अगर एक तरह से लोकप्रिय है तो दूसरे कोणों से विमर्श-प्रधान है। बहुत कठिन राह है कि हम किसे लोकप्रियता की सच्ची कसौटी पर कसेंगे और ठीक-ठाक पायेंगे। यहीं एक दूसरा प्रश्न उठेगा कि लोकप्रियता और श्रेष्ठता में भेद कैसे करें। ज़रूरी नहीं कि लोकप्रिय उपन्यास श्रेष्ठ उपन्यास भी हो। या लोकप्रिय उपन्यास श्रेष्ठ उपन्यास हो ही नहीं सकते। उपन्यास लोकप्रियता प्राप्त करता है, तो कई विशेषताओं के कारण अथवा कई विशेषताओं के साथ। जैसे प्रवाह, सहजता, ऐन्द्रिकता, नाटकीयता, रोचकता, अकल्पनीयता, उत्सुकता आदि। ज्ञात का अपना आकर्षण हो सकता है पर अज्ञात का अपना रहस्य भी रोचकता में कम योग नहीं देता।

और यह भी आवश्यक नहीं कि उपन्यास पाठ्यक्रम में हो तभी लोकप्रिय होगा। उस कारण तो यह अपने आप में एक यांत्रिक पाठ भी हो सकता है। क्योंकि विद्यार्थी दबाव से पढ़ रहे हैं। नहीं तो सहज हैं और आनंद के लिए पढ़ रहे हैं। यहाँ हम मुक्तिबोध का एक निबंध याद कर सकते हैं - जनता का साहित्य किसे कहते हैं। यह निबंध हमें सचेत बनाने के लिए लिखा गया है कि जनता का साहित्य लिखने के लिए हमें एकदम नीचे की स्थिति वाले पाठकों तक नहीं उतर आना है बल्कि जनसामान्य की अभिरुचि या पसंद का स्तर उन्नत बनाते हुए भी एक तरह की लोकप्रियता हासिल की जा सकती है। साहित्य वस्तु या उत्पाद या माल (Commodity) होकर भी केवल वस्तु या उत्पाद या माल नहीं है। वह वस्तु की एकरूपता से इनकार करता है और शिल्प के एक-से-पन से भी इनकार कर सकता है। उपन्यास का बाज़ार-मूल्य हो सकता है पर केवल बिकने का आँकड़ा कसौटी नहीं है। धर्मवीर भारती के दो उपन्यासों का नाम आपने सुना होगा। 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' आपके पाठ्यक्रम एम.एच.डी.-15 में है। 'गुनाहों का देवता' खूब पढ़ा गया है। उसके दर्जनों संस्करण होंगे। वह भावाविष्ट करता है हमें एक तरह की रूमानी खुमारी में ला देता है। वह कई तरह से लोकप्रिय है। पर महत्वपूर्ण उपन्यासों में अब भी उनका प्रयोगशील उपन्यास : 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' गिना जाता है।

कथा विधा में उपन्यास रूप की लोकप्रियता में यदि कथा-रस सहायक है तो कभी-कभी उसका कथ्य या कथ्य में छिपा विचार भी। कहीं एक विशेष प्रकार का राष्ट्रीय आख्यान लोकप्रियता में सहायक है कहीं नये प्रकार का फार्म या ढाँचा भी। जैसा पहले हम बता चुके हैं, इधर एक नयी लेखिका के उपन्यास 'कलिकथा वाया बाई पास' (अलका सरावगी) के एक ही साल में तीन संस्करण प्रकाशित हुए - उसकी विषयवस्तु के साथ-साथ रूप या ढाँचे के कारण भी। यह लोकप्रियता गुणात्मकता के कारण ही कृति को मिली है। जहाँ तक बहुत पहले के श्रीलाल शुक्ल के

उपन्यास 'रागदरबारी' का प्रश्न है उसका व्यंग्य-रस नाटकीयता की सृष्टि करता है। आज़ादी के बाद के भारतीय लोकतंत्र का मखौल जैसा! पर यथार्थ से सीधे जोड़ने वाला!

प्रेमचद जैसे उपन्यासकार 'उपन्यास' को मानवचरित्र की प्रतिच्छवि के रूप में देखते थे। यह उनकी दृष्टि थी। कह सकते हैं कि, यही उनका उद्देश्य था। पर वे कथा की रोचकता, प्रभावक्षमता, रसवत्ता आदि गुणों के प्रति सजग थे जिनसे एक कृति पाठकों के बीच लोकप्रिय होती है। 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गोदान' पर विचार करें तो वे एक ही *अर्थ* में लोकप्रिय कृतियाँ नहीं हैं। 'गोदान' का मर्म समझने के लिए पाठक को भी गंभीर आत्ममंथन करना पड़ता है। प्रेमचंद जब उपन्यास की लोकप्रियता इन गुणों में मानते है तो कई विशेषताओं पर एक साथ ध्यान जाना चाहिए। जैसे, वे कहते हैं - 'उपन्यास में वही घटनाएँ, वही विचार लाना चाहिए जिनसे कथा का माधुर्य बढ़ जाए, जो प्लॉट के विकास में सहायक हों अथवा चरित्रों के गुप्त मनोभावों का प्रदर्शन करते हों' - तो यह भी विचार करना चाहिए कि उपन्यास किस तरह चरित्रों के 'गुप्त मनोभावों' का उद्‌घाटन करते हैं।

1.7 उपन्यास और पाठक वर्ग

अपने आपमें यह विषय बहुत महत्वपूर्ण है। उपन्यास विधा के संदर्भ में बृहत्तर पाठक वर्ग की कल्पना। कविता के शायद उतने पाठक न होंगे जितने उपन्यास के। क्योंकि कविता अपेक्षकृत सूक्ष्म विधा या सूक्ष्म कला है। उपन्यास में काव्यतत्व हो सकता है पर वर्णित समय, देश काल, परिस्थिति और चरित्रों के संदर्भ में ही *विचारणीय है। उपन्यास मुख्यतः पाठकवर्ग को ध्यान में रखकर लिखा जाता* है। पर यह पाठक केवल उपभोक्ता नहीं है। वह उपन्यास पढ़कर अपनी अभिरुचि का विकास कर सकता है। उपन्यास एक नयी दुनिया, नये अनुभव लोक में ले जाने वाले सशक्त साहित्य रूप वाले वर्ग में आता है।

जैसा पहले लोकप्रियता के संबंध में हमने कहा था कि उपन्यास अपने आप में लोकप्रिय विधा नहीं है, *लेकिन इसमें लोकप्रिय होने की संभावना निहित है क्योंकि यह बड़े पाठक वर्ग तक पहुँचना* चाहता है। पर यह लोकप्रिय होने की माँग अच्छी पठनीयता की माँग एक तरह का अनुशासन भी पैदा करने में सहायक हो सकती है। हमें पाठकों का स्तर भी उठाना है। केवल मनबहलाव की माँग करने वाले पाठक उपन्यास का सच्चा प्रभाव ले नहीं पाते। उपन्यास पाठक का पुनः संस्कार करता है। देवकीनंदन खत्री के 'चंद्रकान्ता' का पाठक और था। 'शेखर एक जीवनी' का पाठक और तरह का है। वह अपने भाव यंत्र को सूक्ष्म और सजग बनाये रखता है। उपन्यास को 'नावेल' कहा जाता है। *'नवलता', 'नयापन' ये शब्द बार-बार आते हैं। पर नवीनता सापेक्ष शब्द है। 'परीक्षागुरु' भी उपन्यास है,* 'कुल्लीभाट' भी उपन्यास है, 'चाक' भी उपन्यास है। श्रीनिवास दास और निराला में बहुत अंतर है। निराला और मैत्रेयी पुष्पा में बहुत अंतर है। पाठकों के लिए यह चित्र के क्रमिक बदलाव की सी स्थिति है। ग्रामांचल का पाठक वर्ग और शहरी पाठक वर्ग - दोनों की जिंदगी में खासी विविधता है। दोनों पाठक वर्ग कई-कई तरह के उपन्यासों से प्रभावित होते हैं और कोटियाँ या वर्ग निर्धारित कर देने में कई कठिनाइयाँ आ सकती हैं। क्या स्त्री-पाठकों की रुचियाँ एक जैसी हैं कि केवल एक तरह *की शिवानी या एक तरह की किसी दूसरी लेखिका की दुनिया तक उन्हें सीमित कर सकें।* वास्तविकता इससे भिन्न है। दलित वर्ग या स्त्री पाठकों के वर्ग एक-से नहीं हैं। पाठक जन्म से दलित न हो, तो भी वह दलित लेखन की विशिष्टता को पहचान सकता है। प्रेमचंद ने 'सद्‌गति', 'कफ़न' जैसी कहानियाँ लिखीं और आज हम जब ओमप्रकाश वाल्मीकि के आत्मकथात्मक उपन्यास 'जूठन' को पढ़ते हैं तो बिल्कुल भिन्न तरह के अनुभव संसार से गुजरते हैं। हम स्त्रियों के बारे में सोचते हुए एक ही पाठक वर्ग की कल्पना कर पाते हैं। यानी जो गृहिणियाँ हैं वे कैसे उपन्यास पसंद करती हैं। आम तौर पर लगेगा कि स्त्रियाँ किसी परिवर्तनकामी नये समाज की कल्पना कर ही नहीं पातीं। लेकिन इधर जागरूक, कर्मचेतना या संघर्ष चेतना के प्रति सजग पाठिकाओं की कमी नहीं है जो विस्फोटक यथार्थ का सामना करने के लिए तैयार है।

कहने का अर्थ यह है कि उपन्यास केवल निष्क्रिय पाठकवर्ग का निर्माता नही है, वह एक सक्रिय सजग पाठकवर्ग को भी जन्म देता है। सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' को भी पाठकों ने उत्साहपूर्वक अपनाया। कई संस्करण छपे। इसमें प्रेम का उद्दाम वर्णन तो था पर यहाँ पाठकों को प्रभावित यह समाज रचना करती है कि सामान्य परिवार की लड़की वर्षा वशिष्ट थिएटर के बहाने नयी दुनिया हासिल करती है और संघर्ष और उपभोग का दिलचस्प सम्मिश्रण बनती है। दरअसल

वर्षा वशिष्ट उत्तर आधुनिक दौर की नायिका है जो संघर्ष को अपने कैरियर के संकीर्ण अर्थ में ही ग्रहण करती है।

'उपन्यास और पाठकवर्ग' के संबंध के बारे में सोचते ही आपको लगेगा कि क्या इस सवाल से 'व्यावसायिकता' का सवाल जुड़ा नहीं है? क्या दोनों के बीच माँग और पूर्ति का रिश्ता नहीं बन सकता? पाठक जैसे उपन्यासों की माँग करेंगे, लेखक वैसा ही उपन्यास लिखेगा। किसी उपन्यास की लोकप्रियता से ऐसा सोचना सही प्रतीत हो सकता है। लेकिन देखा गया है कि दो नितांत भिन्न तरह के उपन्यास लोकप्रिय हो जाते हैं। इस बात की व्याख्या सिर्फ व्यावसायिकता के आधार पर नहीं की जा सकती। एक विभाजन पाठकों का इस तरह का भी प्रचलित है - General reader, सामान्य या आम पाठक, और Critical reader - यानी गहराई से पढ़ने, समझने और मूल्यांकन करने वाले पाठक। यहाँ आप भी अपने को इस बात से सहमत पाएँगे कि एक अच्छा समीक्षक भी एक पाठक को अपने भीतर निरंतर सजग उपस्थित पाता है। वह एक अच्छा पाठक भी होता है।

इधर पाठकों की माँग उन उपन्यासों के लिए बढ़ रही हैं जो आत्मकथात्मक और स्त्री-पुरुषों के जीवन के बीच के संबंधों का रहस्य खोलने वाले हैं। देखते-देखते कई दलित लेखकों, लेखिकाओं ने आत्मकथाएँ लिखी हैं। यौन संबंधों को लेकर बहुत साहस के साथ लिखने का चलन है। अब प्रश्न यह है कि इसे बाज़ार मूल्य वाला सरल सिद्धांत या नियम माने कि कुछ और। इन उपन्यासों का बड़ा बाज़ार तो है ही और वह कई तरह से संचार माध्यमों वाले युग में प्रभावी हो चला है। यहीं आपको थोड़ा सावधान रहने की ज़रूरत है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'जूठन' यदि एक कटु सत्य है, लम्बे शोषण की सजीव मार्मिक कथा है तो हम उसे बाजारू उपन्यास नहीं कह सकते। लेकिन बाज़ार में उपन्यास के नाम पर वह थोक लेखन भी हो रहा है जो लेखन के दायरे में न आकर सिर्फ़ सनसनी और चटपटापन पैदा करने का काम करता है। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'विस्रामपुर का संत' में चरित्र पतन की दारुण कथा है पर वह बाज़ारू लेखन नहीं है। वह गंभीर लेखन है और सत्ता के निकट या केंद्र में रहने वाले व्यक्ति की ज़िंदगी के ऊपर से पर्दा उठाता है।

अंत में हम यह देख सकते हैं कि उपन्यास के संदर्भ में पाठक-वर्ग का काफी महत्व है। प्रकाशक भी इसे जानता है और लेखक भी। कुछ उपन्यासकार पाठक की स्थिति को महत्वपूर्ण नहीं मानते और उपन्यास में फन्तासी युक्त अयथार्थ का बड़ा घना जाल बुनते हैं पर ऐसे उपन्यास अपवाद हैं। विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास 'नौकर की कमीज' को और उन्हीं के दूसरे उपन्यास 'खिलेगा तो देखेंगे' को अलग-अलग तरह से पढ़ना होगा। उपन्यास को पाठक वर्ग की संवेदना का विस्तार भी करना है और उसे शिक्षित भी करना है और हर दौर में एक नया पाठक-वर्ग भी बनाना है।

1.8 उपन्यास के विविध रूप

इस विधा के विकास के साथ उसके कई रूपों का भी विकास हुआ है। आकार में बड़े और छोटे उपन्यासों के आधार पर लघु उपन्यास, उपन्यासिका जैसे शब्दों का भी प्रयोग होने लगा। कई बार इनके बीच फर्क बताना मुश्किल होता है। किसे हम लंबी कहानी कहें और किसे लघु उपन्यास, यह प्रश्न भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आगे के उपभागों में हम इन प्रश्नों पर विचार करेंगे।

1.8.1 उपन्यास और उपन्यासिका

यहाँ हमें स्वीकार कर लेना चाहिए कि बड़े कलेवर वाले उपन्यास की अवधारणा धीरे-धीरे विकसित हुई है। पहले उपन्यास वह कथा रूप था जिसमें कथा, आख्यायिका, रोमांस, प्रगीतात्मक गठन - ये सभी घुले-मिले थे। धीरे-धीरे कथा रूप की भिन्नता के अनुसार उपन्यास के साथ 'लघु उपन्यास' या 'उपन्यासिका' जैसे रूप प्रकारों की विशिष्टता पर विचार किया जाने लगा।

अंग्रेजी में कहीं-कहीं साहित्यकोशों में 'नावेला' (novella) और 'नावेलेट' (novelette) में अंतर किया गया है। यह भेद मिट जाता है जब हम अलग से 'लम्बी कहानी' पद का प्रयोग करने लगते हैं। यह रूप आकार से भिन्नता सूचित करता है। यहाँ आपको यह जानने की इच्छा होगी कि यदि लम्बी कहानी 'औपन्यासिक संवेदना' की कहानी हो तो उसे क्या संज्ञा दें। शायद उसे 'उपन्यासिका' कहने में कठिनाई होगी। हम हिंदी कथा आलोचना में 'उपन्यासिका' को 'लघु उपन्यास' से अलग करना

चाहें तो शायद कथा में निहित प्रगीतात्मकता एक 'उपन्यासिका' की पहचान में सहायक हो सकती है। लघु उपन्यास से भी संक्षिप्त और लयात्मक गठन 'उपन्यासिका' का हो सकता है।

1.8.2 उपन्यास और लघु उपन्यास

उपन्यास में आकार की दृष्टि से लघुता को ध्यान में रखकर लघु उपन्यास (novelette) संज्ञा दी जाती है। जैसे जैनेन्द्र के 'परख' जैसे उपन्यास। कभी-कभी भावात्मक रोमांस का तत्व 'लघु उपन्यास' संज्ञा में सहायक होता है। सुविधा के लिए आप यह भेद भी कर सकते हैं कि कहानी से बड़ी और उपन्यास से छोटी - जैसी कोई विधा 'लघु उपन्यास' है। अर्थात् लम्बी कहानी और उपन्यास के बीच की विधा। इधर एक चलन यह भी देख सकते हैं कि कृष्णा सोबती की कहानी 'ऐ लड़की', 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका के महाविशेषांक (सं. रवींद्र कालिया) में लम्बी कहानी के रूप में छपी। आगे उसे ही 'लघु उपन्यास' मानकर पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। दूधनाथ सिंह की भी एक लम्बी कहानी 'नमो अंधकारम्', 'हंस' पत्रिका में लम्बी कहानी के रूप में छपी। फिर उसे 'लघु उपन्यास' कहकर छापा गया। बहुत पहले यही ज्ञानरंजन की 'बहिर्गमन' नामक कहानी के साथ हुआ। पहले लम्बी कहानी और फिर लघु उपन्यास। अभी उदय प्रकाश की लंबी कहानी 'पीली छतरी वाली लड़की' कहानी भी पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई तो उसे उपन्यास कहा गया। एक लय में चलने वाली कहानी की संक्षिप्तता तो निर्मल वर्मा के बड़े आकार के उपन्यास में भी मिल जाती है। यहाँ कुछ उपन्यास देखकर इस नाम की सार्थकता पर विचार कर सकते हैं। जैसे निर्मल वर्मा के उपन्यास 'वे दिन' को क्या कहें - क्या लघु उपन्यास और कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी' या 'समय-सरगम' को क्या संज्ञा दे सकते हैं? हम यह आप पर छोड़ते हैं। इस बात पर विचार करें कि इनको उपन्यास मानने का क्या आधार है? कहानी और उपन्यास के बीच के अंतर को क्या लघु उपन्यास और लंबी कहानी के बीच भी पहचाना जा सकता है?

1.9 सारांश

एम.ए. हिंदी के द्वितीय वर्ष के 'उपन्यास' से संबंधित मॉड्यूल के पाठ्यक्रम 'उपन्यास : स्वरूप और विकास' से संबंधित पहले खंड की पहली इकाई का अध्ययन आपने किया है। यह उपन्यास के सैद्धांतिक विवेचन से संबंधित पहली इकाई है।

इकाई-1 के इस पाठ में हमने 'आख्यान के विविध रूप और उपन्यास' जैसे विषय पर विचार किया है। इसमें पहले 'आख्यान' शब्द के अर्थ और उसकी परम्परा पर विचार किया गया है। फिर, उपन्यास विधा के विकास का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य स्पष्ट किया गया है। यह परिप्रेक्ष्य मुख्य रूप से हिंदी उपन्यासों के विकास के संदर्भ में किया गया है। आगे चलकर 'उपन्यास' शब्द के भारतीय पर्यायों पर विचार किया गया है। जैसे उपन्यास, कादम्बरी, नवलकथा आदि। इसके बाद हमने कुछ महत्वपूर्ण संदर्भों पर विचार किया है, जैसे उपन्यास और यथार्थ का संबंध। यह संबंध स्थिर नहीं होता, बल्कि बदलता रहता है। इसके अलावा उपन्यास और लोकप्रियता उपन्यास और पाठक वर्ग आदि प्रश्नों पर भी इकाई में विचार किया गया है। इसी क्रम में कुछ रूप प्रकारों का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है। जैसे 'उपन्यास और उपन्यासिका' या 'उपन्यास' और 'लघु उपन्यास' में अंतर करने की कोशिश की गयी है। इसे एक कोशिश ही कह सकते हैं क्योंकि दोनों समानार्थी भी हो सकते हैं। इसे आप इस रूप में देखें - रूप प्रकार या फार्म की दृष्टि से इनकी भिन्नता पर विचार किया गया है।

अभ्यास

यहाँ हम कुछ प्रश्न दे रहे हैं। पाठ के सभी पक्षों को ध्यान में रखकर और अपनी तैयारी के आधार पर इनके उत्तर लिखिए। आवश्यक नहीं कि सभी उत्तर एक से हों। उन्हें आपकी समझ और संवेदना के अनुसार अलग-अलग भी दिखना चाहिए। उच्चस्तरीय साहित्य-शिक्षा की हम एक शर्त यह भी मानते हैं कि हर पाठक विषय को अपने-अपने ढंग से पढ़ें। यह भी याद रखें कि अलग-अलग भाषाओं में उपन्यास का रूप अपनी प्रकृति के अनुसार अलग तरह का भी बना है। शैलीगत प्रयोग ही अनेक प्रकार के हैं :

1. उपन्यास विधा के विकास का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य स्पष्ट कीजिए।
2. उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति के विभिन्न पहलुओं का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
3. पाठकीय रुचि का परिष्कार करने में उपन्यास किस सीमा तक सहायक हो सकता है? लोकप्रियता के संदर्भ में इस प्रश्न का उत्तर दीजिए।

इकाई 2 उपन्यास का अर्थ और स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 उपन्यास का अर्थ
2.3 उपन्यास के विभिन्न नामांतरण
2.4 उपन्यास में यथार्थ और संभाव्यता
2.5 उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप
 2.5.1 आदर्श और यथार्थ
 2.5.2 फंतासी और यथार्थ
 2.5.3 नाटकीयता और रोमांस तत्व
 2.5.4 जादुई तत्व और यथार्थ
2.6 यथार्थवाद और उपन्यास
2.7 सारांश

2.0 उद्देश्य

उपन्यास का अध्ययन करने के साथ आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि उपन्यास क्या है। इस प्रश्न से चलकर हम उपन्यास के विभिन्न नामांतरणों के संदर्भ में कुछ विचार सूत्रों को समझते हुए आगे बढ़ेंगे। और क्रमशः उपन्यास में यथार्थ और संभाव्यता, उपन्यास में आदर्श और यथार्थ, फंतासी और यथार्थ, नाटकीयता और रोमांस तत्व के अद्‌भुत (या जादुई) तत्व से यथार्थ के संबंध पर विचार करेंगे। मुख्य रूप से इस इकाई का उद्देश्य है - उपन्यास में यथार्थवाद के उदय और विकास की रूपरेखा पर विचार करना। उपन्यास के इन पहलुओं को समझने से आपको विश्व उपन्यास साहित्य के विभिन्न चरणों की सैद्धांतिक आधारभूमि को समझने में मदद मिलेगी। इस इकाई के अध्ययन का यह केंद्रीय पहलू है।

2.1 प्रस्तावना

यह एम.ए. हिंदी से सबंधित पाठ्यक्रम एम.एच.डी.-13 (उपन्यास स्वरूप और विकास) के पहले **खंड की दूसरी इकाई है।** इस इकाई में उपन्यास के अर्थ और स्वरूप संबंधी पक्षों पर विचार किया गया है। इससे पहले हमने इसी खंड की पहली इकाई में *आख्यान के विविध रूपों के संदर्भ में* उपन्यास के बारे में विचार किया था। यहाँ हमारा प्रयत्न होगा कि हम फिर एक बार 'उपन्यास के रूप की विशिष्टता पर बल दें। क्या है उपन्यास! क्या है उपन्यास के अनेक नामांतरणों का निहितार्थ। जैसे 'उपन्यास' की जगह 'कादम्बरी' पर्याय के हिंदी में प्रवेश भर से क्या उपन्यास 'योरोपीय ढंग का नावेल' या 'अंग्रेजी के ढंग का नावेल' होने से बच जाता? उपन्यास की चर्चा करते हुए हम *भारतीय उपन्यास की अवधारणा पर भी विचार करेंगे। नामांतरणों के निहितार्थ पर विचार का महत्व* इसी दृष्टि से है।

इकाई में इस बात पर भी विचार किया जाएगा कि उपन्यास में वर्णित यथार्थ का स्वरूप क्या है! क्या वह 'घटित वास्तव' का ही साक्षात्कार कराता है या कि उसके दायरे में संभाव्य यथार्थ भी आता है जो *कल्पना की उपज है। इसी क्रम में कुछ आलोचनात्मक* पदों (terms) पर हम विचार कर सकते हैं कि उपन्यास में आदर्श और यथार्थ का सबंध क्या है, फंतासी और यथार्थ का संबंध क्या है? उपन्यास में यदि नाटकीयता क्षीण हुई है या रोमांस तत्व का लोप-सा हो गया है तो किन कारणों से। अद्‌भुत या जादुई यथार्थ से उपन्यास की अतर्वस्तु और कला में क्या विशेष जुड़ जाता है? और उपन्यास में यथार्थवाद मुख्य रूप से क्या हस्तक्षेप करता है और उसकी क्या नयी शक्लें उभरती हैं? इस तरह हम इस इकाई में उपन्यास के स्वरूप के इन विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए यह समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे समय के साथ-साथ 'उपन्यास' बदलता रहा है। इस बदलते हुए उपन्यास को समझते हुए ही हम आगे के पाठ्यक्रमों में निर्धारित उपन्यासों को समझने की क्षमता विकसित कर सकेंगे।

2.2 उपन्यास का अर्थ

इकाई का आरंभ इस प्रश्न पर विचार करने के साथ करेंगे कि उपन्यास क्या है! उपन्यास पढ़ते हुए और उपन्यास के बारे में पढ़ते हुए हम कह सकते हैं कि उपन्यास वह गद्य रूप है जिसे आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है या कहा जा सकता है। महाकाव्य में उस प्रबंध की ध्वनि है जो जीवन के बहुविध विस्तार को समेटने में सक्षम है। हमारे यहाँ उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ऐसी कृतियाँ मिलने लगती हैं जिन्हें उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। उसमें गल्प का तत्व भी है और रोमांस का तत्व भी। पर सच्चाई यह है कि उपन्यास का अर्थ और स्वरूप बहुत कुछ बदलता रहा है। कथानक जो उपन्यास का मुख्य तत्व है उसे छोड़कर भी उपन्यास लिखे गए हैं। भारतेंदु के एक अधूरे उपन्यास से शब्द लेकर कहें कि वह आपबीती भी है और जगबीती भी। वह एक समूचा वृत्तांत भी है और नये प्रयोगों तक आते-आते खंड-खंड में भी सम्पूर्ण नज़र आता है। वस्तुतः 'उपन्यास' शब्द में ही अर्थ की विविधता है। जीवन के सभी रूपों के बीच कोई ऐसा संबंध होता है, जिसे उपन्यास उद्घाटित करता है। किस्सागोई के अनेक रूप और गल्प या आख्यान के अनेक रूप उसमें घुल-मिल गये हैं। पर सबके साथ आप देखेंगे कि वह एक आधुनिक गद्य-रूप है जो जीवन को समग्रता में या कभी टुकड़ों में देख पाता है। प्रेस के उदय के साथ गद्य आया। उसे गद्य के साथ नया पाठक वर्ग मिला। उपन्यास क्या है - का उत्तर पाने के लिए हमें इन तथ्यों को भी ध्यान में रखना होगा।

पहले तो यही ध्यान में रखें कि उपन्यास उन समाजों में प्रमुख साहित्यिक विधा के रूप में सामने आया है जिनकी विशेषताओं में है - औद्योगिक सभ्यता, मध्यवर्ग और पूंजी। पर ठीक इन्हीं परिस्थितियों में सब जगह उपन्यास नहीं आया। भारतीय समाज में मध्यवर्ग की उपस्थिति के साथ किसान और किसानचेतना, स्त्री और स्त्रीचेतना को स्वीकृति मिली।

उपन्यास क्या है, प्रश्न पूछते हुए हमें कुछ चिन्तकों के विचार-सूत्र याद आ सकते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जब 1910 में 'उपन्यास' नामक निबंध लिख रहे थे तो उन्हें इसका आभास था कि यथा-आधारित इस विधा को लेखक और पाठक दोनों की अनुमान शक्ति की ज़रूरत है। यह अनुमान-शक्ति क्या है? विचार करें, तो यही कल्पना है। एक प्रकार की ऐतिहासिक कल्पना के बगैर उपन्यास विधा असंभव है। इसी में समय का बोध भी शामिल है और मानवचरित्र की मर्मस्पर्शी विविधता भी शामिल है। प्रेमचंद के अनुसार उपन्यास मानव चरित्र का चित्र मात्र है। पर हम उपन्यास के अब तक के विकास के बाद कह सकते हैं कि वह चित्र मात्र नहीं है। वह झलक भर नहीं है। वह हमारी आँखें खोल देता है और यथार्थ को हम कुछ और ही तरह से देखने लग जाते हैं। सोचने के लिए हमें हंगरी के उपन्यास आलोचक और सिद्धांतकार जार्ज लूकाच से यह विचार-सूत्र मिल चुका है कि उपन्यास 'ईश्वर विहीन दुनिया का महकाव्य' है। इस अर्थ में हमारी अनुभव-संवेदना की कोई बड़ी क्षति है, जिसका एहसास उपन्यास कराता रहता है। एक सीधे वृत्तांत रूप से काम नहीं चलता तो वह कई रूप अपनाता चलता है। अब तो उपन्यास के इतने रूप हैं कि उसे परिभाषित करना कठिन है।

2.3 उपन्यास के विभिन्न नामांतरण

उपन्यास के विभिन्न नामांतरणों पर हमने कुछ चर्चा पिछली इकाई में की थी। उपन्यास को 'नावेल' के अर्थ में लें, तो प्रायः आलोचक मानते हैं कि 'नावेल' अंग्रेजी साहित्य में ही नहीं, यूरोप में भी 'नया' था। इतिहास की दृष्टि से, जैसा हम पहले कह आये हैं - ब्रिटिश उपनिवेश बन चुके भारत में निबंध, कहानी, नाटक आदि गद्य रूपों के साथ ही उपन्यास आया। वह कथातत्व के आकर्षण से लोकप्रिय भी हुआ। मुद्रण कला का विकास, समाचार पत्रों का प्रसार, नये पाठक वर्ग का उदय और गद्य का विकास आदि कारणों ने उपन्यास के लिए आधार भूमि तैयार की। उन्नीसवीं सदी से भारतीय भाषाओं में उपन्यास मिलने लगता है। यहीं से हमारा ध्यान इस विधा के विभिन्न नामांतरणों पर जाता है। इनके निहितार्थों पर ध्यान दें तो यह कहना एक प्रकार का सरलीकरण लगता है कि 'उपन्यास रूप की दृष्टि से मुख्यतः पश्चिम की देन है।

हिंदी में 'उपन्यास' आने से पहले बंगला में 'उपन्यास' नाम प्रचलित था। यह केवल नवीनता का सूचक न था, कुछ और अर्थ दे रहा था। 'हिंदी साहित्य कोश' के खंड एक में 'उपन्यास' शब्द का

अर्थ करते हुए कहा गया है : "यह शब्द उप-समीप तथा न्यास-थाती के योग से बना है जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु। अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है।" यहीं यह भी कहा गया है कि उपन्यास शब्द हमारे लिए नया नहीं है। गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' तक इसकी दीर्घ परंपरा मानी जा सकती है यद्यपि वह आधुनिक उपन्यास नहीं है। आख्यान या दास्तान या कथा की चाहे कितनी लम्बी परंपरा क्यों न रही हो, उपन्यास है तो आधुनिक युग की देन ही।

उपन्यास के अन्य नामों में मुख्यतः गुजराती की 'नवलकथा' है या मराठी में 'कादम्बरी'। उपन्यास शब्द के इतने अर्थ दिए गए हैं - वाक्य का उपक्रम या बात का आरंभ होना, वाक्य प्रयोग, विचार, प्रस्ताव, धरोहर। धरोहर या थाती अर्थव्यंजक शब्द हैं। जानकारी के लिए, इसे स्मृति में रख लें कि कभी 'नाट्यशास्त्र' में प्रतिमुख संधि का एक भेद उपन्यास भी बताया गया है। लेकिन इस जानकारी से हमारी आज की उपन्यास-संबंधी समझ में कुछ जुड़ने वाला नहीं है। योरप में उपन्यास के लिए 'रोमांस' शब्द चला, तो यह भी स्वच्छन्दता सूचक शब्द है। इसमें साहसिक कथा और प्रेम-कथा का मिला-जुला रूप निहित है।

मराठी का 'कादम्बरी' शब्द सातवीं शताब्दी की बाणभट्ट रचित 'कादम्बरी' की याद ज़रूर दिलाता है पर दोनों में बहुत फ़र्क है और एक तरह से देखा जाय तो कोई सीधा संबंध भी नहीं है। हम आपसे पहले भी नामवर सिंह के एक निबंध का उल्लेख कर आये हैं - 'अंग्रेजी ढंग का नावेल और भारतीय उपन्यास'। यहाँ नामवर सिंह की मुख्य स्थापना यही है कि हिंदी के सभी उपन्यास या दूसरी भाषाओं के सभी उपन्यास अंग्रेजी ढंग के नावेल नहीं हैं। उदाहरण के लिए, बंकिमचंद्र का उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' या हिंदी में जगमोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न' अंग्रेजी ढंग के नावेल नहीं हैं। 'श्यामा स्वप्न' यदि कादम्बरी के निकट जाता है तो बंकिमचंद्र के उपन्यास 'रोमांस' जान पड़ते हैं। अंग्रेजी ढंग के नावेल चाहे यथार्थवादी ही हैं लेकिन हैं तो अनुकरणधर्मी। जबकि 'कादम्बरी' कल्पनाशीलता से जुड़ी विधा है। यहाँ फिर नामवर सिंह की यह धारणा याद करने योग्य है - "कभी-कभी यह ख्याल भी आता है कि यदि सभी भारतीय भाषाओं में मराठी की तरह 'नावेल' के लिए 'कादम्बरी' संज्ञा स्वीकार कर ली गयी होती तो शायद अपनी जातीय स्मृति अधिक सुरक्षित रहती और अपनी परंपरा का प्रत्यभिज्ञान हमारी कथात्मक सर्जनात्मकता में कुछ और रंग लाता।"

कह सकते हैं कि नामांतरण से कुछ न कुछ नयी विशेषता तो जुड़ ही जाती है। 'नावेल', 'नवल', 'नवलकथा', 'कादम्बरी', 'उपन्यास', 'रोमांस' - ये हैं तो उपन्यास के अनेक नाम या पर्याय, पर इनके अंतर पर ज़रूर ध्यान देना चाहिए। 'उपन्यास' शब्द में कई तरह की व्यंजकता संभव हुई होगी जब नये शिल्प, नये रूप प्रकार प्रचलन में आये होंगे। जब उपन्यास 'आत्मकथात्मक' या 'जीवनीपरक' होगा तो उसका अर्थ कुछ और होगा। फिर कभी वे डायरी के रूप में होंगे या पत्र के रूप में होंगे तो भी 'उपन्यास' की अर्थवत्ता कुछ विशेष हो उठेगी।

2.4 उपन्यास में यथार्थ और संभाव्यता

उपन्यास को यथार्थ और संभाव्यता के बीच की एक नयी परिघटना कह सकते हैं। आप अनुभव करेंगे कि यथार्थ को लेकर कई प्रकार के भ्रम प्रचलित हैं। कुछ लोग मानते हैं कि यथार्थ उतना ही है जितना हमारे सामने है या दिखता है। यदि ऐसा नहीं है तो वह अद्भुत लोक की चीज़ होगा। जबकि यह सच्चाई नहीं है। प्रेमचंद जैसे बड़े उपन्यासकारों ने भी यथार्थ को इतने सीमित अर्थ में नहीं लिया है। वे यथार्थ को जितना महत्व देते हैं उससे कम कल्पना या अनुमान को नहीं देते। आप किसी भी उपन्यास को देखें - उसका यथार्थ उतना ही नहीं होगा जो घटित हो चुका हो। वह आगे कभी संभव अर्थात् संभाव्य भी हो सकता है। संभव है वह आगे कभी वैसा ही घटित हो - आज हम जिसे कल्पनातीत मान रहे हैं। वह विगत में भी बहुत पीछे जाकर मिथकीय अर्थात् काल्पनिक नज़र आ सकता है।

हम यथार्थ और संभाव्यता के रिश्ते को यहाँ उपन्यास के संदर्भ में समझ रहे हैं। इसलिए कुछ उदाहरणों को ध्यान में रखें। जैसे 'गोदान', 'झूठा सच', 'त्यागपत्र' और 'बाणभट्ट की आत्मकथा'। इन सबमें और समग्रतः यथार्थ एक ही तरह से नहीं आता। होरी का संघर्ष, होरी की त्रासदी यथार्थ

है। पर कुछ विरल क्षण होरी के जीवन में आते हैं जो यथार्थ के समानांतर एक दूसरा यथार्थ सामने रखते हैं। दुख, हताशा, पराजय-बोध का शिकार है - होरी। यह उसका एक यथार्थ है। पर वही होरी अपराजेय है, उसमें गहरी जीवनासक्ति है, वह बाग में पहुँचता है, बसत के दिन हैं, आम पर बौर आये हैं, वह अद्भुत सुगंध फैली है। और उसका दुख जैसे उड़ जाता है। वह गाने लगता है - हिया जरत रहत दिन रैन। यह भी उसके जीवन में संभव है। त्रास में विनोद का विरल क्षण उसके जीवन का दूसरा यथार्थ है। वही 'संभाव्यता' है। आशा है आप दोनों शब्दों की अर्थ छवियाँ पहचानेंगे।

उपन्यास में यथार्थ और संभाव्यता (या कल्पना) को मिलाकर एक तरह की पूर्णता लाने का प्रयास किया जाता है। वह एक ऐसी विधा है जिसे समाज के रग-रेशे में व्याप्त माना जाता है। उसे जहाँ एक कला-कृति की तरह देखा जा सकता है, वही एक सामाजिक घटना के रूप में भी। बल्कि उसे एक अर्थ में सामाजिक संस्था मान सकते हैं। उपन्यास का यथार्थ से सम्बद्ध होना, यथार्थ चित्रण को लक्ष्य मानकर चलना स्वाभाविक है। यथार्थ से उसका संबंध इतिहास और समाज की विकास-प्रक्रिया के भीतर देखा जा सकता है। ऐतिहासिक यथार्थ है तो ऐतिहासिक कल्पना भी है। वह ऐसा वृत्तांत है जिसे हर लेखक हर बार नया वृत्तांत बनाता चलता है। तात्पर्य यह कि यथार्थ और संभाव्य को जोड़ने वाला है - उपन्यास। वह यथार्थ सम्पूर्ण या समग्र दिख सकता है पर विखंडित भी हो सकता है। यथार्थ और उपन्यास के इस पक्ष पर हम पहली इकाई में भी विचार कर चुके हैं।

एक यथार्थ उपन्यास में बृहत्तर फलक प्राप्त कर सकता है। दूसरी ओर उसे 'संभाव्य' का आश्रय चाहिए ही। लेखक उसे अपनी कल्पना से संभव या चरितार्थ करता है। वृत्तांत कथन की यह कला ऐसी है कि उसे लेखक अपनी कल्पना से रचता है और संवेदनशील पाठक अपनी कल्पना में ग्रहण करता है 'पाठकीय कल्पना' पद का प्रयोग भी आप जहाँ-तहाँ देखेंगे।

एक बात और। पारंपरिक कथा शाते ऐसी हो सकती ह कि यथार्थ उसमें कहा ही न जा सके। जैसे 1902 में जब विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े 'कादम्बरी' शीर्षक निबंध लिख रहे थे तो दो कोटियाँ बनाना आसान था - 'अद्भुत तत्वप्रधान' और 'यथार्थवादी'। यहाँ 'अद्भुत' का प्रयोग तिलस्मी ऐयारी वाले अर्थ में ही किया गया है पर अगर आज जादुई यथार्थ की चर्चा है तो भिन्न अर्थ में।

'जादुई यथार्थ' की चर्चा हम अद्भुत तत्व के संदर्भ में फिर करेगे। अभी हम यह तो समझ ही लें कि यथार्थ की प्रामाणिकता या विश्वसनीयता हूबहू तथ्य पर निर्भर नहीं है। कहा गया है कि कला का सत्य इतिहास का सत्य नहीं है। क्योंकि इतिहास के सत्य में तथ्यों का होना ज़रूरी है जबकि कलात्मक सृजन में उनका कल्पनाप्रधान कलात्मक चित्रण ज़रूरी होता है। इसीलिए हम यहाँ यथार्थ और संभाव्यता की सह-उपस्थिति को महत्वपूर्ण मानते हैं। दोनों के बीच अनुकूलता का नियम भी काम करता है और द्वन्द्वात्मकता या तनाव का भी। इसे और स्पष्ट कर लेना चाहिए। उपन्यास में दोनों अपनी अपनी जगह स्थित हैं। और दोनों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब जैसा संबंध नहीं है। कभी हम यथार्थ पर अधिक बल देते हैं कभी सभाव्यता पर। यह उपन्यास की कथावस्तु और उसे प्रस्तुत करने के लिए अपनाई गई शैली पर निर्भर करता है।

यहाँ यह भी देखने की चीज है कि कभी यथार्थ को ब्यौरों में देखना प्रत्यक्षवाद के यांत्रिक ढर्रे के अधीन था। अब जिसे हम 'दस्तावेज' मानते हैं - (जिस अर्थ में अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' मानवीय जिजीविषा का दस्तावेज़ है) - उसमें भी संभाव्य के लिए या संभाव्यता के लिए स्पेस खोज निकाली गयी है। कुछ शब्दों या अवधारणाओं को ठीक से देखना और जाँचना आवश्यक है - जैसे प्रत्यक्षवाद, विधेयवाद, अनुभववाद और उपयोगितावाद। इनमें से किसी के प्रति भी अतिरिक्त आग्रह बढ़ जाय तो इनके दायरे में महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे ही नहीं जा सकेंगे।

यथार्थ और सभाव्यता का संबंध उपन्यास में विशेष कलात्मकता की संभावना से जुड़ा है। अब आपने देख लिया है कि दूसरे साहित्य रूपों या कलारूपों की तुलना में उपन्यास का स्वरूप समाज पर अधिक निर्भर है पर यहीं सामाजिक कल्पना का विस्तार भी संभव है। सामाजिक कल्पना का तात्पर्य समाज संबंधी कल्पना से नहीं बल्कि समाज की संपूर्ण जटिल संरचनाओं को समझने और उसे अभिव्यक्त करने की क्षमता विकसित करने से है। और यह तो भूलें ही नहीं कि उपन्यास भी अपने आपमें कलाकृति है जिसमें यथार्थ के अनेक तत्व परस्पर तथा संभाव्य के साथ गुंथे हुए होते हैं। यथार्थ के साथ संभाव्यता का विवेक उपन्यासकार की कला में एक पक्ष और जोड़ता है - चयनधर्मिता। चुनने की कला। सारा घटनाचक्र अपनी जगह है पर कहते हुए उपन्यासकार सब कुछ

नहीं बताता। कुछ ही चीज़ों पर ध्यान केंद्रित करता है। प्रेमचंद साधारण यथार्थ के बयान में भी इस चयनदृष्टि का उपयोग करते हैं। 'गोदान' महत्वपूर्ण उपन्यास है क्योंकि वहाँ कोई स्थूल समाधान या उपयोगितावाद नहीं है।

सारांश के रूप में हम तीन बातों को अपने मन में रेखांकित कर सकते हैं :

1. उपन्यास का काम यथार्थ में धँसे बगैर नहीं चल सकता पर उपन्यासकार का काम 'संभाव्यता' के विवेक से ही पूरा होता है।
2. यथार्थ और संभाव्यता विरोधी शब्द नहीं हैं बल्कि उनके बीच एक तरह का द्वन्द्वात्मक संबंध होता है।
3. उपन्यास की कला यथार्थ और संभाव्य के साहचर्य और द्वन्द्व में ही संभव है।

2.5 उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप

उपर्युक्त चर्चा से इतना तो स्पष्ट हो गया होगा कि उपन्यास का यथार्थ से गहरा संबंध है। लेकिन उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति कई रूपों में हो सकती है। आदर्श के रूप में, फँटेसी के रूप में, नाटकीय रूप में, रोमांस के रूप में। और अब उपन्यास के संदर्भ में जादुई यथार्थ की भी चर्चा होने लगी है। इकाई के इस भाग में हम यथार्थ की अभिव्यक्ति के इन विभिन्न रूपों पर विचार करेंगे।

2.5.1 आदर्श और यथार्थ

उपन्यास में आदर्श और यथार्थ विषय पर कालजयी उपन्यासकार प्रेमचंद ने काफी विचार किया है। उनकी पूरी रचना यात्रा से ये शब्द जुड़े हुए हैं। वे आदर्श से यथार्थ की ओर बढ़ते हैं, कभी यथार्थ से आदर्श की ओर। इसी रूप में उनके यहाँ दो कोटियाँ बनी हुई हैं - आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और यथार्थोन्मुख आदर्शवाद। 'गोदान' को ध्यान में रखकर कहा जाता है कि यहाँ आदर्श का कोई स्वप्न या बहाना शेष नहीं है - यथार्थवाद से यथार्थवाद तक - यही है 'गोदान' की यात्रा।

अब प्रेमचंद के ही प्रगतिशील लेखक संघ वाले अध्यक्षीय भाषण पर ध्यान दें। वे सीधे कहते हैं - "नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र का लक्ष्य एक ही है। केवल उपदेश की विधि में अंतर है।" प्रेमचंद उपन्यास से अपेक्षा करते हैं कि वह यथार्थ और आदर्श में एक तरह का तादात्म्य स्थापित करे, क्योंकि दोनों समान रूप से ज़रूरी हैं। पहले जो यथार्थ और संभाव्यता पर विचार किया गया उसमें यथार्थ यदि घटित यथार्थ है तो आदर्श संभाव्य यथार्थ है। यहाँ हमें उनके शब्दों पर ध्यान देना चाहिएः

"यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धांतों की पूर्ति मात्र हो, जिसमें जीवन न हो।" प्रेमचंद दोनों का महत्व बताते हैं पर उनकी सीमा भी बताते हैं। उनका मानना है कि "वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो।"

लेकिन इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है। उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें मानव चरित्र का वैविध्य, उसकी जटिलता, वर्गीय संरचना, मनोवैज्ञानिक गठन सब कुछ महत्वपूर्ण है और उपन्यास-रूप की पूर्णता के लिए आवश्यक है। 'गोदान' का होरी हो या 'शेखर : एक जीवनी' का शेखर दोनों अंतर्विरोधों, दुर्बलताओं के पुंज हैं। पर इसी रूप में उन्हें महत्वपूर्ण चरित्र कहा जा सकता है।

अपने विकास क्रम में उपन्यास कोरे आदर्श से इनकार करता है। कथा और चरित्र की विश्वसनीयता आदर्श और यथार्थ के संगठन में ही देखी जा सकती है। लेकिन वह यथार्थ की सीमा का अतिक्रमण भी करता है, इसीलिए फंतासी या जादुई यथार्थ भी उपन्यास-कला में सहायक होते हैं।

2.5.2 फंतासी और यथार्थ

अब हम इन शब्दों पर उपन्यास के संदर्भ में विचार करेंगे। फैन्टेसी या फंतासी एक प्रकार की अतिकल्पना है। उसे अवचेतन के स्वप्न और अवचेतन की मनःस्थिति के उद्घाटन में सहायक माना गया है। उपन्यासकार फंतासी का उपयोग उपन्यास की संरचना में विशिष्टता लाने के लिए कर सकता है। विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास फंतासी और यथार्थ की बुनावट में सफल हैं। वह 'नौकर

की कमीज़' हो या 'दीवार में एक खिड़की रहती थी'। फंतासी उपन्यास-कथा के तर्क-क्रम को उलट-पुलट देती है। एक तरह का विपर्यय पैदा करती है। कहने का अर्थ यह कि फंतासी यथार्थ को अयथार्थ में बदलने की कथायुक्ति है।

फैन्टेसी या फंतासी को जादुई यथार्थवाद के निकट माना जा सकता है या अपरिचयीकरण (Defamiliarization) की कला से संबद्ध किया जा सकता है। पर ये अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। इसे यथार्थ से दूरी बनाने वाले सौंदर्य सिद्धांत के रूप में भी देखा जा सकता है। कामतानाथ का उपन्यास 'कालकथा' एकरेखीय वृत्तांत है तो अलका सरावगी का उपन्यास 'कलिकथा वाया बाईपास' काल-क्रम का विपर्यय है। इस अर्थ में यथार्थ और फंतासी का संबध विचारणीय है।

यहाँ कुछ अवधारणाओं को लेकर स्पष्टीकरण ज़रूरी है। फंतासी को एक ऐसी कला-युक्ति (device) कहा गया है जो सिनेमा, चित्रकला, साहित्य से लेकर मनुष्य के निजी जीवन प्रसंगो तक में प्रयुक्त होती रहती है। वह यथार्थ के उन आयामों के भी उद्घाटन में सक्षम है जो हमारे प्रत्यक्ष इन्द्रियबोध से परे हैं। प्रकट यथार्थ का वांछित या संभावित यथार्थ में रूपांतरण फंतासी से ही संभव है। आशा है आप इस भेद को समझ रहे हैं।

2.5.3 नाटकीयता और रामांस तत्व

उपन्यास के संदर्भ में यह सवाल उठाया जा सकता है कि क्या रोमांस तत्व के ह्रास के साथ नाटकीयता का भी ह्रास होता है। नाटकीयता का रोमांस तत्व के साथ कोई ऐसा संबंध नहीं है कि दोनों को एक साथ रखा जा सके। नाटकीयता तो नाटक के साथ कथा में विशेष रूप से लक्ष्य करने की चीज़ है। कहानियाँ कई बार नाटकीयता के कारण चर्चा में आती हैं। जैसे प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' का आरंभ ही नाटकीयता लिए हुआ है। प्रेमचंद की कहानी 'कफ़न' अपने आप में पूरा नाटक है। पिछले दिनों प्रकाशित सुरेन्द्र वर्मा के 'मुझे चाँद चाहिए' नामक उपन्यास में यहाँ से वहाँ तक चरित्रों के आमने-सामने होने की स्थितियाँ नाटकीय है। लेकिन यहाँ यह ज़रूर ध्यान दें कि हम रोमांस तत्व के ह्रास साथ नाटकीयता की क्षति के प्रश्न पर विचार कर रहे हैं।

उपन्यास और रोमांस में एक अंतर यह किया गया है - कि 'उपन्यास जहाँ अपने युग का चित्रण करता है वहाँ उदात्त भाषा में उसका वर्णन करता है जो न घटित है न संभव है। साहित्य और जीवन में चार तरह के संबंधों की कल्पना की जा सकती है - असंभव, दुर्लभ, संभव और सुलभ। रोमांस केवल असंभव या दुर्लभ को पकड़ता है। पद्यात्मक कथाएँ भी रोमांस हो सकती हैं। उपन्यास का संबंध प्रकट यथार्थ और नाटकीय संभाव्य से है। जो घटित नहीं है पर घटित हो सकता है, वह प्रायः एक नाटकीय क्षण की तरह ही आता है। उपन्यास पहले रोमांस के रूप में ही था जिसे साहसिक कथा और प्रेमकथा का संयोग भी कहा जा सकता है। जैसे तिलस्मी ऐयारी प्रकृति वाले उपन्यास इस संयोग के ही उदाहरण हैं। आगे चलकर यथार्थवाद के प्रधान होने के चलते इन दो तत्वों का ह्रास हुआ है और ठीक-ठीक इन्हीं रूपों में उपन्यास की पहचान कठिन हो गयी है। अब भी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में - जैसे 'अनामदास का पोथा' में ये दोनों उपलब्ध हैं। इसी अर्थ में द्विवेदी जी ने अपने उपन्यास को 'गल्प' कहा है।

भारतीय उपन्यासकारों में बंकिमचंद्र के उपन्यासों की चर्चा हम पहले कर आये हैं। 'दुर्गेश नन्दिनी' कपालकुन्डला', 'आनंदमठ' आदि उनके कई उपन्यासों को 'रोमांस' कहा गया है। उनके 'सामाजिक उपन्यास' भी सामाजिक 'रोमांस' कहे गये हैं। वास्तविकता यह है कि उनके अधिकांश उपन्यासों में रोमांस और उपन्यास के तत्व घुले-मिले हैं। हिंदी में यह बात केवल हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों के बारे में कही जा सकती है। इस तत्व की क्षीणता के साथ नाटकीयता का प्रभाव भी कम हो सकता है। पर तब हम नाटकीयता को काल्पनिक छलांग या उछाल के अर्थ में ही लेंगे।

एक बार फिर 'रोमांस' शब्द पर ध्यान दें। 'हिंदी साहित्य कोश' में कहा गया है - 'रोमांस शब्द 'रोमन' से निकला है जिसका अर्थ है असाधारण। अर्थात् रोमांस उपन्यास में जो पात्र होंगे वे ऐसे तो न होंगे जो इस पार्थिव जगत में पाये ही न जा सकें पर वे लाखों में एक होंगे और विरल होंगे।' पहले हमने कहा ही है - दुर्लभ से रोमांस का संबंध है। 'हिंदी साहित्य कोश' में कहा गया है - 'हिंदी में विशुद्ध रोमांस उपन्यास है ही नहीं।' आज मनोहरश्याम जोशी, विनोद कुमार शुक्ल के यहाँ रोमांस और उपन्यास के तत्वों का मिश्रण देखा जा सकता है। पर हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए

कि आलोचना में 'रोमांस' और 'यथार्थ' जैसे पद स्थिर पद (terms) नहीं हैं। लचीले हैं और उनके अर्थ बदलते रहते हैं। कथा युक्तियाँ बदली हैं तो शब्दों के अर्थ भी बदले हैं।

2.5.4 जादुई तत्व और यथार्थ

यहाँ एक सावधानी आपसे अपेक्षित है। अद्भुत तत्व और जादुई तत्व कहीं समानार्थी भी हो सकते हैं और प्रचलन से उनमें काफी अर्थ-भिन्नता हो सकती है। जादुई यथार्थ की अवधारणा लेकर जादुई यथार्थवाद सामने आया है। जहाँ तक बीसवीं शताब्दी के एकदम आरंभ का सवाल है, जब 'अद्भुत' तत्व की चर्चा शुरू हुई तो उसे यथार्थवाद के उदय से पहले के तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों से जोड़कर देखा गया। हम पहले राजवाड़े के 1902 में प्रकाशित निबंध 'कादम्बरी' की चर्चा कर चुके हैं। वहाँ अद्भुत रस प्रधान उपन्यासों के विरूद्ध यथार्थवादी उपन्यासों को प्रतिष्ठा दी गयी है। आज जब हम आपसे इस विषय पर चर्चा करने जा रहे हैं तो यह स्पष्ट है कि जादुई यथार्थ यथार्थ की अवधारणा का विस्तार करता है। यथार्थ में ही एक तरह का जादुई तत्व भी निहित होता है। मुख्यतः उपन्यास को गंभीर अर्थ में कलाकृति मानने वाले जादुई तत्व का मर्म जानते हैं।

उदयप्रकाश हिंदी कहानी में जादुई यथार्थवाद के कारण चर्चित हैं। विनोदकुमार शुक्ल ने उपन्यासों का ढाँचा जादुई यथार्थवाद के आधार पर निर्मित किया है। यहाँ हम अवधारणा के रूप में 'जादुई यथार्थवाद' पद को स्पष्ट करना चाहेंगे। जादुई यथार्थवाद लातीनी अमरीकी देशों का एक कथा आंदोलन था। मार्क्वेज़ का 'वन हण्ड्रेड इयर्स ऑफ सालिट्यूड' नामक नोबेल पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास इसका अन्यतम उदाहरण माना गया है। इसलिए आपके मन में स्पष्ट रहना चाहिए कि हम कोटियाँ बनाकर जिन अवधारणाओं पर विचार कर रहे हैं, महत्वपूर्ण कृतियाँ उनको बराबर चुनौती देती रही हैं। जैसे यथार्थ और अयथार्थ, यथार्थ और कल्पना, यथार्थ और फंतासी। जादुई तत्व और उपन्यास में यथार्थ की बदली अवधारणा को इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

2.6 यथार्थवाद और उपन्यास

यथार्थवाद को लेकर, उसके अनेक भेदों को लेकर काफी भ्रम प्रचलित हैं। समाजवादी यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद की बहस तो सैद्धांतिक है और लम्बे समय से चल रही है। मनौवैज्ञानिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, प्रकृतवाद और अब जादुई यथार्थ और यथार्थवाद की चर्चा है। पर ये सभी कोटियाँ कई बार उलझन पैदा करती हैं।

आपको याद रखना चाहिए कि यथार्थवाद का प्रयोग दो रूपों में होता है - एक उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्यिक आदांलेन के रूप में जिसका प्रभाव चित्रकला और अन्य कलाओं पर भी पड़ा। फ्रांस में बाल्ज़ाक का नाम उससे जुड़ा है। दूसरे साहित्य में वस्तु चित्रण की एक नयी पद्धति के रूप में जहाँ चीज़ों को ब्यौरों (details) में देखना उपयोगी समझा गया। हिंदी में प्रगतिवाद के आने पर यथार्थवाद की पक्षधरता बढ़ी पर वह इतनी बढ़ी कि हमने उसे सरल सपाट यथार्थवाद तक सीमित कर दिया। अकेले प्रेमचंद इसे चुनौती देने में सक्षम हैं। वे उपन्यास में स्थूल यथार्थवाद के विरोधी हैं। 'गबन' में भी द्वन्द्व है, जटिलता है, और थोपा हुआ आदर्शवाद नहीं है।' 'गोदान' तो यथार्थवाद को ऊँचाई तक ले जाने वाला उपन्यास है ही।

यथार्थवादी उपन्यास को रोमांस से अलग देखना चाहिए। रोमांस में संभाव्य के लिए ही नहीं, एक तरह के चमत्कार के लिए भी गुंजाइश है। यथार्थवाद भी तथ्यात्मकता तक सीमित नहीं है। वह उसका अतिक्रमण करता है। यथार्थवाद भी कला का मर्म समझते हुए अनुभव करता है कि घटनाओं का यथातथ्यात्मक चित्रण यथार्थवाद नहीं है। यथार्थवाद भी यथार्थ का रूपांतरण है। तॉल्सतॉय आदि के यथार्थवादी उपन्यास अंतःबाह्य संघर्ष के विस्तार में आपको ले जाते हैं। सच्चा यथार्थवाद अपने आप में सरल उपयोगितावाद नहीं है। वह भी चयनधर्मी होना चाहता है। जब वह साधारण पर बल देना, नगण्यता पर बल देना ज़रूरी समझता है तो ऐसा सोद्देश्य करता है और उसकी कलात्मकता को ग़ैर ज़रूरी नहीं मानता।

उपन्यास में यथार्थवाद और उसके विविध रूपों के चित्रण को लेकर अब आपके मन में कुछ बातें स्पष्ट होनी चाहिए। एक यह, कि यथार्थवाद व्यक्तियों, वर्गों और वस्तुओं के बाहरी रूप चित्रण तक सीमित नहीं होता। वह विभिन्न प्रकार के संबंधों को भी अभिव्यक्त करता है। दूसरी बात, यह कि

यथार्थवाद भी गद्य और उपन्यास के आने से पहले एक कला आंदोलन का रूप ले चुका था और उसने प्रामाणिक विश्वसनीय चित्रण के लिए विश्वसनीयता हासिल कर ली थी। तीसरी बात यह कि यथार्थवाद वस्तु और रूप की द्वंद्वात्मकता को महत्व देता है। चौथी और अंतिम बात यह कि उपन्यास में चित्रण या अभिव्यक्ति-पद्धति की दृष्टि से भी उपन्यास समाज के साथ जीवंत सक्रिय संवाद चाहता है। उपन्यास और यथार्थवाद के जाने-माने व्याख्याकार रूसी आलोचक बाख्तिन ने इसी अर्थ में उपन्यास की संवादधर्मिता को केंद्रीय विशेषता माना है। आशा है आप 'गोदान' (प्रेमचंद), 'झूठा सच' (यशपाल), 'मैला आँचल' (फणीश्वरनाथ रेणु), 'तमस' (भीष्म साहनी), 'ज़िंदगीनामा' (कृष्णा सोबती), 'महाभोज' (मन्नू भंडारी), 'उस चिड़िया का नाम' (पंकज बिष्ट) आदि उपन्यासों के आधार पर अपने यथार्थवाद विषयक ज्ञान की समीक्षा विवेकपूर्वक कर सकेंगे। निराला का मानना था कि धारा के विरूद्ध जाकर ही उपन्यास युगांतर ला सकता है। इसलिए यथार्थवाद न वस्तुक्षेत्र को सीमित करता है और न शिल्प में प्रयोग की खोज का रास्ता बंद करता है। प्रकृतवाद (Naturalism) यथातथ्यात्मक हो सकता है, यथार्थवाद ऐसा नही है। वह दृष्टि भी है और कला भी।

2.7 सारांश

आपने एम.एच.डी.-13 के खंड-1 की दूसरी इकाई का अध्ययन किया है। आइए, अंत में, हम फिर पूरी इकाई के सार्थक महत्वपूर्ण विचार सूत्रों को चिह्नित कर लें। 'उपन्यास का अर्थ और स्वरूप' नामक इस इकाई के अंतर्गत हमें यह विचार करना था कि उपन्यास सबसे पहले है क्या? क्या केवल एक नया गद्य रूप या लम्बी स्मृतियों से जुड़ा नया रूप प्रकार जो युग के यथार्थ को कभी विस्तृत और कभी सीमित फलक पर चित्रित करने में सक्षम है!

उपन्यास के विभिन्न नामांतरणों से - जैसे 'नवलकथा', 'कादम्बरी' और 'उपन्यास' से उपन्यास की मूल अवधारणा में क्या कोई अंतर आया है। इस पर भी इकाई में विचार किया गया है। इसके बाद उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर विचार किया गया है जिसके अंतर्गत हमारे विचार-क्रम में ये संदर्भ रहे हैं - यथार्थ और संभाव्यता का संबंध, आदर्श और यथार्थ का संबंध, फंतासी और यथार्थ का संबंध, जादुई तत्व और यथार्थ का संबंध। नाटकीयता और रोमांस तत्व के ह्रास पर भी हमने इसी भाग में विचार किया है - यह स्वीकार करते हुए कि दोनों में बहुत सीधा संबंध नहीं है। रोमांस में क्योंकि नायक की संघर्षगाथा और प्रेमगाथा एक साथ संभव है तो यहाँ नाटकीयता संभव है और फिर रोमांस का युग बीत जाने के बाद उस नाटकीयता का ह्रास भी संभव है। अंतिम चरण में हमने यथार्थवाद और उपन्यास के संबंध पर विचार किया है क्योंकि जहाँ उपन्यास के उदय के पीछे दूसरे कारण हैं, वहीं यथार्थवाद का उदय भी एक कारण है। उपन्यास के संदर्भ में यथार्थवाद के विभिन्न रूपों का अध्ययन आगे भी करेंगे।

अभ्यास

यहाँ दो प्रश्न दिये गये हैं। इनके उत्तर से हम जान सकेंगे कि आपकी समझ उपन्यास विधा के बारे में कितनी बढ़ी है। यह भी ध्यान में रखें कि आप अवधारणाओं को स्पष्ट करने के लिए चुने हुए उपन्यासों को आधार बनायेंगे। हम चाहेंगे कि आप उपन्यास का सारांश जानकर संतुष्ट न होंगे। आप स्वयं उन उपन्यासों को पढ़ेंगे और उनके आधार पर आत्मपरीक्षण करते चलेंगे।

1. उपन्यास में यथार्थ और संभाव्यता की अभिव्यक्ति पर विचार करते हुए यथार्थ के विभिन्न रूपों का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

2. उपन्यास के संदर्भ में यथार्थवाद के महत्व का विश्लेषण कीजिए।

इकाई 3 उपन्यास का उदय और उसके कारण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 उन्नीसवीं सदी में उपन्यास
3.3 उपन्यास के उदय के कारण
   3.3.1 सामंतवाद का ह्रास
   3.3.2 पूंजीवादी सभ्यता
   3.3.3 आधुनिक मध्यवर्ग का उदय
   3.3.4 मुद्रण कला का विकास और पत्र-पत्रिकाएँ
   3.3.5 गद्य के विकास में उपन्यास का महत्व
3.4 नये पाठक वर्ग का उदय
3.5 उपन्यास में देशकाल
3.6 किसान-चेतना और स्त्री-चेतना
3.7 उपन्यास में नायकत्व की संकल्पना
3.8 सारांश

3.0 उद्देश्य

एम.ए. हिंदी के उपन्यास संबंधी माड्यूलर का पहला पाठ्यक्रम एम.एच.डी.-13 का आप अध्ययन कर रहे हैं। इस कार्यक्रम के पहले खंड की इस तीसरी इकाई के अंतर्गत हम 'उपन्यास का उदय और उसके कारण' पर विचार करेंगे। इससे पूर्व आपको स्मरण है, हम जिन दो इकाइयों पर विचार कर चुके हैं वे हैं -'आख्यान के विभिन्न रूप और उपन्यास' तथा 'उपन्यास का अर्थ और स्वरूप ।

यहाँ तीसरी इकाई के अंतर्गत हम उन्नीसवीं सदी में उपन्यास की स्थिति पर विचार करत हुए उसके उदय के कारणों को समझने का प्रयास करेंगे - जैसे, सामंतवाद का ह्रास, पूँजीवादी सभ्यता के उदय से उपन्यास के जन्म की संभावना, मध्यवर्ग के आधुनिक स्वरूप, मुद्रण कला अर्थात् प्रेस का विकास, पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका, उपन्यास विधा के महत्व और केंद्रीयता आदि विभिन्न विषयों पर इकाई में विचार किया जाएगा। इसी के साथ हम नये पाठक वर्ग के उदय, देश-काल और समय की चुनौतियाँ, स्त्री-चेतना और किसान-चेतना के उभार, नायकत्व और अनायकत्व के द्वंद्व की भी चर्चा करेंगे। इन्हीं बातों को ठीक से समझना और उपयुक्त उदाहरण चुनना हमारा उद्देश्य होगा। यह चुनाव हमारी तरह आप भी करेंगे।

3.1 प्रस्तावना

अब तक आप उपन्यास के सैद्धांतिक पक्ष के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन कर चुके हैं। आख्यान के विभिन्न रूपों के संदर्भ में उपन्यास विधा और उपन्यास के अर्थ और स्वरूप पर विचार। उपन्यास को पूंजीवाद के विकास के साथ जोड़कर देखा जाता है। उपन्यास का उदय किन ऐतिहासिक परिस्थितियों में हुआ, यही इस इकाई का मुख्य विचारणीय विषय है।

आप आरंभ में ही जान लें कि कोई भी विधा समाज और युग की विशिष्ट परिस्थितियों के भीतर से ही जन्म लेती है। आपको बताने की ज़रूरत नहीं है कि महाकाव्य प्राचीनतम साहित्य-रूप है। रामायण और महाभारत हमारे यहाँ इसके उदाहरण हैं। महाकाव्य मूलतः मौखिक साहित्य रूप रहा है। मौखिक और गेय। गण-समाज के साथ ही उस तरह के महाकाव्य की कल्पना जुड़ी थी। सामंती समाज में उसका परिष्कार और विकास संभव हुआ। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया को ध्यान से देखें। अब विचार करें कि क्यों सामंती युग के अंत के साथ महाकाव्य की संभावना क्षीण होती गयी। लिखने के लिए महाकाव्य अब भी लिखे जाते हैं। 'कामायनी' लिखी ही गयी है। उदाहरण और भी होंगे पर देखें कि स्वरूप बदल गया है।

अब आप इस तीसरी इकाई तक आते-आते जान लेंगे कि जैसे महाकाव्य गणसमाज और आगे सामंती समाज की देन है, उपन्यास पूँजीवादी युग में ही विकसित होने वाला साहित्य-रूप है। हेगेल की प्रसिद्ध व्याख्या है कि उपन्यास पूँजीवादी समाज में संभव होने वाला एक विशेष साहित्य रूप है जो आधुनिक युग में महाकाव्य का विकल्प है और एक अर्थ में मध्यवर्ग का महाकाव्य है। हम यहीं उन्नीसवीं सदी में उपन्यास की स्थिति के बारे में विचार करेंगे। विशेष रूप से हिंदी उपन्यास को देखें कि उन्नीसवीं सदी में कब और क्यों उपन्यास आया।

3.2 उन्नीसवीं सदी में उपन्यास

यूरोप में उपन्यास का लेखन अठाहरवीं सदी में शुरू हो गया था॥ लेकिन भारत में भारतीय भाषाओं में उपन्यास सीधे-सीधे आधुनिक काल की देन है जिसकी शुरुआत 19वीं सदी से होती है। आगे पीछे सभी भारतीय भाषाओं में उपन्यास आधुनिक काल में ही संभव हुआ। 1857 में पहले स्वतंत्रता संग्राम का आरंभ माना जाता है - यानी बंगाल के आधुनिक काल के काफी बाद। अंग्रेजों ने आने के साथ ही कई काम किये -समाज की आर्थिक संरचना थोड़ी बदली। ज़मीदार, महाजन, किसान, मज़दूर जैसी वर्गीय पहचान बनी। नये वर्ग-संबंध बने। उपनिवेशवाद ने नया ढाँचा बनाया। प्रेस की स्थापना के साथ छपाई की कला विकसित हुई। अख़बार निकलने लगे। पत्रिकाएँ भारतेंदु युग में कई निकलीं। नयी तरह की शिक्षा पद्धति का आरंभ हुआ जिसे अंग्रेजी शिक्षा के नाम से जाना गया है। मध्यवर्ग प्रमुख रूप से सामने आया। स्त्री शिक्षा के पक्ष में स्थितियाँ बनी और उसका विस्तार हुआ। स्त्रियों से संबंधित पत्रिकाएँ भी निकलीं।

अब प्रश्न यह कि उन्नीसवीं सदी में जो उपन्यास आये उनकी विषय-वस्तु क्या थी। एक अधूरा उपन्यास भारतेंदु ने भी लिखा था - 'कुछ आपबीती कुछ जगबीती'। यह शीर्षक कुछ तो उपन्यास की एक परिभाषा भी बनाता ही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवास दास के 'परीक्षागुरुं' (1882) को हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास कहा था। आपको याद होगा कि इसे अंग्रेजी ढंग का पहला 'नावेल' कहा गया और इसकी विषयवस्तु को मध्यवर्ग से जोड़ा गया। इस परंपरा को 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870) या 'भाग्यवती' (1887) से भी जोड़ा जाता है कि उपन्यास यात्रा की कहानी कुछ और पीछे जा सके। 'परीक्षागुरु' का महत्व प्रायः निर्विवाद है। उसमें सुधारवाद और यथार्थवाद जैसी प्रवृत्तियों के बीज भी हैं।

इसी उन्नीसवीं सदी में बालकृष्ण भट्ट के दो उपन्यास 'नूतन ब्रह्मचारी' (1887) और 'सौ अजान एक सुजान' (1892) लिखे गए। इनमें भी समाज सुधार की चर्चा है। राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिंदू', जगमोहन सिंह का 'श्यामास्वप्न' भी लिखे गए। क्योंकि हम यहाँ हिंदी उपन्यास के विकास का इतिहास नहीं बता रहे हैं इसलिए इतना ही बता दें कि अद्भुत तत्व, सुधारवाद और आगे चलकर यथार्थवाद सब कहीं 'उपन्यास' विधा को प्रभावित करने में सहायक हुआ। हम केवल इतना अभी जान लें कि देवकीनंदन खत्री का प्रसिद्ध उपन्यास 'चंद्रकांता' सन् 1891 में प्रकाशित हुआ जो उपन्यास में अद्भुत तत्व के महत्व को समझने में सहायक है। इसने उपन्यास को व्यापक लोकप्रियता दी। हम मराठी के 'कादम्बरी' नामक निबंध की चर्चा कर चुके हैं जो 1902 में प्रकाशित हुआ था और जो अद्भुत तत्व से, कुतूहल से उपन्यास को जोड़ता था। आगे हम सीधे उपन्यास के उदय के कारणों पर विचार कर सकते हैं। तथ्य यह भी है कि उड़िया के फकीरमोहन सेनापति 1897 में 'छह बीघा ज़मीन' नामक उपन्यास लिखे चुके थे जो प्रेमचंद के बहुत पहले हुए।

अब यद्यपि हम उन्नीसवीं सदी में उपन्यास की चर्चा को बहुत विस्तार नहीं दे सकते, पर न भूलें कि यही उन्नीसवीं सदी थी जिसने दुनिया में बाल्ज़ाक और ताल्सतॉय जैसे महान् उपन्यासकारों को जन्म दिया और भारत में बंकिमचंद्र, रवींद्र नाथ ठाकुर, जैसे महान् उपन्यासकारों के साथ-साथ हिंदी में बीसवीं सदी में उपन्यास को महान् प्रतिष्ठा दिलाने वाले प्रेमचंद जैसे लेखकों से परिचित कराया। उपन्यास में यथार्थवाद के उदय के लिए परिस्थितियाँ उन्नीसवी सदी में मौजूद थीं। आगे हम इन्हीं कारणों के विस्तार में जाएँगे।

3.3 उपन्यास के उदय के कारण

हम यहाँ उपन्यास के उदय के कारणों की चर्चा करेंगे। संक्षेप में कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं जिनकी एक झलक हम आपको दे भी चुके हैं :

- सामंतवाद का ह्रास

- पूँजीवादी सभ्यता
- आधुनिक मध्यवर्ग का उदय
- मुद्रण कला का विकास और पत्र-पत्रिकाएँ

इनके आधार पर हम जान सकेंगे कि गद्य के विकास-रूपों में उपन्यास का क्यों विशेष महत्त्व है?

3.3.1 सामंतवाद का ह्रास

हम अभी-अभी आपका ध्यान इस ओर आकृष्ट कर सके हैं कि उपन्यास विधा के उदय के कारणों में महत्वपूर्ण है सामंतवाद का ह्रास। सामंतवाद की संरचना के भीतर महाकाव्य या विशेष प्रकार के चरित्र काव्य ही लिखे जा सकते थे। पर इसी सामंतवाद के अंतर्विरोध भी रहे होंगे जिन्होंने पूँजीवाद को जन्म दिया। सामंतवाद और पूंजीवाद के संक्रमण का दौर इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होता है। सामंतवाद सब कहीं अचानक एक ही तरह से ख़त्म नहीं होता। भारत में तो सामंतवाद की जड़ें इतनी गहरी रही हैं कि सामंती संस्कारों के अवशेष दूर तक दिखाई देते हैं। भारत में कृषि संबंधों की संरचना में सामंतवाद के अनेक सकारात्मक रूप भी दिखाई देते हैं और दमनकारी रूप भी दिखाई देते हैं। तो, एक तथ्य तो यह है कि सामंतवाद के ह्रास के साथ ही महाकाव्य का युग समाप्त होता है, और उपन्यास-रूप के उभरने की संभावना जन्म लेती है। सामंतवाद के ह्रास के साथ पूंजीवाद में मध्यवर्ग का उभार भी दिखाई देता है और बीतते समय की त्रासदी भी प्रकट होने लगती है। सामंतवाद के ह्रास से उपन्यास विधा का उदय संभव हुआ, यह एक सच्चाई है। दूसरी सच्चाई यह है कि लम्बे समय तक उपन्यास की विषयवस्तु भी सामंतवाद के प्रभुत्व और ह्रास के अंतर्विरोध ही रहे हैं।

3.3.2 पूँजीवादी सभ्यता

स्पष्ट है कि महाकाव्य सामंत युग की विधा है। सामंतवाद के क्रमशः ह्रास के साथ और पूँजीवादी सभ्यता के उदय और विकास के साथ उपन्यास विधा का विकास संभव हुआ। महाकाव्य की गेयता और मौखिकता से अलग उपन्यास प्रकृति या स्वभाव में ही वर्णनात्मक, विवरण प्रधान तथा लिखित साहित्य-रूप है। यहाँ हम एक दो महत्वपूर्ण बातों की ओर आपका ध्यान फिर आकृष्ट करेंगे। उपन्यास आधुनिक साहित्य-रूप है। साहित्यिक रूपों का स्वरूप केवल ऐतिहासिक नहीं होता बल्कि उसके निर्माण में वर्गीय मूल्यों की भी भूमिका होती है। इसीलिए उपन्यास के अधिकतर चरित्र 'टाइप' या 'वर्गीय' होते हैं। आप तत्काल समझ लेते हैं कि 'गोदान' का होरी किस वर्ग का प्रतीक है या 'गोदान' के राय साहब किस वर्ग के प्रतीक हैं या खन्ना किस वर्ग का प्रतीक है।

इस प्रकार उपन्यास रूप ही ऐसा बना जिसमें हम समाज की वर्गीय संरचना और उसकी जटिलता को देख सकें। यह अतर भी देखें कि सामंती समाज में दरबार और धार्मिक संस्थाएँ या प्रतिष्ठान महत्वपूर्ण होते हैं तो पुराने काव्य रूपों में प्रशस्ति काव्य लिखे जाने लगते हैं। पूँजीवाद के विकास के दौर में राजनीति और बाज़ार की महत्ता प्रकट होने लगती है। इस रूप में भी उपन्यास के उदय के कारणों में पूँजीवादी सभ्यता का महत्व है। रैल्फ फॉक्स के शब्दों में कहें तो, "उपन्यास विश्व की कल्पना-प्रसूत संस्कृति को बूर्जुआ अथवा पूँजीवादी सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण देन है।"

3.3.3 आधुनिक मध्यवर्ग का उदय

आप पहले ही हेगेल की इस मान्यता से परिचित हो चुके हैं कि उपन्यास मध्यवर्ग का महाकाव्य है। आधुनिक युग में उपन्यास महाकाव्य का विकल्प है। अर्थात् पहले महाकाव्य की जो भूमिका थी - एक प्रबंध में वीर-कुलीन नायक के चरित्र की गाथात्मक प्रस्तुति, आधुनिक युग में वह मुख्यतः मध्यवर्ग की दास्तान है। मध्यवर्ग एक स्तरीय नहीं है। आगे चलकर हम उच्च-मध्यवर्ग, सामान्य मध्यवर्ग या निम्न-मध्यवर्ग की कोटियाँ बनाने लगते हैं। इस मध्यवर्ग की भूमिका इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि वही शिक्षित कहलाने का श्रेय प्राप्त करता है और हम एक बौद्धिक मध्यवर्ग की कोटि बनाने लगते हैं। प्रेमचंद जहाँ उपन्यास में किसान चरित्र की महागाथा लिखना चाहते हैं वहीं मध्यवर्ग की महागाथा भी लिखना चाहते हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इस मध्यवर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वह क्रांति या विद्रोह में आगे भी आ जाता है और दूसरी ओर उसमें एक दुचित्तापन भी होता है, दुर्बलताएँ भी होती हैं। वह झूठ भी बोलता है। मिथ्या गर्व की अनुभूति से भी ग्रस्त होता है। चरित्र की जटिलता के कारण भी वह उपन्यास की महत्वपूर्ण संभावना बनता है।

दूसरी ओर वही उपन्यास का सबसे बड़ा उपभोक्ता वर्ग या पाठक वर्ग भी है। उपन्यास की लोकप्रियता, बाज़ार में स्वीकृति आदि प्रश्न भी उपन्यास में मध्यवर्ग की भूमिका से जुड़े हैं।

3.3.4 मुद्रण कला का विकास और पत्र-पत्रिकाएँ

उपन्यास के उदय के कारणों में एक महत्वपूर्ण कारण मुद्रण कला का विकास भी है जिसके चलते गद्य के नये रूपों की संभावना बनी। हिंदी में उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में उपन्यासों का प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एक ध्यान देने योग्य घटना है। अनूदित उपन्यास भी इस बीच प्रकाशित होने लगे। जहाँ श्रीनिवास दास का 'परीक्षागुरु', 'बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' उपन्यास प्रकाशित हुए, वहीं 'दुर्गेशनंदिनी', 'चंद्रप्रभा पूर्ण प्रकाश' सौंदर्यमयी' जैसे अनूदित उपन्यास भी प्रकाश में आये।

यह मुद्रण की सुविधा के कारण ही संभव हुआ कि इसी आरंभिक दौर में देवकीनंदन खत्री ने 'उपन्यास लहरी', 'किशोरीलाल गोस्वामी ने 'उपन्यास', गोपालराम गहमरी ने 'जासूस' जैसी उपन्यास-केंद्रित पत्रिकाएँ निकालीं। 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन', 'हिंदी प्रदीप', 'ब्राह्मण' आदि पत्रिकाएँ अलग से निकल ही रही थीं जिनका गद्य के प्रसार में विशेष योगदान है। कई पत्र-पत्रिकाओं में उपन्यास संबंधी विवाद भी प्रकाशित हुए। 'चंद्रकांता' (देवकीनंदन खत्री) को लेकर लम्बा विवाद चला। 'सुदर्शन', 'समालोचक' और 'इंदु' जैसी पत्रिकाओं के उपन्यास-संबंधी विवाद साहित्य के इतिहास में चर्चित रहे हैं।

3.3.5 गद्य के विकास में उपन्यास का महत्व

अभी आप उपन्यास के विकास में मुद्रण-कला की भूमिका पर विचार कर चुके हैं। यह बात आपके मन में स्पष्ट हो गई होगी कि प्रेस की स्थापना और मुद्रण कला के विकास के साथ ही गद्य आया। पहले का साहित्य प्रायः काव्य-साहित्य रहा है। गद्य का आगमन आधुनिक काल के आरंभ की बड़ी घटना है। गद्य आया तो कई प्रमुख-अप्रमुख गद्य रूप सामने आये। इस प्रकार हमारा परिचय सर्जनात्मक गद्य से हुआ। उपन्यास को तो गद्य का पहला बड़ा आविष्कार कहा ही गया है, नाटक, कहानी और निबंध भी महत्वपूर्ण गद्य-रूप हैं। इसी क्रम में आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र जैसे अकाल्पनिक गद्य-रूप भी प्रकाशित हुए।

इसमें संदेह नहीं कि उपन्यास आधुनिक गद्य की सबसे महत्वपूर्ण विधा है और उसकी सजर्नात्मक क्षमता निर्विवाद है। उपन्यास रूप के भीतर ही कितने रूप-प्रकार भी संभव हुए हैं जैसे उपन्यासिका, लघु उपन्यास, आंचलिक उपन्यास। इसी प्रकार अनेक शैली रूपों में उपन्यास लिखे गए। जैसे आत्मकथात्मक उपन्यास, जीवनीपरक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास। आप आज तक उपन्यास रूप के भीतर से विकसित नये से नये गद्य रूपों की संभावना देख सकते हैं। यह उपन्यास विधा की क्षमता का ही प्रमाण है।

3.4 नए पाठक वर्ग का उदय

उपन्यास विधा ने अपने जन्म के साथ ही अपनी लोकप्रियता प्रमाणिता की और एक बड़ा और नया पाठक वर्ग बनाया। इस दृष्टि से हिंदी में देवकीनंदन खत्री के तिलस्मी उपन्यास 'चंद्रकांता' का विशेष महत्व है। इसने लोकप्रियता का जो कीर्तिमान बनाया वह उपन्यास के इतिहास में एक उदाहरण है। एक तो यह पाठक बहुसंख्यक रूप से मध्यवर्ग से आता है, दूसरे वह मध्यवर्ग विशेष प्रकार का उपभोक्ता वर्ग होता है। वह बाज़ार को भी प्रभावित करता है। उपन्यास के साथ पाठक वर्ग के व्यापक प्रसार का आकलन करने के लिए कई प्रकार के शोधपरक अध्ययन किए गए हैं और देखा गया है कि उपन्यास का पाठक वर्ग, आयु, लिंग, आर्थिक स्थिति, वर्गीय स्थिति आदि की भिन्नता सब दृष्टियों से उपन्यास की लोकप्रियता के कारणों की समझ में सहायक है।

उपन्यास के सभी पाठक एक-से सौंदर्यबोधीय संस्कारो वाले, या साहित्यिक आस्वादन की क्षमता वाले नहीं होते। वे विभिन्न वर्गों और स्तरों से, पेशों से, रुचियों से आते हैं और उपन्यास को अपने ख़ास दृष्टिकोण से पढ़ते हैं। यहीं पाठकवर्ग की अभिरुचि का प्रश्न महत्वपूर्ण होता है। जिस उपन्यास को एक वर्ग असाहित्यिक ठहराता है उसे ही दूसरा वर्ग लोकप्रिय घोषित करता है और लोकप्रियता को अपनी कसौटी बताता है।

यहीं हमें लोकप्रिय उपन्यास के समाजशास्त्र पर विचार करने की आवश्यकता है। क्यों पाठक बड़ी संख्या में सस्ते सनसनीखेज उपन्यास की ओर भागते हैं। प्रायः अश्लीलता के लिए चर्चित उपन्यास ख़बरों में होते हैं और पाठक और बाज़ार को आकृष्ट या प्रभावित करते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से, कभी धार्मिक आस्था की दृष्टि से भी उपन्यास विवाद का विषय बनते हैं। जैसे अंग्रेजी में सलमान रुश्दी का चर्चित, जहाँ-तहाँ प्रतिबंधित और विवादग्रस्त उपन्यास 'शैतान की आयतें' (सैटानिक वर्सेज़)। ऐसी कृतियाँ लगातार चर्चा में होती हैं।

'चन्द्रकांता' (देवकीनंदन खत्री) का प्रकाशन 1887 में हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखा : *"हिंदी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकीनंदन खत्री का स्मरण* एक बात के लिए सदा बना रहेगा कि जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किये उतने और किसी ग्रंथकार ने नहीं। 'चंद्रकांता' पढ़ने के लिए न जाने कितने उर्दूजीवी लोगों ने हिंदी सीखी।" यह संकेत है कि उपन्यास का संबध हमेशा पाठक से बना रहता है और पठनीयता या लोकप्रियता का प्रश्न उपन्यास को लेकर उठता ही रहता है। हम यह समझ सकते हैं कि 'चंद्रकांता' और इस तरह के दूसरे उपन्यासों के बहुतेरे पाठक मध्यवर्ग के ही रहे होंगे। इस मध्यवर्गीय पाठक की विशेषता और सीमा बताते हुए कहा गया है कि ये लोग अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित थे और उपनिवेशवादी शासकों और उनकी संस्कृति के प्रभाव में रहकर भी भारत के गौरवमय अतीत के सम्मोहन से मुक्त न थे। यही नया मध्यवर्ग था जिससे उपन्यास विधा का बृहत्तर पाठक समाज बना। फिर इसके स्वरूप और चरित्र में बदलाव आता गया।

3.5 उपन्यास में देशकाल

'देशकाल' अपने आप में पूर्ण पद है। देश यानी *स्थान। यानी भूगोल। उपन्यास जिस स्थान या परिदृश्य* पर केंद्रित होते हैं उसकी विशिष्टता उपन्यास का रूप भी निर्धारित करती है और अंतर्वस्तु भी। 'मैला आंचल' फणीश्वरनाथ रेणु का प्रसिद्ध और चर्चित उपन्यास है। उसमें देश यानी स्थान यानी अंचल और उसका परिदृश्य बहुत महत्वपूर्ण है। कथानक के महत्वपूर्ण घटकों में इसका उल्लेख आवश्यक है। आप उदाहरण से ही देश या स्थान का महत्व समझ सकेंगे। यदि कोई उपन्यास स्वाधीनता-संघर्ष की महागाथा बन सके तो देश का अर्थ राष्ट्र अर्थात् भारत हो जाएगा। प्रकृति, परिवेश, वातावरण आदि को मिलाकर एक व्यापक देश। पर यदि उपन्यास अपेक्षाकृत छोटे स्थान को घेरता है, गाँव, कस्बा, या शहर तो उसकी बनावट भी महत्वपूर्ण हो जाती है।

अभी हमने रेणु के 'मैला आंचल' को याद किया। इस उपन्यास के शुरू में ही अंचल या स्थान की विशिष्टता का चित्रांकन है - "ऐसा ही एक गाँव है मेरीगंज। रौतहट स्टेशन से सात कोस पूरब बूढ़ी कोशी को पार करके जाना होता है। बूढ़ी कोशी के किनारे-किनारे बहुत दूर तक ताड़ और खजूर के पेड़ों से भरा हुआ जंगल है। इस अंचल के लोग इसे 'नवाबी तड़बन्ना' कहते हैं। ....तड़बन्ना के बाद ही एक बड़ा मैदान है जो नेपाल की तराई से शुरू होकर गंगा जी के किनारे खत्म हुआ है। लाखों एकड़ ज़मीन! बंध्या धरती का विशाल अंचल। इसमें दूब भी नहीं पनपती है। बीच-बीच में बालूचर और कहीं-कहीं बेर की झाड़ियाँ। कोस भर मैदान पार करने के बाद, पूरब की ओर काला जंगल दिखाई पड़ता है, यही है मेरीगंज कोठी।" यह है स्थान या देश का उपन्यास में चित्रण।

हर उपन्यास कहीं न कहीं किसी 'देश' (अर्थात् स्थान) में स्थित है, केंद्रित है और फिर वह किसी न किसी काल या समय में जी रहा है। यह काल व्यापक चक्राकार भी हो सकता है और सीमित समय *की चुनौतियों त्रासदियों से घिरा हो सकता है। यशपाल का* 'झूठा सच' देश विभाजन की त्रासदी का उपन्यास है। इसमें देश और काल दोनों महत्वपूर्ण हैं। विभाजित स्थल भी और समय भी। हम कहेंगे आज़ादी के साथ-साथ तुरंत घटने वाली त्रासदी।

प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' जैसे उपन्यासों का देशकाल बहुत महत्वपूर्ण है। समय यहाँ कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। हम कहेंगे कि 'प्रेमाश्रम' पहले महायुद्ध के उत्तरकालीन दौर का उपन्यास है। इसी तरह 1920-30 के आंदोलनों में किसानों के ज़मींदार-विरोधी संघर्ष को दबाकर रखने की कोशिश की गयी थी जो सफल न हुई। यहाँ समय इसलिए महत्वपूर्ण है *क्योंकि किसान आंदोलन और स्वाधीनता* आंदोलन को एक दूसरे के साथ रखकर देखने से ही 'प्रेमाश्रम' की संघर्ष-गाथा अर्थवान बनती है। 'प्रेमाश्रम' यदि किसान जीवन का महाकाव्य है तो यह किसान जीवन का संघर्ष इसी स्थान पर

केंद्रित है। देशकाल दोनों में फैला हुआ। इसी प्रकार 'कर्मभूमि' और 'गबन' की घटनाएँ स्थान और समय दोनों की मूर्तता का उदाहरण हैं।

उदाहरण हम और भी चुन सकते हैं। जैसे - भीष्म साहनी का 'तमस', जिसमें आजादी हासिल होने के ठीक आसपास की घटनाओं का वर्णन है। श्रीलाल शुक्ल के 'रागदरबारी' में आज़ादी के बाद का घटनाक्रम चित्रित किया गया है। यहाँ स्थान और समय दोनों महत्वपूर्ण हैं। श्रीलाल शुक्ल आज़ादी के बाद हमारे देश में जिस तरह की लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित हुई, उसका मखौल उड़ाते हैं, तो संदर्भ काल्पनिक नहीं है, वास्तविक है। इधर की लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में सारंग का संघर्ष खास स्थान या भूगोल और समय के भीतर ही घटित हो रहा है। उपन्यास में कालविपर्यय और कथा समय का आगे-पीछे जाना महत्वपूर्ण हो सकता है। लेकिन अलका सरावगी के उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास' का समय अमूर्त नहीं है। कई समय एक साथ हो सकते हैं। कलकत्ता आता है तो उसका आगे-पीछे का इतिहास भी आता है।

समय भाग रहा है और समय स्थिर है यह भेद हम उपन्यास में पहचान सकते हैं। 'झूठा सच' में समय की घटनाएँ भाग रही हैं। कहते हैं कि भागती कलम से लिखा गया है यह उपन्यास, क्योंकि गति बहुत तेज़ है। अज्ञेय के 'अपने अपने अजनबी' में योके - सेल्मा प्रसंग में समय ठहर-सा गया है। क्योंकि मृत्यु की-सी प्रतीक्षा की घड़ी और तनावयुक्त परिस्थिति है।

उपन्यास में समय या काल प्रवहमान भी हो सकता है और खंडित भी। आप इस प्रकार के अंतर को उपन्यास की प्रकृति में जाँच सकते हैं। गिरिराज किशोर का उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' गाँधीजी के संघर्ष के विस्तार के कारण देशकाल के विस्तार में ले जाता है। देशकाल मिलकर भी उपन्यास का एक परिप्रेक्ष्य या फलक बनाते हैं।

3.6 किसान-चेतना और स्त्री-चेतना

आप उपन्यास के विभिन्न विषयसूत्रों से परिचित होते हुए यह जरूर समझते चलें कि खंड एक की इन इकाइयों में हम उपन्यास की सैद्धांतिकी से परिचित हो रहे हैं। हम यह भी स्वीकार कर रहे हैं कि ठीक उदाहरणों के संदर्भ में हम इस सैद्धांतिकी को समझ सकते हैं। सैद्धांतिकी से परिचय का एक नया ढंग हमने ज़रूर अपनाया है। हम परंपरागत प्रतिमानों की जगह नये विषय क्षेत्रों से संबंधित प्रतिमान, सामने रख रहे हैं।

हमारी दृष्टि में आज आप उपन्यास पाठ्यक्रम को उसके ऐतिहासिक संदर्भ में देखेंगे तो हमारे उदाहरण योरोपीय नावेल की जगह भारतीय उपन्यासों के होंगे। अधिकतर तो हिंदी उपन्यासों के ही उदाहरण होंगे। अब आप इसे समझने की कोशिश करें कि हम उपन्यास का उदय सामंतवाद के ह्रास और पूंजीवाद के आगमन के साथ मानते हैं। हम मानते हैं कि आधुनिक उपन्यास मध्यवर्ग का महाकाव्य बनकर आया। अर्थात् वह एक तरह से महाकाव्य का ही विकल्प था। उपन्यास ने महाकाव्यों की जगह ली। यहीं हमारा ध्यान 'गोदान' और उससे पूर्व भारतीय भाषाओं में प्रकाशित फकीर मोहन सेनापति के उड़िया उपन्यास 'छह बीघा जमीन' जैसी अन्य कृतियों की ओर भी जाता है। तब हमें इस बात का बहुत तीव्रता से अनुभव होता है कि हमारे यहाँ उपन्यास को किसान चेतना की महागाथा के रूप में भी देखा जा सकता है। होरी के संदर्भ में तो हम कहते ही हैं कि 'गोदान' किसान संघर्ष का महाकाव्य है या किसान जीवन की त्रासदी है।

इसी के साथ प्रेमचंद के पहले के उपन्यास मिर्ज़ा हादी रूस्वा के उपन्यास 'उमराव जान अदा' और बाद के जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' और 'सुनीता' आदि उपन्यासों को ध्यान में रखकर यदि कहा जा रहा है कि हिंदी उपन्यास और व्यापक अर्थ में भारतीय उपन्यास में किसान-चेतना के समानांतर स्त्री-चेतना का क्रमिक उभार भी देखा जाना चाहिए, तो यह सर्वथा उचित है। अब आपके सामने ये दो संदर्भ हैं - उपन्यास में किसान-चेतना और स्त्री-चेतना का क्रमिक उभार और अभिव्यक्ति।

उपन्यास में किसान-चेतना

हमें यहीं यह भी देखना चाहिए कि हिंदी उपन्यास में या भारतीय उपन्यास में किसान-चेतना की अभिव्यक्ति यदि महत्वपूर्ण है तो उसने उपन्यास के स्वरूप में किस विशेष पक्ष को अर्थसम्पन्न बनाया

है। इसी प्रकार आप स्त्री-चेतना की अभिव्यक्ति से उपन्यास के स्वरूप वैशिष्ट्य पर विचार कर सकते हैं। भारतीय उपन्यास के एकदम आरंभिक उदाहरणों में बंकिमचंद्र के उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' को याद कर सकते हैं जिसमें आयशा ही महत्वपूर्ण है कोई नायक नहीं। उपन्यास यदि किसान-चेतना की महागाथा है तो हमें प्रेमचंद के 'गोदान' और उससे पहले 'प्रेमाश्रम' के साथ, गुजराती के पन्नालाल पटेल, बंगला के ताराशंकर बंद्योपाध्याय, विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय और मानिक बंद्योपाध्याय की कृतियों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

हम कह सकते हैं कि हिंदी में प्रेमचंद किसान चेतना के पहले महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। उन्होंने मध्यवर्ग को भी उपन्यासों का विषय बनाया पर उसके अंतर्विरोधों पर भी लिखा। जैसे 'कर्मभूमि' में अमरकांत के माध्यम से मध्यवर्ग की तमाम कमजोरियाँ दिखाईं। पर किसान-चेतना को उन्होंने सार्थक अभिव्यक्ति दी। किसान जीवन की महागाथा लिखने के साथ उन्होंने किसान जीवन की त्रासदी भी लिखी।

आप हिंदी उपन्यासों में किसान-चेतना के स्वरूप को समझने के लिए 'गोदान' को आधार बना सकते हैं। ग्रामीण जीवन पर केंद्रित उपन्यासों में किसान-चेतना उपन्यास की प्राणधारा बनकर आती है। होरी जैसा किसान नायक विजय प्राप्त करे या पराजय, उसकी अपराजेयता ही सर्वोपरि महत्व की होती है। उसे एक प्रतिनिधि किसान के रूप में देख सकते हैं। 'गोदान' में गाय की लालसा भी उसके किसान स्वभाव का ही गुण है। मरजाद की चिंता किसान की चिंता है। इसके लिए शोषण-चक्र में पिसकर भी वह जात-बिरादरी, घर-परिवार, शादी-ब्याह की चिंता से मुक्त नहीं हो सकता। वह तमाम समझौते करता है, झूठ बोलता है पर अंतिम क्षण तक ज़मीन के मोह से मुक्त नहीं होता। ज़मींदार रायसाहब से भी निभाना है। महाजनी सभ्यता के दबाव से छुटकारा नहीं है। फिर चेतना कहाँ है, *क्योंकि वह विद्रोह तो करता नहीं। विद्रोह न करके भी होरी किसान-चेतना की झलक दे जाता है।* विचार करें कि ऐसा क्यों! जिस फसल से उसके कर्ज़ बढ़ते हैं उसे देखकर भी प्रसन्न होता है। प्रकृति के वरदान पर वह मुग्ध है। बाग में बसंत के आने पर भीतर तक खुशी से भर जाता है। यह जीवन-लालसा ही किसान-चेतना को पोषण देती है।

प्रेमचंद जहाँ कई दूसरे उपन्यासों में परिवर्तन के पक्षधर हैं पर 'गोदान' में होरी के समाज को देखकर जीवन की गति धीमी दिखाते हैं। 'गोदान' में कुछ नहीं बदलता। फिर भी होरी किसान-चेतना का प्रतिनिधि मान लिया जाता है? क्यों? इस प्रश्न का उत्तर भी उसकी सक्रिय जीवनासक्ति और संघर्ष क्षमता में है। और दूसरी बात है धनिया जैसी पत्नी से उसका संबंध। किसान-चेतना 'गोदान' में होरी-धनिया के संघर्ष को मिलाकर बनती है। औपनिवेशिक किसान की आत्मदया और पीड़ा और प्रकृति में जीवन के तत्व देखने वाली उसकी संघर्ष-क्षमता दोनों मिलकर किसान-चेतना का स्वरूप बनाते हैं। प्रेमचंद इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि वे पहली बार किसान यानी गाँव के सामाजिक जीवन की महागाथा लिखते हैं। 19वीं सदी उपन्यास के आरंभ के लिए महत्वपूर्ण है पर तब के उपन्यासों में गाँव कहाँ है किसान कहाँ है! 1918-20 के आसपास गाँधी जी ने गाँवों और किसानों की सच्चाई बतायी तब हिंदी में प्रेमचंद किसान-चेतना के प्रतिनिधि लेखक बने। किसान आंदोलनों का इतिहास तो 1857 के पहले भी मिलता है पर किसान-चेतना उपन्यास में अब उभर कर आयी।

उपन्यास में स्त्री-चेतना

उपन्यास में स्त्री-चेतना को समझने के लिए भी प्रेमचंद के उपन्यासों को उदाहरण बनाया जाना चाहिए। 'गोदान' में तो धनिया उत्पीड़न न सहने वाली स्त्री का प्रतीक है। वह सारे तंत्र, सरकारी पुर्जों का या व्यवस्था का चीख़कर विरोध करती है। 'गबन' की जालपा जहाँ स्त्री की आभूषण ग्रंथि की शुरू में शिकार है आगे वही पति रमानाथ को मुक्त करती हैं। 'गबन' का उत्तरार्द्ध स्त्री-चेतना की जागरूकता का उदाहरण है। जो अधिक बंधनग्रस्त थीं वे पहले मुक्त हुईं। जालपा और ज़ोहरा। वे पुरुषों को भी मुक्त करती हैं। अंग्रेजों के पक्ष में झूठी गवाही देने से रोकना उनका मक़सद बन गया। राष्ट्र-प्रेम की चेतना उनका सहज बोध बनी।

'निर्मला' को अनमेल विवाह की कथा की तरह पढ़ा जाता है जबकि वह स्त्री की और बड़ी ट्रेजेडी का विषय है। अबोधता में जिस ढाँचे को वह बनाये रखती है उसे खुद ही सजगता आने पर तोड़ देती है। यह भी स्त्री-चेतना का क्रमिक उभार है जो उपन्यास की अंतर्वस्तु और शिल्प दोनों को अर्थसम्पन्नता देता है। 'कर्मभूमि', 'गोदान' के ठीक पहले की रचना है। गाँधी जी के प्रभाव में जब सत्याग्रह आंदोलन चल निकलता है तो सुखदा और नैना जैसी स्त्रियाँ आगे आती हैं। यहाँ किसान-

चेतना और स्त्री-चेतना के क्रमिक उभार पर विचार करते हुए हम ध्यान में रखें कि कई बार व्यक्तिगत कारणों से भी चरित्र में मौलिक परिवर्तन आ जाता है। जैसे 'कर्मभूमि' में मुन्नी गोरों के बलात्कार का शिकार होती है और फिर वही उनकी हत्या कर देती है।

जैनेन्द्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' में मृणाल के दुख के कारण अपने बनाये हुये हैं पर वह जब कोयले वाले के साथ रहने का निर्णय लेती है तो एक पूरा ही, गरीबी और अभाव में फँसा समाज उसकी दृष्टि मे आता है और वह अपनी नियति को अकेलेपन में नहीं देखती। कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' की अतृप्ति उसकी अकेली समस्या नहीं रह जाती, वह झूठी मर्यादाओं की धज्जियाँ उड़ाती है। मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' में सारंग एक समय पर निजी प्रतिशोध की आग से निकलकर स्त्री-चेतना का सामूहिक प्रतिबिंब बन जाती है।

इस प्रकार आप उपन्यास में किसान-चेतना और स्त्री-चेतना के क्रमिक उभार को लक्ष्य कर सकते हैं। देख सकते हैं कि हिंदी में 'प्रेमाश्रम' से 'परती परिकथा' (रेणु) और 'बेदखल' (कमलाकांत त्रिपाठी) तक किस तरह किसान चेतना का क्रमिक उभार अभिव्यक्ति पा सका है। इसी तरह 'सुनीता' (जैनेंद्र) से 'शेष कादम्बरी' (अलका सरावगी) तक किस प्रकार स्त्री-चेतना का क्रमिक उभार लक्ष्य किया जा सकता है। क्योंकि ये सारे प्रश्न उपन्यास की सैद्धांतिकी से भी जुड़ेंगे, इसलिए यह भी देखें कि किस प्रकार की चेतना से उपन्यास की अंतर्वस्तु और शिल्प को अर्थवान बनाया। अभी तो हम अभ्यास के लिए ही कछ उदाहरणों के आधार पर अवधारणाओं को जाँचने का प्रयास कर रहे हैं। आशा है आप पाठ्यक्रम की इस विशिष्टता को भी समझेंगे।

3.7 उपन्यास में नायकत्व की संकल्पना

अब हम इस तीसरी इकाई के अंतिम विषय पर आ सकते हैं- 'उपन्यास में नायकत्व की संकल्पना'। हम आधुनिक उपन्यास को मध्यवर्ग के महाकाव्य के रूप में जान सके हैं। पर हमने यह भी माना है कि आधुनिक समय में उपन्यास महाकाव्य का विकल्प है। आपको यह बताना ज़रूरी नहीं है कि महाकाव्य में तो नायक की उपस्थिति एक ज़रूरी शर्त थी ही। बल्कि आचार्यों ने धीरोदात्त नायक की कल्पना पर ही बल दिया है और लगातार देते रहे हैं। अब महाकाव्यों का वह युग समाप्त हो गया है जो सामंतवाद की देन था। पूँजीवाद के साथ मध्यवर्ग आया तो साधारण मनुष्य के नायक होने की संभावना बनी। साधारण इस हद तक कि होरी नाम का ग्रामीण किसान भी नायक बना। दुर्बलताओं में भी महान्। यही है प्रेमचंद के उपन्यासों में नायक का स्वरूप। होरी हो या सूरदास। दुर्बलताएँ, पर जीवनीशक्ति के साथ।

हम याद कर सकते हैं कि 'उपन्यास और लोकजीवन' जैसी पुस्तक के लेखक रैल्फ फॉक्स ने 'नायक की मृत्यु' शीर्षक से एक निबंध ही लिखा था और बताया था कि जहाँ उन्नीसवी शताब्दी के महान् काल के उपन्यास में प्रायः हम ऐसे नायक से मिलते हैं जो युवक है, संघर्षरत है और अंत में जिसके सारे भ्रम मिट जाते हैं और जो समाज द्वारा पराजित हो जाता है। धीरे-धीरे वह भी उपन्यासों से गायब होता जाता है और साधारण और अतिसाधारण और लगभग नगण्य-सी पहचान वाला कोई अनायक या खलनायक शेष रह जाता है। मुख्य बात जो नायक से जुड़ती रही है वह है मानवीय व्यक्ति की अपराजेयता। दुर्बलताएँ जितनी हों, स्वार्थ चाहे जैसे हों पर एक अनवरत संघर्ष क्षमता होनी ही चाहिए हमारे नायक में।

अब देखिए अपने यहाँ के उपन्यासों में चरित्रों की बनावट और आपसी भिन्नता। प्रेमचंद के 'गोदान' का होरी, अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' का शेखर, हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का बाणभट्ट, फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'परती परिकथा' का जित्तन। सब अलग-अलग तरह का नायकत्व लिए हुए हैं। इनमें 'गोदान' का होरी सबसे अलग जान पड़ेगा। उसका संघर्ष, उसकी कमजोरियाँ। उसके छल-स्वार्थ। उसकी त्रासदी। पर सब मिलाकर अपराजेय और अद्वितीय है। 'गोदान' का नायक वही है। 'शेखर एक जीवनी' का शेखर विद्रोही है। अपने में छटपटाता हुआ। विद्रोही है पर नही जानता किसलिए। मूर्तिभंजक है। अकारण भी बहुत कुछ तोड़ता है। विद्रोह, पर निरर्थक होने की पीड़ा का अनुभव भी। बल्कि स्त्रियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं। शशि अधिक महत्वपूर्ण दिखती है। हजारीप्रसाद द्विवेदी का बाणभट्ट एक और तरह का नायक है वह भट्टिनी की प्रतिष्ठा या गरिमा की सघन निर्मिति में संलग्न है। नायक भी कहाँ, वह तो कथा का

निमित्त है। जन्म का आवारा, गप्पी, अस्थिर चित्त, घुमक्कड़। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'परती परिकथा' का जित्तन। केंद्रीय पात्र है, नायक है, पर कई दूसरे चरित्रों (लुत्तो, ताजमनी) की तुलना में गढ़ा हुआ चरित्र जान पड़ता है। नायक केवल गुणों की कल्पना से नहीं बनता। संतुलन से नहीं बनता। केंद्रीय पात्र की निर्बलताओं, अंतर्द्वन्द्वों से भी बनता है।

उसकी तुलना में रेणु के कथागुरू सतीनाथ भादुड़ी के बंगला उपन्यास 'ढोंड़ाय चरित मानस' को देखें तो वह अधिक तेजस्वी सजीव प्राणवान जान पड़ेगा। भादुड़ी 'ढोंड़ाय' जैसे नगण्य का 'चरितमानस' लिखते हैं। वह दुर्बलताओं में महान् जान पड़ता है।

तो, उपन्यास में नायक की सार्थकता उसके समूचे व्यक्तित्व की पूर्णता अपूर्णता दोनों को मिलाकर बनती है। खलनायक तो आप सीधे समझ लेंगे - खल चरित्र वाला एक और पात्र- जो नायक नही है। 'विस्रामपुर का संत' के कुँवर जयंतीप्रसाद में खलनायक जैसा चरित्र है पर यह कोटि भी उपन्यास की सैद्धांतिकी में निरर्थक मान ली गयी है। कुँवर जयंती प्रसाद सिंह खलनायक क्यों! नायक क्यो नहीं! विकृत चरित्र वाले लोग तो तमाम दुनिया के चर्चित उपन्यासों के नायक रहे हैं हम ये उदाहरण आपके चरित्र-संबधी अध्ययन को विकसित करने के लिए चुन रहे हैं।

एक कोटि यह भी हो सकती है अनायक या प्रतिनायक या 'ऐन्टी हीरो' की। जैसे निराला के उपन्यास 'बिल्लेसुर बकरिहा' का बिल्लेसुर नायक होकर भी अनायक है। नायकत्व की अवधारणा का अस्वीकार। विनोदकुमार शुक्ल के उपन्यास 'नौकर की कमीज़' का नायक- अनायक ही हो सकता है। कहना हम यह चाहते हैं कि आधुनिक उपन्यास में नायक-अनायक की स्पष्ट कोटि बनाना कठिन है। एक ही में दोनों का द्वंद्व महत्वपूर्ण हो सकता है और वह उपन्यास की अंतर्वस्तु और शिल्प को प्रभावित किए बिना नहीं रहेगा। असंभव होकर भी चरित्र (अच्छे बुरे के भेद से परे) की विशिष्टता के कारण नायक का प्रश्न उपन्यास के सैद्धांतिक ढाँचे में बना रहेगा।

3.8 सारांश

एम.एच.डी.-13 के पहले खंड की तीसरी इकाई का अध्ययन कर लिया है। अब हम एक बार इस तीसरी इकाई के अपने अध्ययन के प्रमुख संदर्भों को याद कर सकते हैं। इस इकाई का शीर्षक था 'उपन्यास का उदय और उसके कारण'। आरंभ में हमने मुख्यतः उन्नीसवीं सदी में उपन्यास की स्थिति और उसके महत्व पर विचार किया। आगे 'उपन्यास' विधा के उदय के कारणों के रूप में क्रमशः सामंतवाद के ह्रास, पूँजीवादी सभ्यता के आरंभ और प्रभाव, आधुनिक मध्यवर्ग के उदय, मुद्रण कला के विकास के साथ पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन पर भी विचार किया। इन सबका उपन्यास के उदय के साथ गहरा संबंध है। इसके साथ ही हमने गद्य के विकास के परिप्रेक्ष्य में उपन्यास विधा के उदय का भी उल्लेख किया है।

इसी इकाई में आगे उपन्यास के संदर्भ में नये पाठक वर्ग के उदय और उसकी भूमिका पर विचार किया गया है। और जिन अन्य प्रमुख विषय-संदर्भों को अध्ययन में सम्मिलित किया है, वे हैं - उपन्यास में देशकाल की संकल्पना, किसान-चेतना और स्त्री-चेतना का उपन्यासों में क्रमिक उभार तथा उपन्यासों में नायकत्व का बदलता स्वरूप। यह सारी चर्चा हमने उपन्यास के उदय और उसके कारणों के अध्ययन के संदर्भ में की है। अधिकांशतः आपने हिंदी उपन्यासों के उदाहरणों के माध्यम से इन पहलुओं को समझा है।

अभ्यास

इस इकाई से संबंधित कुछ प्रमुख प्रश्न यहाँ दिए जा रहे हैं। आप इस इकाई तथा इस पाठ्यक्रम के साथ भेजी गई पुस्तक 'उपन्यास-सिद्धांत-विवेचना' का अध्ययन कर उत्तर लिखने का प्रयत्न करें :

1. आधुनिक युग में 'उपन्यास' विधा के उदय के प्रमुख कारणों का विवेचन कीजिए।
2. उपन्यास के उदय के साथ उभरे नये पाठक वर्ग की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. हिंदी उपन्यास में किसान-चेतना और स्त्री-चेतना के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालिए।
4. उपन्यास में नायक की संकल्पना को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

इकाई 4 उपन्यास और अन्य विधाएँ

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 उपन्यास और महाकाव्य
4.3 उपन्यास और अन्य गद्य रूप
4.4 उपन्यास और कहानी
4.5 उपन्यास और आत्मकथा
4.6 उपन्यास और जीवनी
4.7 दृश्य माध्यमों के विकास का उपन्यास पर प्रभाव
4.8 सारांश

4.0 उद्देश्य

उपन्यास से संबंधित पाठ्यक्रम एम.एच.डी.-13 के पहले खंड 'उपन्यास स्वरूप और विकास' की यह चौथी और अंतिम इकाई है। इकाई-4 के अंतर्गत हम 'उपन्यास और अन्य विधाएँ' विषय पर विचार करेंगे। इससे पहले की तीन इकाइयों में हम क्रमशः 'आख्यान के विभिन्न रूप और उपन्यास', 'उपन्यास का अर्थ और स्वरूप', 'उपन्यास का उदय और उसके कारण' - विषयों पर विचार कर चुके हैं। सबसे पहले हम एक बार फिर उपन्यास और महाकाव्य के संबंध में विचार करेंगे। फिर अन्य रूपों में मुख्यतः गद्य के प्रमुख-अप्रमुख रूपों पर विचार करेंगे। साथ ही यह भी देखेंगे कि दृश्य माध्यमों के विकास का उपन्यास पर क्या प्रभाव पड़ा है? यह विषय, चित्रण पद्धति, दृश्यांकन, नाटकीयता आदि से संबद्ध होगा। आशा है इस अध्ययन के साथ हम उपन्यास की सैद्धांतिकी का एक चरण पूरा करेंगे।

4.1 प्रस्तावना

एम.एच.डी.-13 के पहले खंड की इस अंतिम इकाई में आप उपन्यास और साहित्य की अन्य विधाओं के परस्पर संबंध का अध्ययन करेंगे। प्रस्तावना के रूप में ही स्मरण कर लें कि पहले हम यह विचार कर चुके हैं कि महाकाव्य मुख्यतः गणसमाजों और सामंत युग की देन है। वह मूलतः गेय या मौखिक अभिव्यक्ति रूप है जबकि उपन्यास पूँजीवाद के उदय के साथ, मध्यवर्ग की उपस्थिति, प्रेस की स्थापना के साथ शुरू हुआ। यह लिखित साहित्य रूप की तरह प्रतिष्ठित हुआ अतः इसका एक अपना नया पाठक वर्ग भी बना।

अब यह भी देखना चाहिए कि प्रमुख गद्य-रूप कौन हैं और अप्रमुख गद्य रूप कौन हैं। जैसे कहानी, नाटक, निबंध, उपन्यास प्रमुख सर्जनात्मक गद्य रूप है। अन्य विधाओं या गद्य रूपों में हैं - आत्मकथा और जीवनी। संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, पत्र भी अन्य गद्य रूपों में आते हैं। उपन्यास से इन सबका संबंध विचारणीय हो सकता है। जैसे कोई उपन्यास आत्मकथात्मक या जीवनीपरक हो सकता है तो वह स्मृत्याभास भी हो सकता है या डायरी शैली में या पत्रों की शैली में लिखा हुआ हो सकता है। जैसे-जैसे समय बदल रहा है दृश्य माध्यमों का विकास तेजी पर है जैसे फिल्म या दूसरे दृश्य माध्यम। इनका उपन्यास के शिल्प या संगठन पर प्रभाव अध्ययन का विषय हो सकता है। इस इकाई में आप इन सभी विषयों के बारे में जानकारी हासिल करेंगे।

4.2 उपन्यास और महाकाव्य

हम उपन्यास और महाकाव्य के संबंध को एक तो इस रूप में देखते हैं कि महाकाव्य प्राचीनतम विधा है और वह गणसमाज तथा सामंत युग की देन है। उसकी वाचिकता या मौखिकता या गेयता उसके प्रमुख गुण हैं। वह मुद्रण युग से पहले की विधा है जबकि उपन्यास का उदय पूँजीवाद के उदय के साथ मध्यवर्ग के उदय के साथ, मुद्रण कला के विकास के साथ संभव हुआ है। इसी अर्थ में उपन्यास को आधुनिक युग में मध्यवर्ग का महाकाव्य कहा गया है। और यह भी कहा गया है कि

उपन्यास ने आधुनिक समय में महाकाव्य का स्थान ले लिया है अर्थात् उपन्यास महाकाव्य का विकल्प है।

महाकाव्य का शास्त्र जाने कब से बन चुका है और स्थिर हो चुका है। प्रख्यात कथा, महान् चरितनायक, उदात्त शैली आदि गुणों को इतना परिभाषित किया जा चुका है कि उसकी रीति बन चुकी है। रूसी विचारक बाख्तिन ने महाकाव्य को एक ऐसी समाप्तप्राय या मृत विधा के रूप में देखा है जिसकी सब संभावनाएँ समाप्त हो चुकी हैं। महाकाव्यों में से अनेक क्लासिक बन चुके हैं। अब उससे उपन्यास की इतनी ही समानता हो सकती है कि एक तरह का आख्यान या महा-आख्यान वह भी रहा है और उपन्यास भी एक और तरह का आख्यान है।

पर, ध्यान दें कि उपन्यास की नीति नहीं बन पायी है क्योंकि अभी तो वह स्वयं विकासमान है, बनने की प्रक्रिया में है। उसे अशुद्ध कला (impure art) कहा गया है। यह अशुद्ध होना उसकी संभावनाओं का ही सूचक है। यह गुणात्मक है। उपन्यास रूप के हर क्षण बदलने और नया होते जाने का संकेत है। उसका विधागत ढाँचा अभी पूरी तरह बना ही नही है। आख्यान और उसके अनेक रूपों का प्रभाव लेकर भी वह एक नयी विधा है। बनने की प्रक्रिया में वह अनेक रूपों, विधाओं और माध्यमों का गड्डमड्ड भी है। गिरिराज किशोर का उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' क्या है। एक अर्थ में इतिहास और दूसरे अर्थ में जीवनी। और फिर भी उपन्यास। यही है उपन्यास का रूप-वैशिष्ट्य। रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' अपनी बनावट में शिवपूजन सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनिया' से कितना भिन्न और अलग है।

इस प्रकार महाकाव्य जहाँ विकास की चरम स्थिति से आगे निरंतर समाप्त हो रहा है, विघटित हो रहा है, उपन्यास विकासमान विधा है। उपन्यास के तत्व चाहे वही बताए जाएँ जो कभी महाकाव्य के तत्व रहे होंगे पर सच्चाई यह है कि उसके सामने सारी सैद्धांतिकी लाचार नज़र आती है। उपन्यास रीति (या कैनन) बनने से इनकार करता है। अंग्रेजी उपन्यासकार सलमान रुश्दी गड्डमड्ड और विपर्यास के ही लेखक माने जाते हैं। जैसे हिंदी में मनोहरश्याम जोशी का उपन्यास 'कुरू कुरू स्वाहा' जो महाकाव्य जैसी दूसरी विधाओं का उपहास है और उपन्यास की भी पैरोडी है। इसी प्रकार उपन्यास के अनेक रूपों के अध्ययन से यह नतीजा निकाला जा सकता है कि वह एक 'बहुआयामी विधा' भी है। वह इस हद तक नयी विधा है कि काव्य रूप तक को बदल सकता है। अंग्रेजी उपन्यासकार विक्रम सेठ का 'द गोल्डेन गेट' कविता में रचा गया उपन्यास है।

उपन्यास का नायक महाकाव्य के नायक की तरह श्रेणीबद्ध नहीं होता। वह एक साथ सकारात्मक - नकारात्मक दोनों होता है। 'मैला आँचल' के वामनदास को देखें - संघर्ष और आंदोलन में खरा, गाँधी जी की स्मृतियों से लैस - पर एक आकस्मिक क्षण में यौन उत्तेजना से भर जाता है। यही है उपन्यास का नायक। वह नायक की रीति से भी इनकार हो सकता है। वह अनायक या प्रतिनायक भी हो सकता है। हंगरी के आलोचक जार्ज लूकाच ने उपन्यास को मूल्यहीन समाज में वांछित मूल्य प्राप्त करने की छटपटाहट के रूप में परिभाषित किया है।

महाकाव्य और उपन्यास के अंतर को इस रूप में भी देखें कि महाकाव्य में आख्यान और नियति का एक विशेष संबंध निर्मित होता है। वहाँ इतिहास होता है तो 'इतिहासातीत' वाले अर्थ में। वहाँ आदि में ही अंत होता है। एक वृत्ताकार कथा जहाँ कथा कहीं भी समाप्त नहीं होती। शाश्वत किस्म की भव्यता महाकाव्य के ढाँचे में निहित है। हम 'रामायण', 'महाभारत' का उदाहरण ध्यान में रखेंगे तो इसे समझ पाएँगे। महाकाव्य इस अर्थ में रोमांस है। होमर की 'ओडिसी', वेद व्यास का 'महाभारत', वाल्मीकि रचित 'रामायण' महाकाव्य हैं। महाकाव्य में जहाँ समय स्थिर होता है उपन्यास में गतिशील परिवर्तन के अधीन होता है। इसलिए उपन्यास सनातनता को चुनौती देता रहता है। वह सुगठित नहीं, अनगढ़ है। इसी अर्थ में मिश्रित अशुद्ध विधा है। यही अशुद्धता उसकी सर्जनात्मक क्षमता और नवीनता का आधार है। 'नावेल' का एक अर्थ 'नया' भी है।

फिर भी हम 'महाकाव्यात्मक उपन्यास' और 'उपन्यास में महाकाव्य' जैसे प्रयोग करते हैं। 'कामायनी' महाकाव्य है 'गोदान' उपन्यास है। दोनों के अंत की तुलना करें तो नियति की भिन्न स्थितियाँ दिखाई देती हैं। 'कामायनी' में नियतिवाद की स्वीकृति है। होरी की मृत्यु नियतिवाद को चुनौती देने में सक्षम है। होरी का यह बोध कि वह हारा नहीं है - लड़ते रहने में ही उसकी विजय है।

भूमिहीन होकर भी होरी की लालसाएँ खत्म नहीं हो गयी है। इस प्रकार दोनों साहित्य-रूपों में कुछ समानता तो है पर अंतर बहुत प्रकट है।

4.3 उपन्यास और अन्य गद्य रूप

यहाँ हम आधुनिक प्रमुख, अप्रमुख, काल्पनिक, अकाल्पनिक गद्य रूपों की चर्चा करेंगे जिनसे उपन्यास का निकट या दूर का संबंध हो सकता है। आधुनिक गद्य के प्रमुख कल्पना प्रधान रूपों में उपन्यास, कहानी के साथ नाटक का उल्लेख किया जाता है। नाटक बहुत पुराने साहित्य-रूपों में है। गद्य में भी भारतेंदु के समय से ही नाटक विधा की महतवपूर्ण पहचान बनी। नाटक का संबंध रंगमंच से है अभिनय पक्ष से है। नाटक लिखा ही नहीं जाता, खेला भी जाता है। उसके पाठक ही नहीं होते दर्शक भी होते हैं। पाठक या श्रोता के लिए सहृदय की कल्पना की जाती रही है। यह संवाद प्रधान गद्यरूप है। कथा-विधान नाटक का भी होता है और उपन्यास का भी। पर प्रस्तुति का ढंग भिन्न-भिन्न रूपों में होता है। संवाद चरित्रों की मनोगतियों का आभास देते हैं। बोलचाल की ही भाषा से नाटक भी प्रभावपूर्ण बनता है। आश्चर्य प्रकट किया जाता है कि आधुनिक गद्य साहित्य का प्रवर्तन नाटकों से हुआ। नाटक भारतेंदु युग के केंद्र में हैं। भारतेंदु की प्रतिभा जैसी नाटकों में निखरी, उपन्यास में नहीं। उन्होंने आधा अधूरा एक उपन्यास ज़रूर लिखा : 'कुछ आपबीती कुछ जगबीती '। उपन्यास में भी नाटकीयता संभव है। इधर सुरेंद्र वर्मा के एक चर्चित उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए ' में नाटकीयता इसलिए है कि यह कथा ही नाटक की दुनिया से और उसी दुनिया के परिचित माहौल से संबंधित है। यह एक उदारहण है। जैसे प्रसाद की कहानियों में नाटकीग्ता स्पष्ट है। सुरेंद्र वर्मा भी प्रसाद की तरह नाटककार हैं।

अकाल्पनिक गद्य रूपों में निबंध आता है और जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, पत्र आदि गद्य रूप आते हैं। बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवशंभु का चिट्ठा ' को एक राजनीतिक उपन्यास के रूप में पढ़ सकते हैं यद्यपि वह मूलतः निबंध है। व्यक्तिव्यंजक निबंधों में वह आत्मस्पर्श हो सकता है जिससे उपन्यास लाभान्वित हो।

जीवनी, आत्मकथा, कहानी की चर्चा उपन्यास के संदर्भों में हम अलग से करेंगे। आशा है यहाँ बताये गये गद्य रूपों से आप अपना परिचय एक अच्छे पाठक के रूप में बढ़ायेंगे और उनकी औपन्यासिक संभावना जाँचेंगे। संस्मरण का माध्यम जीवनी, आत्मकथा से प्रेरित जान पड़ेगा पर शिल्प में अलग दिखेगा। उपन्यास में किसी पात्र का चरित्रांकन करते समय लेखक को उन्हीं गुणों की ज़रूरत हो सकती है जो रेखाचित्र विधा के सृजन में अपेक्षित हों। अज्ञेय के यात्रा संस्मरणों में निबंध का ही गुण मिलेगा पर राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी लद्दाख यात्रा ' में औपन्यासिकता का गुण देख सकेंगे। 'मेरी जीवनयात्रा ' तो आत्मकथा है ही। निर्मल वर्मा की गद्य कृति 'चीड़ों पर चाँदनी ' में सर्जनात्मक गद्य की कई विधाओं का समावेश है 'और उनमें कहानीकार का-सा व्यक्तित्व छाया रहता है। एक बातचीत में पाकिस्तान के कथाकार इंतजार हुसैन ने ग़ालिब के पत्रों में एक सम्पूर्ण उपन्यास देख लिया जिसके केंद्र में दिल्ली है, दिल्ली की गलियाँ और सड़कें हैं, लोग हैं और सबसे ऊपर दिल्ली के बनने-उजड़ने की नियति है। उग्र की 'अपनी ख़बर ' रचना पूरी तरह औपन्यासिक जान पड़ेगी। इस तरह हम समझ सकते हैं कि अन्य गद्य रूपों में ऐसे कौन-से रूप हैं जिनसें उपन्यास कुछ लेना चाहे या जो स्वयं अपनी प्रकृति में औपन्यासिक हों।

हम यहाँ यही देख रहे हैं जिसका आपके लिए विशेष महत्व भी है कि किन गद्य रूपों ने सजर्नात्मक काल्पनिक-अकाल्पनिक गद्य रूप की तरह प्रतिष्ठा प्राप्त की और उनमें क्या कुछ औपन्यासिक संभावनाएँ थीं नागार्जुन के यात्रा लेखों में सजीव मांसल चरित्र मिलेंगे और उनसे मिलना उपन्यास के चरित्रों से मिलने जैसा लगेगा। रेणु ने ऐसे अनेक रिपोर्ताज लिखे हैं जिनमें औपन्यासिक स्पर्श मिलेगा। विशेष रूप से स्थान प्रकृति मनुष्य की छवियों के आलेखन में। रेणु का स्केच (रेखाचित्र) 'दिलबहादुर दाज्यु ' उपन्यास की संवेदना के निकट है। इसे हम एक खण्डचित्र में इस रूप में देखें - तभी आप समझ सकेंगे कि क्यों इसमें औपन्यासिकता का स्पर्श दिखाई दे रहा है :

> ....तीन दिन तीन रात दिलबहादुर पहाड़ी रास्तों पर चलता रहा। पट्टियों पर रात काटता, पके हुए जंगली गूलर खाता और झरनों का पानी पीता हुआ, वह एक दिन जोगबनी पहुँच गया। शाम को जब जूट मिल का भोंपा बज उठा तो

दिलबहादुर का कलेजा 'धड़धड़' करने लगा था और उसका हाथ खुकरी के बेंट पर स्वयं ही पहुँच गया था।"

आप इसी तरह के दूसरे गद्य-रूपों से उदाहरण चुनकर स्वयं देखें कि कहाँ गद्य औपन्यासिक संवेदना के स्पर्श से सजीव है कहाँ वह बस सामान्य, सपाट या साधारण है। इस प्रक्रिया में हम यह भी देख सकेंगे कि अनेक गद्य रूपों के मिश्रण से भी क्या उपन्यास का शिल्प प्रभावित होता है।

यहाँ हम याद कर सकते हैं कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल के तृतीय उत्थान के हिंदी गद्य का मूल्यांकन करते हुए कहा था - कि इन बीस-इक्कीस वर्षों के बीच हिंदी साहित्य का मैदान काम करने वालों से पूरा-पूरा भर गया, जिससे उसके कई अंगों की अच्छी पूर्ति हुई। यहाँ शुक्ल जी हिंदी गद्य की सर्जनात्मक क्षमता प्रकट करने वाले इन्हीं रूपों का उल्लेख कर रहे हैं जिन्हें हम उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र के रूप में जानते हैं। इतनी गद्य विधाओं के एक साथ वैविध्यपूर्ण प्रयोग से शुक्ल जी को हिंदी साहित्य का मैदान भरा-भरा सा लगता है। हम यहाँ उन्हें उपन्यास विधा के साहचर्य में परखने-जाँचने का प्रस्ताव कर रहे हैं। गद्य रूपों का वैविध्य निश्चय ही एक समय की महत्वपूर्ण उपलब्धि है और उपन्यास विधा से उनका संबंध निस्संदेह गंभीर अध्ययन का विषय है।

4.4 उपन्यास और कहानी

आपको इस संबंध में सहज ही जान लेना चाहिए कि कहानी और उपन्यास का परंपरा से क्या संबंध है और उनमें स्पष्ट अंतर क्या है। यह तो आप जानते ही है कि गद्य-कथा साहित्य के एक अन्यतम भेद के रूप में कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास को देखें तो पचास के बाद के दशकों में कहानी उपन्यास से भी अधिक चर्चित विधा है। ऐतिहासिक सच्चाई यह है कि यह रूप भी बंगला के माध्यम से दूसरी भाषाओं में आया है। अंग्रेजी में जिसे 'शार्ट स्टोरी' कहा जाता है वह बंगला में 'गल्प' ही है। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में भारतेंदु के समय से ही 'गल्प' शब्द कहानी के अर्थ में इस्तेमाल होता रहा है। यहाँ आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में कहानी की परिभाषा देते हुए लिखा है : "छोटी कहानियों का विकास तो हमारे यहाँ और भी विशद और विस्तृत रूप में हुआ और उसमें वर्तमान कवियों का भी पूरा योग रहा है। उनके इतने रंगरूप हमारे सामने आये हैं कि वे सबके सब अब पाश्चात्य लक्षणों और आदर्शों के भीतर नहीं समा सकते। न तो सबमें विस्तार के किसी नियम का पालन मिलेगा, न चरित्र विकास का अवकाश। एक संवेदना या मनोभाव का सिद्धांत भी कहीं-कहीं ठीक न घटेगा। उनके स्थान पर हमें मार्मिक परिस्थिति की एकता मिलेगी, जिसके भीतर कई ऐसी संवेदनाओं का योग रहेगा जो सारी परिस्थिति को बहुत ही मार्मिक रूप देगा।" इस परिभाषा से साफ़ है कि शुक्ल जी कहानी में कवियों के योगदान को भी महत्व दे रहे हैं। इसका यह अर्थ न लें कि काव्यात्मकता कहानी का मूल तत्व है। पर यह ज़रूर माने कि संक्षिप्तता और कसाव में यह विधा कहानी की-सी तीव्र संवेदना की माँग करती है जिसकी प्रकृति कविता के निकट हो। दूसरी बात यह कि आप कहानी जैसे रूप में कथानक, चरित्र, प्रभावान्विति, वातावरण आदि के जितने भी लक्षण बताएँ, वे होंगे अपर्याप्त ही। कहानी की संभावनाएँ लक्षणों से बहुत परे है। एक केंद्रीय संवेदना छोटी कहानी का मूल गुण मानी जाती थी। शुक्ल जी, स्वीकार करते हैं कि अब वह भी कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। बल्कि महत्व है तो मार्मिक परिस्थिति की एकता का जिसके भीतर कई संवेदनाओं के लिए जगह हो।

यह कहानी की एक परिभाषा है। हम अब निर्मल वर्मा के एक निबंध 'कहानी : एक शुद्ध विधा ? की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। निर्मल वर्मा कहते हैं कि कहानी को अपने आधुनिक रूप में विकसित होने के लिए मुद्रण कला की विकसित स्थिति तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, जब पत्र-पत्रिकाओं में उसे स्थान मिला। उपन्यास के उदय की पृष्ठभूमि बताते हुए हम पहले ही मुद्रण कला के विकास का महत्व बता चुके हैं। निर्मल वर्मा याद दिलाते हैं कि कहानी कहानी की अनेक मौखिक परंपराओं-नीतिकथाओं, रोमांच कथाओं, पौराणिक कथाओं से होकर अब नये रूप में पाठक के सामने है। कहानी का महत्व केवल यह नहीं है कि अब वह मुद्रित रूप में पाठक के लिए उपलब्ध है। एक साथ सुनी और पढ़ी जा सकती है। महत्व उसका अब यह है कि वह सामूहिक स्मृतियों (चौपाल कथा आदि) से निकलकर लेखक या व्यक्ति की निजी कल्पना और अनुभव का हिस्सा बन गयी है।

जैसे उपन्यास ने अपने उत्कर्ष काल में मध्यवर्ग की पारंपरिक नैतिकता से मुक्त होकर कलात्मक सत्ता प्राप्त की और देशकाल और समाज की अभिव्यक्ति के लिए नयी चुनौती हासिल की, वैसे ही कहानी ने सामूहिक स्मृतियों से निकलकर एक अपना स्वायत्त संसार प्राप्त किया।

कहानी और उपन्यास की प्रकृति पर तुलनात्मक ढंग से विचार करने के लिए आवश्यक है कि हम उपन्यास की भी परिभाषाओं को ध्यान में रखें। उपन्यास शब्द में 'उप' और 'न्यास' का क्रमशः अर्थ है 'समीप' और 'थाती'। अर्थ हुआ : मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु। प्रेमचंद को याद करें जिनका कहना है - मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। अर्थात् उपन्यास है - मानव स्वभाव की विलक्षणता विविधता का एक प्रतिबिंब। जहाँ कहानी की शुद्धता, कसाव, संक्षिप्तता, संवेदना, मार्मिक परिस्थिति की एकता की चर्चा की जाती है वहाँ उपन्यास को अशुद्ध या मिश्र विधा माना जाता है। लचीलापन और मुक्ति उसके गुण हैं। उपन्यास में कथानक तक होने की बाध्यता नहीं है।

मुख्य बात यह कि कहानी उपन्यास में आकार की लघुता या विस्तार-भर महत्वपूर्ण नहीं है। शार्ट स्टोरी कहने से लघुता महत्वपूर्ण ज़रूर मानी गयी। पर आज लम्बी कहानियाँ भी लिखी जाती हैं और लघु उपन्यास भी लिखे जाते हैं। वही कहानी जो पहले लम्बी कहानी के रूप में छपती है, बाद में लघु उपन्यास के रूप में छपती है। कृष्ण सोबती की चर्चित कहानी 'ऐ लड़की' एक उदाहरण है।

परिभाषाएँ अनेक हैं जैसे - "उपन्यास हमें सब कुछ बताता है जबकि कहानी सिर्फ एक बात बताती है - पूरी सघनता के साथ।" या "कहानी उपन्यास की अपेक्षा शब्दों पर ज्यादा निर्भर करती है" या "कहानी समय के प्रवाह में नहीं बहती, जहाँ उपन्यास बहता है।" या - कहानी और उपन्यास में अंतर एक या अनेक ब्यौरों को लेकर नहीं है - बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि ब्यौरों के प्रति लेखक का दृष्टिकोण क्या है और उनसे वह कैसे संबंध बनाता है।"

हमें यह भी जानना चाहिए कि उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों को तॉल्सतॉय, चेखव और मोपासां कहानी के लेखक रूप में मिले जिन्होंने शुरू में ही कहानी की सीमाओं का अद्भुत अतिक्रमण कर लिया। तॉल्सतॉय की प्रसिद्ध कहानी 'ईवान इलिच की मृत्यु' एक अर्थ में औपन्यासिक संवेदना की ही कहानी है। प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' में एक पूरा उपन्यास छिपा है।

कहानी और उपन्यास में अनेक स्तरों पर भेद करना संभव है। पर वास्तविकता यह है कि उत्तरोत्तर विधाओं का अंतर सिमटता जाता है, उनकी सीमाएँ धुँधली पड़ने लगती हैं। इधर यह विशेष रूप से हुआ है कि जो विधाएँ किन्हीं आत्मकेंद्रित सीमाओं में बंद रहती थीं वे खुलने लगी हैं - दूसरी विधाओं में घुलने मिलने लगी हैं।

हम कहानी की सीमा और उपन्यास के विस्तार को ध्यान में रखें और एक ओर कहानी के रूप में अखिलेश नामक युवा कथाकार की लम्बी कहानी 'जलडमरू मध्य' को ध्यान में रखें, दूसरी ओर विनोद कुमार शुक्ल के साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत छोटे आकार के उपन्यास 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' को ध्यान मे रखें तो इसी सीमा-रेखा के टूटने का अनुमान कर सकेंगे। अखिलेश की लम्बी कहानी 'जलडमरू मध्य' को आलोचक नामवरसिंह औपन्यासिक संवेदना की कहानी बताते हैं और विनोदकुमार शुक्ल का उपन्यास 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' एक अत्यंत सीमित घरेलू अंतरंग राग वाले जीवन की सृष्टि है। बस जीवन-राग को संपूर्ण देखने की एक खिड़की भर है। इधर प्रेमचंद के उपन्यास 'निर्मला' पर नये सिरे से लेखकों और पाठकों का ध्यान गया है जहाँ बहुत सीमित दुनिया का तनाव स्त्री की अबूझ त्रासदी और पीड़ा का व्यंजक है।

उपन्यास कोई एक ही प्रकार के नहीं है और अक्सर परिभाषाओं का अतिक्रमण करते हैं। देवकीनंदन खत्री का 'चंद्रकांता' भी उपन्यास है जिसका फलक बहुत व्यापक है और इतिहास, राजनीति, संस्कृति और मानवीय नियति का विलक्षण नाटकीय द्वंद्व प्रस्तुत करता है। निर्मल वर्मा का उपन्यास 'वे दिन' भी उपन्यास है। कहानी और प्रगीत-की-सी संवेदना की सघटन बुनावट के साथ। एक ओर 'गोदान' महाकाव्यात्मक उपन्यास है, किसान त्रासदी की महागाथा है। दूसरी ओर, कृष्णा सोबती का उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के' ऐन्द्रिक अनुभव क्षणों की काव्यात्मक बुनावट का आभास देने वाला है।

तात्पर्य यह कि कहानी उपन्यास में जो लघुता और विस्तार का भेद है वह खत्म हो चुका है। फिर भी हम मानते हैं कि कहानी की कुछ अपनी सीमाएँ हैं - शुद्धता का एक काल्पनिक अनुशासन है जबकि उपन्यास-रूप असीमित विस्तार में जाने वाला है। वह विधागत अराजकता और लचीलेपन में बेजोड़ है। मनोहरश्याम जोशी का 'हमजाद' भी उपन्यास है और भीष्म साहनी का 'तमस' भी उपन्यास है। एक ओर 'हमजाद' उपन्यास की पैरोडी जान पड़ता है, दूसरी ओर 'तमस' सीधा सरल वत्तांत है : साम्प्रदायिकता में सुलगते समाज का एकरेखीय विवरण।

4.5 उपन्यास और आत्मकथा

अन्य गद्य विधाओं में आत्मकथा विशेष रूप से ऐसी विधा है जिससे उपन्यास का सबंध जुड़ सकता है। उपन्यास अपनी प्रकृति तथा शिल्प में आत्मकथात्मक हो सकता है। उपन्यास में आत्मकथा अपनी सर्जनात्मक प्रकृति के अनुसार अधिक सहज आत्मीय, अनौपचारिक हो सकती है। जैसे उग्र की रचना 'अपनी खबर' एक फक्कड़, अराजक और स्वच्छंद लेखक की आत्मकथा है पर अपने पूरे प्रभाव में उपन्यास से कम नहीं। हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में आत्मकथा उपन्यास की विशेष काल्पनिक युक्ति है।

हिंदी साहित्य कोश, खंड एक में 'आत्मकथा' को विधा के रूप में परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "आत्मकथा लेखक के अपने जीवन का सम्बद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपनी बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाया जाना संभव है।" यहीं यह भी कहा गया है कि डायरी, संस्मरण, पत्र आदि आत्मकथा लेखन के ही विभिन्न प्रकार हैं। व्यक्तिगत, जिये हुए अनुभवों का एक तरह का आख्यान है आत्मकथा, जिसके मूल में आत्मस्पर्श है। जीवनी आत्मकथा से इस अर्थ में भिन्न है कि दूसरे व्यक्ति द्वारा लिखी गयी किसी व्यक्ति की जीवनी 'जीवनी' होगी। उसमें निर्ममता, तटस्थता, निर्वैयक्तिकता की अपेक्षा और तरह से की जाएगी।

हिंदी में आत्मचरित, आत्मचरित्र पहले से चले आ रहे शब्द हैं जो आत्मकथा के ही व्यंजक हैं। आत्मकथा की रचना ही इसलिए की जाती है कि लेखक अपने पहले के जिये हुए जीवन को एक बार और जीना चाहता है। वह अपने पर पड़ा हुआ पर्दा उठाना चाहता है। इसलिए ईमानदारी-साहस के अभाव में आत्मकथा लिखी ही नहीं जा सकती। इधर दलित साहित्य में 'आत्मकथात्मक उपन्यास' के महत्व की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। ओम प्रकाश वाल्मीकि की औपन्यासिक कृति 'जूठन' में यह निर्मम आत्मकथन मौजूद है। मोहनदास नैमिषराय का उपन्यास 'अपने अपने पिंजरे' इसी प्रकार के आत्मकथात्मक लेखन का उदाहरण है। लक्ष्मण गायकवाड़ का मराठी से हिंदी में अनूदित उपन्यास 'उठाईगीर' ऐसा ही आत्मकथात्मक उपन्यास है।

अभी कुछ ही समय पहले मराठी से हिंदी में आनंद यादव का आत्मकथात्मक उपन्यास 'नटरंग' प्रकाशित हुआ है जो स्मृति में देर तक के लिए अंकित हो जाने वाली रचना है। यह आत्मकथात्मक उपन्यास है लेकिन नायक के अपने जीवन में घटने वाली त्रासदी से यह कम नहीं है। संगी-साथी मिलकर 'तमाशा' (नाटक मण्डली) बनाते हैं। नयना, शोभना काम करने के लिए मिलते हैं। नयना उसकी कल्पना पर ऐसी पूर्णता के साथ आती है कि वह चकित है - वह ग्रामीण युवक जो नायक है जो मंडली बनाता है और घुमक्कड़ी तथा तमाशा में एक तरह के उन्माद में अपने को पाता है। उपन्यास ऐसा कि आत्मकथा और उपन्यास का भेद मिट गया है। कृष्णबलदेव वैद का नया उपन्यास 'एक नौकरानी की डायरी' अपनी मूल प्रकृति में आत्मकथात्मक उपन्यास है।

हिंदी में आत्मकथात्मक लेखन अधिक नहीं हुआ है। आत्मकथा में विनम्रता से अधिक निर्वैयक्तिकता अपेक्षित है। पद्य माध्यम में लिखी बनारसीदास जैन की 'अर्द्धकथा' (1641) एक प्रसिद्ध उदाहरण है। फिर भारतेंदु की रचना 'कुछ आपबीती, कुछ जगबीती'। कहना कठिन है कि आत्मकथा है या आत्मकथा के रूप में एक आधा अधूरा उपन्यास। भारतेंदु मण्डल के एक लेखक अम्बिकादत्त व्यास ने 'निज वृत्तांत' (1901) नाम से आत्मकथा लिखी। नाम से ही प्रकट है कि कथा कम, वृत्तांत अधिक है।

'हंस' पत्रिका का आत्मकथा अंक (सं. प्रेमचंद) चर्चित रहा है। इस पर आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने आपत्ति की थी कि लेखकों के आत्मविज्ञापन को बढ़ावा मिलेगा। आत्मकथा अंक में प्रकाशित अपनी कविता में जैसे प्रसाद ने जवाब दिया :

छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ

पहले की आत्मकथाओं में एक बाबू श्यामसुंदर दास की 'मेरी आत्मकहानी' (1941) है। यह आत्मकहानी भाषा साहित्य के एक पूरे दौर का वृत्तांत है। राहुल जी की 'मेरी जीवन यात्रा' वस्तुतः आत्मकथा है - सम्पूर्ण विस्तार में अत्यंत रोचक और अनुभव समृद्ध।

प्रश्न यह है कि आत्मकथा और उपन्यास का विधा के रूप में अंतर्संबंध क्या है? एक सच्ची आत्मकथा या आत्मवृत्त में उपन्यास की-सी रोचकता हो सकती है। आवश्यक नहीं कि वह उपन्यास भी हो। इसी प्रकार उपन्यास आत्मकथात्मक शिल्प का उपयोग कर सकता है। वह आत्मकथा होने का आभास करा सकता है। भारत के पहले राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद ने 1947 में आत्मकथा लिखी। कहा गया है कि प्रधान चरित्र के माध्यम से परिवेश के साथ-साथ पुनर्सृजन - जो आधुनिक आत्मकथा लेखन की एक विशिष्टता कही जा सकती है - इसका एक आरंभिक रूप यहाँ मौजूद है। हरिवंश राय बच्चन ने 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर' जैसे चार खण्डों में आत्मकथा प्रकाशित की, जो विवाद में रही। आत्मकथाएँ प्रायः विवादग्रस्त रही हैं। कारण यह कि *लेखक की निर्वैयक्तिकता, तटस्थता और ईमानदारी समकालीनों की दृष्टि में प्रायः संदिग्ध बने रहते* हैं। शिवपूजन सहाय का 'मेरा जीवन' आत्मकथा ही है और सरलता तथा विश्वसनीयता के कारण ही महत्वपूर्ण है। प्रतिभा अग्रवाल ने 'दस्तक जिंदगी की' (1990) शीर्षक से आत्मकथा लिखी है। इधर अनेक नये पुराने लेखकों में आत्मकथा लिखने का चलन बढ़ रहा है। लेखिकाओं द्वारा लिखी आत्मकथाएँ भी चर्चा में रही हैं। उनमें गोपन क्षणों के मार्मिक उद्घाटन की प्रतीक्षा-सी बनी रहती है।

कहने का अर्थ यह कि आत्मकथा और उपन्यास वे गद्य विधाएँ हैं जिनमें आवाजाही बनी रहती है। आत्मकथा विधा से कोई उपन्यास भी ग्रहण कर सकता है जैसे आत्मकथा लेखक को भी प्रच्छन्नता के लिए उपन्यास जैसा माध्यम चुनना पड़ सकता है। इधर के कई उपन्यास आत्मकथात्मक हैं और उनमें लेखक के आत्मजीवन के ही कठिन गोपनीय क्षण वर्णित हैं। यह वस्तुतः प्रच्छन्न ढंग है - उपन्यास के कलेवर मे आत्मकथा लिखी जा रही है। पर यहाँ निर्वैयक्तिकता, तटस्थता, निर्ममता का महत्व कम नहीं होता।

4.6 उपन्यास और जीवनी

आशा है आप इस इकाई की सार्थकता 'उपन्यास' की सैद्धांतिकी की दृष्टि से भी स्वीकार करेंगे। हम यहाँ साहित्य की उन 'इतर गद्य विधाओं' की प्रकृति और संरचना पर विचार कर रहे हैं जिनका संबंध उपन्यास से जुड़ सकता है। जैसे आत्मकथा, और अब जीवनी। उपन्यास महान् जीवनियों से भी उपन्यास के लिए सार-सामग्री प्राप्त कर सकता है। ताजा उदाहरण है गिरिराज किशोर का उपन्यास 'पहला गिरमिटिया'। यह जितना इतिहास-स्रोतों से प्रभावित है उतना ही गाँधी की अनेक चर्चित जीवनियों से। और लिखा गया है अंततः एक उपन्यास। 'पहला गिरमिटिया' जितना इतिहास है उतनी ही जीवनी है और उतना ही उपन्यास है। ये अनेक स्रोत औपन्यासिक कल्पना पर भारी पड़ते हैं।

यहाँ स्वीकार किया जा सकता है कि आरंभिक जीवनी लेखन की उपदेशात्मक वृत्ति सीधे पुनर्जागरण काल की मनोवृत्ति से मेल खाती है। जीवनियाँ हैं तो आदर्शीकृत रूप में ही पाठक के सामने आ पाती है। पहले ऐसी जीवनियाँ प्रकाशकों की माँग पर लिखी गयीं। आगे चलकर जीवनी विधा में कई महत्वपूर्ण रचनाएँ लिखी गयी हैं। इससे पूर्व केवल वार्ताओं के रूप में कुछ जीवनियाँ लिखी गयी थीं। *पहले की चर्चित जीवनी प्रधान रचनाओं में बंकिमचंद्र का 'कृष्णचरित्र' भी है।* राधामोहन गोकुलजी ने यूरोपीय इतिहास के सबसे रोचक चरित्र नेपोलियन का जीवन-वृत्त लिखा। राधाकृष्णदास ने भारतेंदु की जीवनी लिखी।

अमृतराय ने प्रेमचंद की जीवनी 'कलम का सिपाही' नाम से लिखी है जिसमें सहज ही औपन्यासिकता का तत्व आ गया है। कारण यह कि प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने प्रेमचंद की जीवनी इतनी निर्मम तटस्थता से लिखी है कि आश्चर्य होता है। जीवन और साहित्य को मिलाकर ऐसी जीवनी की बुनावट चकित करने वाली है। यह विशेषता रामविलास शर्मा लिखित 'निराला की साहित्य साधना' के पहले खंड अर्थात् जीवनी खंड में भी मौजूद है। प्रेमचंद और निराला दोनों के व्यक्तित्व में सादगी और विलक्षणता का अपूर्व संयोजन है। विष्णु प्रभाकर की एक चर्चित कृति है 'आवारा मसीहा' जो बंगला के प्रख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र के जीवन पर आधारित है। शरत में तो कथा-नायकों की सभी विलक्षणता मूर्तिमान है।

हिंदी जीवनी लेखन के इस संक्षिप्त परिचय के बाद हम 'जीवनी' के कुछ लक्षणों पर आते हैं जिनसे उपन्यास का संबंध जुड़ सकता है। 'जीवनी' को मुख्यतः इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि :

- जीवनी वह कला रूप है जो व्यक्तियों के जीवन को समग्रता और वैविध्य में चित्रित कर सके।
- जीवनी वह साहित्यिक विधा है जिसमें व्यक्तियों की जीवन-गाथा निर्वैयक्तिक तटस्थता से लिखी गयी हो।
- जीवनी में वर्णित व्यक्ति का वैशिष्ट्य, उसकी अद्वितीयता का अंकन महत्वपूर्ण है।
- आदर्श जीवनी वह है जो व्यक्तित्व के उद्घाटन में औपन्यासिक मर्म समेटे हुए हो।
- शुद्ध जीवनी (Pure Biography) व्यक्ति के अंतर्बाह्य जीवन का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकती है। यदि हम व्यक्तित्व के जीवन को श्रद्धावश या किसी और पूर्वग्रह के कारण छिपाएँगे तो अशुद्ध जीवनी (Impure Biography) तक ही पहुँचेंगे।
- जीवनी लेखन में दूरी या तटस्थता ज़रूरी है।
- जीवनी को सूचना प्रधान नहीं, सर्जनात्मक गद्य कृति का रूप लेना चाहिए।

कभी पोप ने कहा था कि मनुष्य के समग्र अध्ययन का महत्वपूर्ण बिंदु मनुष्य ही है। इससे जीवनी की उस विशिष्टता को समझा जा सकता है जो उपन्यास के निकट की विधा है। प्रेमचंद ने क्यों कहा, कि मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। उपन्यास विधा में मानव चरित्र के मनोविज्ञान की समझ ज़रूरी हो जाती है जो जीवनी की भी ज़रूरी शर्त है। लोकप्रियता के लिए जीवनी में झूठ या छल का सहारा नहीं लिया जाना चाहिए। उपन्यास में किसी महत्वपूर्ण या पूज्य व्यक्ति के जीवन के दुर्बल पक्षों को अतिरंजित करके रखा जा सकता है। सलमान रुश्दी के कुछ उपन्यासों में ऐतिहासिक नायकों का या महत्वपूर्ण चरित्रों का विद्रूप, विडम्बनापूर्ण ढंग से चित्रण किया गया है।

यह अपेक्षा आत्मकथा से भी की जाती है कि वह एक साथ 'निजी' और 'वस्तुपरक' आत्मलेखन हो। इसलिए जीवनी, आत्मकथा दोनों विधाएँ उपन्यास से ग्रहण कर सकती हैं और उपन्यास में बहुत कुछ नया जोड़ सकती हैं। उपन्यास के बीज तो मध्यकालीन रोमांस तक में रहे हैं पर उसने सभ्यता और साहित्य रूपों के विकास से बहुत कुछ सीखा है। चरित्रों का उद्घाटन उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है इसलिए स्वभावतः जीवनी और उपन्यास विधा में ऐसी आंतरिक समानताएँ हैं कि उन्हें छोड़कर दोनों विधाओं की सम्यक अवधारणा बनाना कठिन है। उपन्यास का कोई स्थिर ढाँचा इसीलिए नहीं बना है कि उसमें अनेक विधाओं की आवाजाही बनी रहती है। क्योंकि व्यक्ति के अंतर्बाह्य जीवन से उपन्यासकार अपने चरित्र की परिकल्पना में लगातार टकराता रहता है। अतः सहज ही जीवनी और उपन्यास की संरचना की समानताओं और उनके वैशिष्ट्य को ध्यान मे रखना चाहिए।

4.7 दृश्य माध्यमों के विकास का उपन्यास पर प्रभाव

यहाँ दो बातों पर अलग-अलग विचार करने की ज़रूरत है। एक संदर्भ तो यह है कि उपन्यास जब दूसरे दृश्य माध्यमों में प्रस्तुत होते हैं जैसे सिनेमा या रंगमंचीय प्रस्तुति में या टेलीविज़न के धारावाहिक (सीरियल) के रूप में तो एक प्रश्न उठता है कि माध्यमों ने हमारे उपन्यासों के साथ कैसा संबंध निभाया। उपन्यास एक कृति के रूप में विकसित रूप में आया या उसकी अंतर्वस्तु क्षतिग्रस्त हुई या कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह भिन्न प्रश्न है कि दृश्य माध्यम विकसित हो रहे हैं तो क्या वे उपन्यास को उसकी रचनाप्रक्रिया के भीतर ही प्रभावित कर रहे हैं। यहाँ हम आपको इस 'प्रभाव' के संबंध में सतर्क करना चाहेंगे। कभी भी दूसरे माध्यमों का (कितना भी महत्वपूर्ण होने पर) *प्रभाव इतना स्पष्ट नहीं होता कि मुख्य कृति पर वह आरोपित जान पड़े। जिनका प्रभाव पड़ता है वे* भी और जो कृति प्रभावित होती है वह भी अपनी स्वायत्तता या स्वतंत्रता कायम रखती है। यहाँ हम साहित्य सिद्धांत के एक समीक्षक रेने वेलेक का यह विचार आप तक पहुँचाना चाहते हैं। रेने वेलेक का कहना है :

"विभिन्न कलाओं का अपना अलग-अलग विकास हुआ करता है और इस विकास का अपना वेग और शब्दों का आंतरिक गठन बिल्कुल अलग-अलग हुआ करता है। ये प्रभाव ऐसे नहीं होते कि एक बिंदु से शुरू होते हों और दूसरी कलाओं का विकास उनसे निर्धारित होता हो।" आशा है आप इस प्रभाव की सूक्ष्मता को समझेंगे। दृश्य माध्यमों का तेज़ी से विकास संभव है उपन्यास-रूप को प्रभावित करे। पर यह प्रभाव उपन्यास की स्वायत्तता या स्वतंत्रता को बनाए रखेगा तभी उसकी सार्थकता है।

जैसे सिनेमा की दुनिया में जाकर प्रेमचंद ने क्या देखा या सीखा, जिसने अनजाने उनके उपन्यास शिल्प को प्रभावित किया। या उपन्यास में नाटकीय दृश्य विधान के समक्षीकरण जैसी स्थितियाँ बनीं। 'गोदान' प्रेमचंद का प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें सिनेमाई स्थितियाँ कम नहीं हैं। सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में प्रायः स्थितियाँ आमने-सामने जैसी हैं - वैसी ही जैसी नाटक में होती है।

दृश्य माध्यमों के उपन्यास पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करते हुए नव-उपन्यास के प्रवक्ता राब्ग्रिए का कहना है - महत्वपूर्ण है आधुनिक सिनेमा और आधुनिक उपन्यास की वह अवस्था जब चित्रण के स्थान और आशय एक दूसरे से सर्वथा अलग हैं, जब कथा के बयान में कोई तारतम्य नहीं है, जब किसी घटना, वस्तु का अपने स्थान पर होना नियत नही है, जब कुछ भी कहीं भी घटित हो सकता है। कई बार उपन्यास फिल्म या नाटक के-से दृश्य बंध की याद दिलाता है।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' उपन्यासों में विकसित दृश्य माध्यमों वाली तकनीक देखी जा सकती है। वातावरण, स्थान, *स्थितियाँ, उच्चरित ध्वनियाँ इन सबके विशिष्ट विधान* में सतर्कता बरती गयी है। निर्मल वर्मा ने रेणु के उपन्यास 'परती परिकथा' को पढ़कर लिखा - "समूचा उपन्यास पढ़ जाने के बाद लगता है जैसे हम किसी गाँव का अद्भुत विचित्र 'कार्नीवाल' देख आये हैं।" आगे वे कहते हैं - "महत्वपूर्ण है इस कार्नीवाल की गतिमयता, अविरल प्रवाह की कलकल, हवा में उड़ते रंगों की आभा, एक मायावी लय जो समस्त व्यक्तियों और घटनाओं के बीच गुजरती हुई हमारे मस्तिष्क और हृदय को आलोड़ित कर देती है।" क्या यह चमक से भरी और गूँजती दृश्यात्मकता फिल्म विधा की याद नहीं दिलाती। चेतनाप्रवाही सिद्धांत के अनुरूप मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पूर्वदीप्ति (फ्लेशबेक) आदि का उपयोग फिल्म की तकनीक से प्रभावित है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'चाक' के अंत को हमारी व्यावसायिक फिल्मों की रीति के अनुरूप ही माना जाएगा। 'परती परिकथा' में रंग-बिरंगे धब्बों और अनगढ़ रेखाओं के बीच जिस अद्भुत सिंफनी का उल्लेख किया है, वह फिल्म की सी तकनीक है। शानी के उपन्यास 'काला जल' की दूरदर्शन के धारावाहिक रूप में प्रस्तुति देखकर अनुमान किया जा सकता था कि कहाँ कैमरा फिल्म की दृष्टि से दृश्यों पर जा टिकता है। अब हम अनुभव करते हैं कि इन तमाम तकनीकी युक्तियों में भाषा ही वह तत्व है जिसकी ग्रहणशीलता में दृश्य माध्यमों का वैशिष्ट्य भी सहायक है। इस प्रकार के और उदाहरण आप चुन सकते हैं और अपने नये निष्कर्षों को भी इस विवेचन में जोड़ सकते हैं।

4.8 सारांश

आपने 'उपन्यास' मॉड्यूलर से संबंधित पाठ्यक्रम एम.एच.डी.-13 के खंड एक की अंतिम इकाई का अध्ययन कर लिया है। इस उपन्यास का महाकाव्य तथा अन्य गद्य रूपों से क्या संबंध है इस बारे में आपने जानकारी हासिल की है। उपन्यास का कहानी से क्या संबंध है उपन्यास का क्रमशः

आत्मकथा और जीवनी जैसे गद्य-रूपों से क्या संबंध है। और आगे हम यह भी देख सके हैं कि इधर दृश्य माध्यमों के तेज़ी से हो रहे विकास का भी उपन्यास रूप पर क्या कोई प्रभाव पड़ रहा है। अभी यह बहुत सूक्ष्म, पर एक आरंभिक काल्पनिक विचार ही जान पड़ेगा। पर हमने इसे भी बातचीत में समेट लिया है। हमने माना कि उपन्यास जो हमारे समय की सबसे महत्वपूर्ण विधा है वह स्थिर नही है अत्यंत लचीली विधा है। उसे दूसरी विधाओं के आदान-प्रदान पर कोई हिचक नही है। इसी अर्थ में वह अशुद्ध विधा है। यह अशुद्धता उसकी जीवनीशक्ति का रहस्य है।

अभ्यास

यहाँ इस इकाई से संबंधित कुछ प्रश्न दिए गए हैं इनका इकाई को पढ़कर तथा अन्य उपलब्ध सामग्री के आधार पर उत्तर दीजिए :

1. उपन्यास और कहानी के अंतःसंबंधों पर प्रकाश डालिए।
2. उपन्यास, जीवनी और आत्मकथा किस तरह एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. उपन्यास महाकाव्य से किस रूप में भिन्न है, बताइए।
4. उपन्यास विधा पर दृश्य माध्यमों के प्रभाव की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

उपयोगी पुस्तकें (पूरे खंड के लिए)

निर्मल वर्मा : **शताब्दी के ढलते वर्षों में**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

प्रेमचंद : **साहित्य का उद्देश्य**, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद।

रामचंद्र शुक्ल : **हिंदी साहित्य का इतिहास**, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

सं. धीरेन्द्र वर्मा : **हिंदी साहित्य कोश**, ग्रंथ निकेतन, पटना।

रामस्वरूप चतुर्वेदी : **हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास**, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

मैनेजर पाण्डेय : **साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका**, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़।

गोपाल राय : **उपन्यास का शिल्प**, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना।

रामदरश मिश्र : **हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

जवरीमल्ल पारख : **लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ**, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

जार्ज लुकाच : **उपन्यास और लोक जीवन**, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि., नई दिल्ली।

चंद्रकांत बांदिवडेकर : **उपन्यास : स्थिति और गति**, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

खंड

2

उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-2

इकाई-1
उपन्यास : वस्तु और शिल्प 5

इकाई-2
उपन्यास की भाषिक संरचना 21

इकाई-3
उपन्यास : वर्गीकरण और उसके विभिन्न आधार 38

इकाई-4
उपन्यास की आलोचना दृष्टियाँ 54

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. असगर वज़ाहत
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

संकाय सदस्य
प्रो. वी.रा. जगन्नाथन
(कार्यक्रम संयोजक)

प्रो. गोपाल राय
एच-2, यमुना, इग्नो आवासीय
परिसर, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. ललिताम्बा
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इंदौर, मध्य प्रदेश

प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. रीता रानी पालीवाल
डॉ. सत्यकाम
डॉ. राकेश वत्स
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. विमल खांडेकर
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी

प्रो. नित्यानंद तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. सत्यप्रकाश मिश्र
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रो. निर्मला जैन
ए-20/17, कुतुब एन्क्लेव,
फ़ेज-1, गुड़गाँव, हरियाणा

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रोफेसर, हिंदी संकाय
इं.गां.रा.मु.वि.

इकाई संख्या
1 से 4

संपादक
प्रो. जवरीमल्ल पारख

पाठ्यक्रम संयोजक
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रोफेसर, हिंदी संकाय
इं.गां.रा.मु.वि.

सामग्री निर्माण सहयोग

मुद्रण
श्री कुलवंत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानिवकी विद्यापीठ
इं.गां.रा.मु.वि.

कैमरा रेड्डी कॉपी निर्माण
श्री नरेश कुमार
निजी सहायक
मानविकी विद्यापीठ
इं.गां.रा.मु.वि.

आवरण सज्जा
सुश्री पन्ने कुँवर बच्छावत

फरवरी, 2004 (पुनः मुद्रित)

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2002

ISBN- 81 - 266 - 0586 - 3

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खंड 2 का परिचय

एम एच डी-13 'उपन्यास : स्वरूप और विकास' का दूसरा खंड 'उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-2' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पहले आप इस पाठ्यक्रम का पहला खंड पढ़ चुके हैं जिसमें उपन्यास के उदय के बारे में आपने विस्तृत जानकारी प्राप्त की। इस खंड में भी चार इकाइयाँ हैं जिनका विभाजन निम्न प्रकार से किया गया है :

इकाई-1 : उपन्यास वस्तु और शिल्प
इकाई-2 : उपन्यास की भाषिक संरचना
इकाई-3 : उपन्यास का वर्गीकरण और उसके विभिन्न आधार
इकाई-4 : उपन्यास की आलोचना दृष्टियाँ

इस खंड में हमने उपन्यास के सिद्धांत पक्ष के बारे में विचार किया है यह विचार उपन्यास के विभिन्न तत्वों के संदर्भ में किया गया है। पहली इकाई में उपन्यास की अंतर्वस्तु, चरित्र-चित्रण, उपन्यास की संरचना और शिल्प के बारे में बताया गया है। उपन्यास के कथानक का निर्धारण कैसे होता है, कथानक का विकास कैसे होता है, मुख्य और आवांतर कथाएँ कथानक का कैसे हिस्से बनती हैं, उपन्यास की कथावस्तु में स्वाभाविकता, विश्वसनीयता और नवीनता क्यों ज़रूरी हैं? इस इकाई में इस पर विचार किया गया है। इस इकाई में कथा के विकास में पात्रों की भूमिका मुख्य पात्र और गौण पात्र तथा चरित्र-चित्रण की विभिन्न पद्धतियों के बारे में भी बताया गया है। उपन्यास की संरचना में स्थान, काल, वर्णन और विश्लेषण तथा प्रातिनिधिकता और प्रतीकात्मकता का भी बड़ा महत्व होता है। इसी प्रकार उपन्यास के शिल्प की विशिष्टता, यथार्थता की जटिलता, संघर्ष के विविध स्तर, गद्य भाषा के विभिन्न आयामों, कथाकार की कल्पनाशीलता और प्रयोगधर्मिता पर निर्भर करता है। इस पहली इकाई में इन सभी पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

इस खंड की दूसरी इकाई में उपन्यास की भाषा पर विचार किया गया है। उपन्यास साहित्य की विधा है इसलिए उपन्यास की उत्कृष्टता, भाषा के रचनात्मक प्रयोग पर निर्भर करती है। उपन्यास में गद्य भाषा का प्रयोग किया जाता है। गद्य और पद्य भाषा के अंतर को समझना आवश्यक है। गद्य की भाषा में वर्णन और विश्लेषण की क्षमता होती है। उपन्यास की भाषा के माध्यम से कथा कही जाती है लेकिन सिर्फ कथा सुनाने के अर्थ में नहीं बल्कि कथा रचने और कथा देखने के अर्थ में। उपन्यास में बोलचाल की भाषा के भी कई रूप दिखाई देते हैं जिसके द्वारा भाषा को रचनात्मक बनाया जाता है। गद्य की भाषा होते हुए भी उपन्यास में काव्य भाषा के उपकरणों का भी प्रयोग किया जाता है। उपन्यास की भाषा के इन सभी पहलुओं पर इस इकाई में विचार किया गया है।

तीसरी इकाई का संबंध उपन्यास के वर्गीकरणों से है। उपन्यास का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है। उद्देश्य के आधार पर, कथावस्तु के आधार पर, चरित्रों के आधार पर, शैली के आधार पर और जीवन दृष्टि के आधार पर। इन विभिन्न आधारों पर उपन्यास के वर्गीकरणों पर इकाई में विस्तार से चर्चा की गई है और बताया गया है कि क्यों एक उपन्यास दूसरे उपन्यास से अलग होता है और किस तरह उपन्यासों के अन्य वर्गीकरण उपन्यास विधा को वैविध्यपूर्ण ही नहीं बनाते बल्कि उसके सामर्थ्य को भी व्यक्त करते हैं।

इस खंड की अंतिम इकाई में उपन्यास संबंधी आलोचना दृष्टियों पर विचार किया गया है। उपन्यास का संबंध आधुनिक पूँजीवादी विकास से है और उपन्यास के विकास के साथ-साथ यथार्थवाद का भी विकास हुआ है। यह कहना गलत न होगा कि उपन्यास का आधार यथार्थवाद है। लेकिन उपन्यासों में यथार्थवाद का निषेध भी मिलता है। प्रेमचंद के समय ही आदर्शवाद और यथार्थवाद के बीच विवाद पैदा हुआ था। बाद में आधुनिकतावादी दृष्टियों ने भी

यथार्थवाद को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया और अब उत्तर आधुनिक युग मे यथार्थवाद को नए ढंग से परिभाषित किया जा रहा है। इन सभी पहलुओं पर इकाई में प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार इस खंड को पढ़ने से आपको उपन्यास के तत्वों को और उपन्यास से संबंधित आलोचना दृष्टियों को समझने में मदद मिलेगी।

शुभकामनाओं सहित।

इकाई 1 उपन्यास : वस्तु और शिल्प

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 उपन्यास की अंतर्वस्तु
1.2.1 कथानक का निर्धारण
1.2.2 कथानक का विकास
1.2.3 मुख्य और अवांतर कथाएँ
1.2.4 स्वाभाविकता और विश्वसनीयता
1.2.5 कथानक में नवीनता
1.3 उपन्यास : पात्रों का विकास
1.3.1 कथा विकास में भूमिका
1.3.2 मुख्य पात्र और गौण पात्र
1.3.3 चरित्र चित्रण की विभिन्न पद्धतियाँ
1.4 औपन्यासिक संरचना
1.4.1 स्थानिक संरचना
1.4.2 कालिक संरचना
1.4.3 वर्णन और विश्लेषण
1.4.4 प्रातिनिधिकता और प्रतीकात्मकता
1.5 शिल्पगत वैशिष्ट्य का आधार
1.5.1 यथार्थ की जटिलता और विविधता
1.5.2 संघर्ष के विविध स्तर और आयाम
1.5.3 गद्य में निहित स्तर और आयाम
1.5.4 कल्पनाशीलता और प्रयोगधर्मिता
1.6 सारांश

1.0 उद्देश्य

एम.एच.डी.-13 (उपन्यास : स्वरूप और विकास) के दूसरे खंड 'उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप, भाग-दो' की पहली इकाई पढ़ने जा रहे हैं। इस इकाई का उद्देश्य आपको उपन्यास की वस्तु और रूप (शिल्प) के बारे में बताना है। किसी भी साहित्यिक विधा के दो पक्ष होते हैं: वस्तु और रूप। वस्तु और रूप को समझकर ही हम उपन्यास की संरचना को समझ सकते हैं।

उपन्यास की अंतर्वस्तु पर विचार करते हुए इकाई में उपन्यास के कथानक के विभिन्न पक्षों पर विचार किया गया है। इससे आप कथानक के निर्धारण और विकास के विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे।

उपन्यास में पात्रों का स्थान महत्वपूर्ण होता है। पात्रों की कथा विकास में भूमिका, मुख्य या केंद्रीय चरित्र तथा चरित्र-चित्रण की विभिन्न पद्धतियों की जानकारी भी इसी इकाई में प्राप्त करेंगे।

उपन्यास की संरचना के कई आधार हो सकते हैं : स्थानगत, कालगत, वर्णन और विश्लेषण आधारित तथा प्रातिनिधिक और प्रतीकात्मक। उपन्यास की संरचना के संदर्भ में इन विभिन्न पहलुओं पर इकाई में विचार किया गया है।

उपन्यास पर विचार करते हुए उसकी शिल्पगत विशिष्टताओं के बारे में जानना ज़रूरी है। इसका संबंध यथार्थ की जटिलताओं, गद्य लेखन की रचनात्मक संभावनाओं और लेखकीय

रचनाशीलता में निहित कल्पाशीलता और प्रयोगशीलता पर निर्भर करता है। इकाई में शैली पर विचार करते हुए इन पक्षों पर भी विचार किया जाएगा।

उपन्यास के वस्तु और शिल्प पर विचार करते हुए उसमे निहित शैलीगत प्रयोगों और संभावनाओं पर भी विचार किया जाएगा।

उपर्युक्त सभी पहलुओं पर विचार करने से आप उपन्यास की वस्तु और शिल्प के विभिन्न पक्षों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे और इस ज्ञान का उपयोग आगे के पाठ्यक्रमों में पढ़ाए जाने वाले उपन्यासों को समझने और विवेचित करने में कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

एम एच डी-13 पाठ्यक्रम के इस दूसरे खंड में आप उपन्यास की वस्तु और शिल्प पक्ष का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसके पिछले खंड में आपने उपन्यास विधा के उदय के कारणों और परिस्थितियो का अध्ययन किया था। हिंदी और अन्य भाषाओं में लिखे गए उपन्यासों के उदाहरणों द्वारा उपन्यासों के विकास में निहित विभिन्न प्रवृत्तिगत रूपों से भी आपने परिचय प्राप्त किया है।

इस इकाई में आप उपन्यास की अंतर्वस्तु, पात्रों का विकास, उपन्यास की संरचना और उसके शिल्पगत वैशिष्ट्य के आधारों पर विचार करेंगे। उपन्यास पर विचार करते हुए पश्चिमी चिंतक रैल्फ फॉक्स ने उसे "बुर्जुआ समाज का महाकाव्य कहा है। उनका मानना है कि "उपन्यास बुर्जुआ साहित्य की न केवल सबसे प्रतिनिधि उपज है बल्कि उसकी श्रेष्ठतम रचना भी है। यह कला का एक नया रूप है"। उपन्यास को कला का नया रूप सभी ने माना है। पहले खंड में भी आपको यह बात बताई जा चुकी है। इससे इतना तो ज़ाहिर है कि उपन्यास विधा पर चर्चा करते हुए हम उन पूर्ववर्ती विधाओं पर भी विचार करेंगे जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव उपन्यास साहित्य पर अवश्य पड़ा होगा। उपन्यास और साहित्य की अन्य विधाओं के पारस्परिक संबंधों पर विचार पहले खंड में किया जा चुका है। उसी सूत्र को पकड़ते हुए हम उपन्यास के विभिन्न तत्वों पर इस इकाई में विचार करेंगे।

उपन्यास विधा के उदय को यदि महाकाव्य के पतन के साथ जोड़ा गया है तो दूसरी ओर इसे यथार्थ के सबसे अधिक नज़दीक विधा भी कहा गया है। लेकिन यथार्थ लगातार बदलता रहता है इसलिए यह स्वाभाविक है कि उपन्यास में अभिव्यक्ति भी परिवर्तित रूप में होगी' (कोंस्तानिन फेदिन)। लेकिन यहाँ यह प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि आधुनिक मनुष्य उपन्यास पढ़ने की ओर क्यों उन्मुख हुआ। एक विचार यह है कि "अपने नैतिक और मनोवैज्ञानिक केंद्र (फोकस), अपने उत्पादन और वितरण की तकनीक, पाठकों से अपेक्षित पारिवारिक एकांत, अवकाश और पढ़ने की आदतों के कारण उपन्यास महान् औद्योगिक वाणिज्य प्रधान बुर्जुआ युग के लिए बिल्कुल उपयुक्त है" (जार्ज स्टानर, लेंग्वेज एंड साइलेंस (1967), साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, संपादक : निर्मला जैन से उद्धृत पृष्ठ 85)। पश्चिमी विचारकों का मानना है कि "उपन्यास औद्योगिक मध्यवर्ग की व्यापक दृष्टि को प्रतिबिंब करता है - एक ऐसे वर्ग की दृष्टि को जिसके संरक्षण में काफी हद तक उपन्यास का लचीला सांस्कृतिक महत्व सुरक्षित रह सका है" (निर्मला जैन द्वारा संपादित पुस्तक 'साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन' से उद्धृत पृ. 86)। हिंदी के प्रख्यात लेखक अज्ञेय इस बात को कुछ अलग ढंग से कहते हैं, "...उपन्यास मानव के अपनी परिस्थितियों के साथ संबध की अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास का प्रतिनिधित्व करता है" (सर्जना और संदर्भ, पृ. 131)।

इस प्रकार उपन्यास के संदर्भ में हमारे सामने कई पहलू उभरकर आते हैं। एक, उपन्यास के उदय का संबंध पूजीवादी समांज के उदय और विकास से है। दो, उपन्यास में मानव जीवन

के यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है। तीन, उपन्यास औद्योगिक समाज के साथ उभरे मध्यवर्ग की आशाओं-आकांक्षाओं और पीड़ाओं से ताल्लुक रखता है। और, चार उपन्यास इस वर्ग के खाली सामय में उसे मानसिक विरेचन और मनोरंजन का एक साधन उपलब्ध कराता है। सवाल यह है कि इन सब पहलुओं का प्रभाव उपन्यास की संरचना पर किस रूप में पड़ता है। क्या भारत में उपन्यास के विकास को इन आधारों पर परिभाषित किया जा सकता है? उपन्यास की अंतर्वस्तु, पात्रों के विकास और संरचना-शिल्प पर विचार करते हुए हमें उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखना होगा।

1.2 उपन्यास की अंतर्वस्तु

उपन्यास का संबंध आधुनिक पूंजीवादी युग से जोड़ा गया है तो दूसरी ओर इसका संबंध गद्य के विकास से भी है। गद्य लेखन का महत्व बढ़ने का कारण मुद्रण यंत्र का आविष्कार था जिसके कारण यह संभव हो सका है कि एक ही पुस्तक की सैकड़ों प्रतियाँ कम समय में और कम श्रम से बनाई जा सकती थी। उपन्यास कहानी की तुलना में लंबी रचना है। उपन्यास में भी कथा होती है और कहानी में तो कथा होती ही है। कहानी आधुनिक विधा नहीं है। लेकिन आधुनिक कहानी का आस्वादन पढ़कर ही ज्यादा लिया जाता है, सुनकर कम जबकि प्राक्-आधुनिक कहानी पढ़ने से ज्यादा सुनने के लिए होती थी। कहानी को सुनाया जाता था इसीलिए उसे गल्प या किस्सा कहा जाता था। लेकिन उपन्यास को कहानी की तरह नहीं सुनाया जा सकता। उपन्यास की कथा का सार तो बताया जा सकता है, लेकिन उस सार में 'उपन्यास' की कोई झलक नहीं होती। क्या प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान', रवींद्रनाथ ठाकुर के 'गोरा' या दोस्तोव्स्की के 'अपराध और दंड' का सार सुनाया जा सकता है? और क्या उनमें इन उपन्यासों का थोड़ा-सा भी एहसास पा सकते हैं? ज़ाहिर है नहीं। यही वजह है कि उपन्यास को एक आधुनिक विधा कहा गया है जिसका जन्म पूंजीवादी युग में, मुद्रण की नयी यांत्रिकी के आगमन के कारण हुआ।

उपन्यास के सैद्धांतिक पक्ष पर विचार करते हुए 'साहित्य-सिद्धांत' नामक पुस्तक में आस्टिन वारेन और रेने वालेक ने उपन्यास के तीन नियामक तत्वों का उल्लेख किया है, ये हैं : कथानक, चरित्र चित्रण और परिवेश। ये तीनों तत्व कथात्मक विधाओं में समान रूप से महत्व रखते हैं लेकिन उपन्यास में निश्चय ही सबसे ज्यादा। ये तीनों तत्व एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। घटनाएँ बिना पात्रों के नहीं घट सकती और इन पात्रों के साथ जो कुछ भी घटित होता है या ये पात्र जो कुछ भी करते हैं, किसी देशकाल (परिवेश) में रहते हुए ही। परिवेश के बाहर पात्रों का अस्तित्व नहीं हो सकता और कथानक का निर्धारण वे परिस्थितियाँ करती हैं जिनसे पात्र घिरे होते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी कुछ परिस्थितियों द्वारा ही तय होता है। परिस्थितियों में व्यक्ति सक्रिय हस्तक्षेप करता है और यह हस्तक्षेप पूर्व निर्धारित नहीं होता और न ही उसकी पहले से सुनिश्चित कल्पना की जा सकती है।

1.2.1 कथानक का निर्धारण

उपन्यास के लिए कथानक का निर्धारण करने का कोई बना बनाया फार्मूला नहीं है। मनुष्य जीवन के किसी भी पक्ष को उपन्यास के कथानक का आधार बनाया जा सकता है। यहाँ मनुष्य से तात्पर्य सभी तरह के मनुष्य से है। किसी भी धर्म, जाति, लिंग, भाषा, क्षेत्र, नस्ल का व्यक्ति क्यों न हो और किसी भी काल से उसका संबंध क्यों न हो। आज का मनुष्य, उस दौर का मनुष्य जो बीत चुका है और आने वाले दौर के मनुष्य को भी उपन्यास की कथावस्तु का आधार बनाया जा सकता है। अतीत उपन्यास का प्रिय विषय रहा है। यही कारण है कि इतिहास आधारित उपन्यास की रचना सभी भाषाओं में हुई है। इसी तरह विज्ञान-कथाओं पर आधारित उपन्यास आमतौर पर भविष्य पर ही आधारित होते हैं। जार्ज आरवेल का उपन्यास '1984' भविष्य पर आधारित उपन्यास था। यह और बात है कि अब इस उपन्यास में चित्रित भविष्य पाठकों के लिए अतीत हो चुका है। वह उपन्यास को पढ़कर

और 1984 के समय की वास्तविक परिस्थितियों से तुलना कर यह जान सकता है कि जार्ज आरवेल की भविष्य कल्पना कितनी खरी उतरी। काल के संदर्भ में यह बात भी ध्यान देने की है कि वर्तमान दौर को अभिव्यक्त करने वाले उपन्यास भी दरअसल अतीत का ही चित्रण करते हैं। जब कोई लेखक अपने अनुभव को आधार बनाकर लिख रहा होता है तो इसका मतलब ही है कि वह उन अनुभवों को आधार बनाकर लिख रहा है जिसे उसने भोग लिया है। लेकिन भोगे हुए यथार्थ के आधार पर ही वह भविष्य का संकेत दे सकता है। इसी तरह अतीत का चित्रण करने वाला उपन्यास भी दरअसल उस वर्तमान की ही अभिव्यक्ति कर रहा होता है जिस वर्तमान का लेखक हिस्सा है और जिस वर्तमान के हिस्से के तौर पर वह अतीत की एक समझ बनाए हुए होता है।

काल के साथ ही परिवेश भी कथानक के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोई घटना किस रूप में घटित होगी यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वह कहाँ घटित हो रही है। परिवेश का तात्पर्य सिर्फ जगह नहीं है बल्कि उस स्थान की वे सारी विशेषताएँ जो उस परिवेश की अपनी पहचान बनाते हैं जिस परिवेश की अपनी परंपरा है और जो वहाँ से लोगों के संस्कारों और व्यवहारों में अपने ढंग से व्यक्त होता है। अपनी विशिष्ट पहचान रखने वाला परिवेश भी समाज में होने वाले बदलाव से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता इसलिए परिवेश में निरंतरता और परिवर्तनशीलता दोनों साथ-साथ विद्यमान रहती है। लेकिन उपन्यास में कोई भी काल और परिवेश क्यों न चित्रित हुआ हो, उनमें एकता के बहुत से सूत्र होते हैं। प्रत्येक समाज में कालगत भेद के बावजूद एक निरंतरता होती है और भिन्न-भिन्न समाजों में कालगत एकता भी होती है। यह बात उपन्यास विधा पर खासतौर पर लागू होती है क्योंकि पूंजीवादी समाजों में भूमंडलीकृत एकता की प्रक्रिया आरंभ से ही दिखाई देती रही है। एकता का तात्पर्य यह नहीं है कि अमरीकी समाज और भारतीय समाज आज एक से हैं बल्कि एकता इस रूप में कि अमरीका में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव भारतीय समाज पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उपन्यास की कथावस्तु का निर्धारण करते हुए लेखक को अपने समय और समाज की इस गतिशीलता को ज़रूर पहचानना होगा।

उपन्यास की कथावस्तु के निर्धारण के सवाल को प्रेमचंद ने दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके शब्दों में, "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है"। मानव चरित्र उपन्यास के केंद्र में होते हुए भी कथानक में किस चीज़ की प्रधानता है उसके अनुसार उपन्यास के श्रेणी-भेद किए जा सकते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस दृष्टि से तीन श्रेणियों की चर्चा की है : घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान और भाव-प्रधान। उपन्यास में घटनाओं का वर्णन ज़रूरी है लेकिन घटनाओं की प्रधानता से उपन्यास महान नहीं बनते। घटना-प्रधान उपन्यास कौतूहल प्रधान, रहस्य प्रधान, तिलिस्मी या जासूसी होते हैं। इस तरह के उपन्यास आमतौर पर मनबहलाव के लिए लिखे जाते हैं। घटना-प्रधान उपन्यासों में कथानक घटनाओं में ही निहित होता है। इस तरह के उपन्यासों पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं, "पुराने ढंग की कथाओं में बस प्लाट ही प्लाट होता था। उसमें रंग और रोगन की मात्रा न रहती थी, इसलिए वह चित्र इतना भड़कीला न होता था। आजकल पाँच सौ पृष्ठों के उपन्यास की कथा दस-पंक्तियों में ही समाप्त हो जाती है। लेकिन इन्हीं दस-पाँच पंक्तियों के सोचने में उपन्यासकार को जितना मनन और चिंतन करना पड़ता है, उतना सारा उपन्यास लिखने में भी नहीं करना पड़ता। वास्तव में प्लाट सोच लेने के बाद फिर लिखना बहुत आसान हो जाता है। लेकिन प्लाट सोचने के साथ ही चरित्रों की कल्पना भी करनी पड़ती है, जिनके द्वारा यह प्लाट प्रदर्शित किया जाए। इस तरह प्रेमचंद उपन्यास में घटनाओं को नहीं चरित्र को महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने प्लाटों के जितने श्रेणी भेद किए हैं उनके आधार पर भी यही सिद्ध होता है कि उपन्यास में वे चरित्र-चित्रण को विशेष महत्व देते थे। जहाँ तक भाव प्रधान उपन्यास की बात है उस पर टिप्पणी करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, "उनमें बहुत कुछ पुरानी कथा-आख्यायिकाओं के गुण हैं। उनमें भाषा की मनोहारिता, अलंकार-योजना

पद-लालित्य और भावावेग इतनी अधिक मात्रा में हैं कि उन्हें गद्य-काव्य कहना ज्यादा उचित होगा"। इस तरह के उपन्यास आमतौर पर कम ही लिखे जाते हैं और इन्हें भी श्रेष्ठ स्तर का नहीं माना जाता।

उपन्यास के कथानक का निर्धारण दरअसल यथार्थ के आधार पर ही होता है लेकिन उस यथार्थ का संबंध लेखक के समय और समाज से हो चाहे प्रत्यक्ष रूप में या परोक्ष रूप में। इसी तरह यह यथार्थ सदैव चरित्रों के माध्यम से ही सामने आता है और तीसरा पहलू कथानक के निर्धारण का यह है कि लेखक किसी न किसी मकसद से एक खास तरह का कथानक चुनता है। यह मकसद ही उपन्यास की केंद्रीय कुंजी है। सिर्फ मनबहलाव या कला के लिए जैसे सिद्धांतों से प्रेरित होकर महान् उपन्यास की रचना नहीं हो सकती। मकसद किसी भी तरह का हो सकता है, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक। उपन्यास के संदर्भ में उद्देश्य की चर्चा हम आगे विस्तार से करेंगे इसलिए यह प्रसंग यहाँ ही समाप्त करते हैं।

उपन्यासकार का उद्देश्य कुछ और हो सकता है लेकिन उस उपन्यास में चित्रित पात्रों का उद्देश्य कुछ और हो सकता है। उनके अलग-अलग उद्देश्य आपस में टकराते हैं और इस टकराहट से जो द्वंद्व और संघर्ष पैदा होता है वह कथा के विकास के लिए ज़रूरी है। बिना तनाव, द्वंद्व और संघर्ष के कथा में न तो रोचकता आती है और न ही उसमें विश्वसनीयता पैदा होती है।

1.2.2 कथानक का विकास

उपन्यास का कथानक का विकास किस तरह किया जाए यह सवाल कम महत्वपूर्ण नहीं है। घटना प्रधाना उपन्यासों में कथानक का विकास प्रायः उसी विधि से किया जाता है जिसकी चर्चा नाटक के संदर्भ में की जाती रही है। यानी कथा का आरंभ, विकास और अंत। घटना-प्रधान उपन्यासों में कौतूहल का तत्व पाठकों के आकर्षण का मुख्य केंद्र होता है इसलिए कथा का विकास इस तरह किया जाता है कि पाठक के मन में लगातार यह जिज्ञासा बनी रहे कि आगे क्या होगा। आर्थर कानन डायल के उपन्यासों में या 'चंद्रकांता संतति' जैसे उपन्यासों में यह उत्सुकता ही पाठकों को पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। लेकिन चरित्र प्रधान उपन्यासों में या जिसमें जीवन यथार्थ का चित्रण प्रधान होता है वहाँ यह कौतूहल घटनाओं में निहित नहीं होता। कथा का विकास भी घटनाओं के आधार पर नहीं होता बल्कि चरित्रों के मनोविज्ञान, परिस्थितियों के दबाव, लेखकीय उद्देश्य से प्रेरित होता है। उपन्यास लिखते हुए लेखक के मन में इनको लेकर अनवरत संघर्ष चलता रहता है। वह इनमें पारस्पकिरता का संबंध खोजना चाहता है। लेकिन ऐसा करने में वह हमेशा सफल नहीं होता। बहुत सी बातें उसके हाथ से निकल जाती हैं। सभी लेखक इनमें संतुलन नहीं रख पाते। समाज के एक ही हिस्से से निकले हुए चरित्र एक सी परिस्थितियों में एक सा व्यवहार नहीं करते। एक ही माहौल में पलन वाले दो भाई एक से चरित्र के नहीं होते। बहुत सी अन्य बातें उनके व्यवहार को निर्धारित करने वाली होती है। देखना यह होता है कि लेखक जिस रूप में भी कथा का विकास करे वह स्वाभाविक लगनी चाहिए। स्वाभाविकता का तात्पर्य यह नहीं है कि लेखक ऐसा कुछ भी न लिखे जो काल्पनिक हो। कल्पना के बिना तो उपन्यास की रचना संभव ही नहीं है। इसके विपरीत ज़रूरी यह है कि उपन्यास में काल्पनिक घटना भी वैचारिक तार्किकता और भावात्मक औचित्य के आधार पर स्वाभाविक लगनी चाहिए। उपन्यासों में जादुई यथार्थवाद की उपयोगिता इसी संदर्भ में समझी जा सकती है।

1.2.3 मुख्य और अवांतर कथाएँ

प्रत्येक उपन्यास मे एक मुख्य या मूल कथा होती है और उसके साथ कई अवांतर कथाएँ होती हैं। मसलन, 'गोदान' में मुख्य कथा होरी की है लेकिन इसके साथ ही रायसाहब, मालती-मेहता, खन्ना-गोविंदी, दातादीन-मातादीन आदि कई पात्रों की कथाएँ भी चलती रहती हैं। इसी तरह मूल कथा और अवांतर कथाओं को हम सभी उपन्यासों में पहचान सकते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार उपन्यासकार मूलकथा को उज्ज्वल रूप में प्रत्यक्ष कराने के लिए अवांतर घटनाओं की सृष्टि करता है। उनके अनुसार, अवांतर कथाएँ दो तरीके से मूलकथा को उज्ज्वल और गतिशील बनाती हैं–एक, सहायक के रूप में, और दो, विरोधी के रूप में। 'गोदान' में होरी के अलावा अन्य किसानों की कथाएँ मूलकथा के सहायक के रूप में आती हैं जबकि रायसाहब, मिल मालिक खन्ना आदि की कथाएँ विरोधी के रूप में आती हैं ताकि होरी के जीवन के यथार्थ को उसकी पूर्णता में समझा जा सके। मुख्य और अवांतर कथाओं में आपस में सुसंगति होना ज़रूरी है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि मुख्य कथाएँ और अवांतर कथाएँ समानांतर चलती रहे और उनके बीच किसी तरह की संगति या अंतःसंबद्ध न दिखाई दे। द्विवेदी जी की नज़र में उनमें औचित्य का संबंध होना जरूरी है। स्वयं उनके शब्दों में, "घटनागत औचित्य का तक़ाजा है कि अवांतर घटनाएँ इस प्रकार मूल घटना के साथ बुन दी जाएँ कि पाठक को कहीं भी संदेह न होने पावे कि वह दूसरी कथा भी पढ़ रहा है"!

1.2.4 स्वाभाविकता और विश्वसनीयता

उपन्यास की कथा में स्वाभाविकता और विश्वसनीयता का होना ज़रूरी है। स्वाभाविकता का तात्पर्य यह नहीं है कि जीवन में जैसा घटित होता है वैसा ही उपन्यास में घटित हो। स्वाभाविकता का तात्पर्य यह है कि उपन्यास में जो कुछ चित्रित हो वह विश्वसनीय लगे। उन परिस्थितियों में ठीक ऐसा ही हो सकता था या ऐसा भी हो सकता था। किसी भी पात्र का जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से उपन्यास में विकास किया गया है उसका समस्त आचरण उसी के अनुरूप होना चाहिए। इसी तरह से जिस तरह की परिस्थितियाँ उपन्यास में बताई गई हैं घटनाएँ उसी के अनुरूप घटनी चाहिए। लेकिन दोनों ही मामले में इस बात को समझने की ज़रूरत है कि एक ही परिस्थिति में लोग तरह-तरह से प्रतिक्रिया करते हैं। यह बहुत कुछ उनकी सामूहिक मानसिकता और वैयक्तिक प्रवृत्तियों पर भी निर्भर करता है।

स्वाभाविकता का संबंध औचित्य से भी है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "औचित्य उपन्यास की जान है। औचित्य का अभाव सर्वत्र खटकता है, पर उपन्यास में उसका अभाव तो बहुत अधिक खटकने वाला होता है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में, उनकी बातचीत में, उनके वस्त्रालंकारों के वर्णन में, उनकी रीति-नीति के उपस्थापन में सर्वत्र औचित्य की आवश्यकता होती है। सर्वत्र यह आवश्यक है कि उपन्यासकार पूरी ईमानदारी और सच्चाई से काम ले। इन सब बातों में देश, काल और पात्र के ज्ञान की आवश्यकता रहती है"। द्विवेदीजी ने इसके कई उदाहरण भी दिए हैं। मसलन, एक उपन्यासकार ने पठानकाल का वर्णन करते हुए अमरूद के पेड़ों का वर्णन किया जबकि अमरूद को हिंदुस्तान में पहली बार लाने का श्रेय पुर्तगालियों को है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस तरह एक कवि जो कविता में छंद से मुक्ति चाहता है उसे छंदों का प्रयोग करने की अपनी क्षमता पूरी तरह से विकसित करनी होगी तब ही वह छंद मुक्त कविता लिख सकेगा। यदि उसे छंद की समझ नहीं है तो वह कविता के नाम पर गद्य ही लिख रहा होगा। इसी तरह उपन्यास में जीवन यथार्थ की अनुकृति से मुक्त होने के लिए उसे यथार्थ की अधिक से अधिक जानकारी हासिल करनी होगी। मानव मन की जटिलताओं को समझना होगा। भिन्न-भिन्न तरह के समाजों और उनकी गतिशीलताओं को समझना होगा।

1.2.5 कथानक में नवीनता

स्वाभाविकता और विश्वसनीयता यदि उपन्यास में ज़रूरी है तो नवीनता भी उतनी ही ज़रूरी है। यदि उपन्यास में वही सब कुछ दुबारा प्रस्तुत किया गया है जो अपने आसपास रोज़ाना घटित होता हुआ देखते हैं तो फिर हम उपन्यास को पढ़ेंगे ही क्यों। नवीनता का मतलब वास्तविकता का विरोधी होना नहीं है। वास्तविक को ही नए ढंग से पेश किया जा सकता है। पहले से ही जानी-पहचानी बात को उपन्यासकार इस ढंग से प्रस्तुत कर सकता है कि पढ़ते हुए हमें ऐसा लगे जैसे हम बिलकुल नयी चीज़ के बारे मे पढ़ रहे हैं या जो पहले से जानते हैं उसे इस नज़रिए से भी देखा जा सकता है। उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें लेखक

घटनाओं, पात्रों और परिस्थितियों को तरह-तरह से प्रस्तुत कर सकता है। वह पात्रों के आंतरिक जीवन में झांक सकता है। वह यह बता सकता है कि इस क्षण में पात्र क्या सोच रहा है या वह इस या उस परिस्थिति में किस तरह प्रतिक्रिया करेगा। इसी तरह वह एक ही क्षण में घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं को प्रस्तुत करते हुए हमें यथार्थ की संपूर्णता का बोध करा सकता है। सिनेमा जो इस तकनीकी दौर की नवीनतम उपलब्धि है और जिसमें जीवन की वास्वतिकताओं को यथावत दिखाने की अद्‌भुत क्षमता है फिर भी यह उपन्यास ही है जो 'मानव का कहीं अधिक पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकता है तथा उस महत्वपूर्ण आंतरिक जीवन की झांकी दिखा सकता है जो कि मानव के निरे नाटकीय क्रियाशील रूप से भिन्न होती है और जो सिनेमा की क्षमता से बाहर की चीज़ है' (रैल्फ फॉक्स)।

1.3 उपन्यास : पात्रों का विकास

कथावस्तु के बाद उपन्यास में सबसे महत्वपूर्ण होते हैं, पात्र। ऐसे किसी कथानक की कल्पना नहीं की जा सकती जो बिना पात्रों के संभव हो। जैसा कि पहले प्रेमचंद के उस कथन को हमने उद्धृत किया था कि वे उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझते हैं। मानव के चरित्र का चित्र मानव के बिना कैसे संभव है। इसलिए विभिन्न पात्रों के क्रियाकलाप के द्वारा ही उपन्यास की कथा गतिशील होती है। पात्र जो कुछ करते हैं, जो कुछ सोचते हैं और उनका आपस में किस तरह का रिश्ता है उससे हमारे सामने उनका चरित्र ही नहीं उभरता बल्कि कथा का विकास भी होता है। पात्र उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली नहीं होते। वे अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति, संस्कार, विचार, व्यक्तिगत आग्रह और दुराग्रह के अनुसार काम करते हैं। यदि पात्र अपनी सामाजिक और मानसिक बुनावट के अनुसार काम नहीं करते तो वे यांत्रिक लगने लगते हैं और यांत्रिक पात्र कभी प्रभाव पैदा नहीं कर सकते। उपन्यास में पात्रों का किस तरह चित्रण होना चाहिए, प्रेमचंद के विचारों को उद्धृत करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं, 'उपन्यासकार के पात्रों की सजीवता और स्वाभाविकता सदा अपेक्षित है। पाठकों को उनके संसर्ग में आते समय यह विश्वास बना रहना चाहिए कि वे सत्य है, कपोल-कल्पित नहीं। प्रेमचंद को 'कल्पना के गढ़े हुए आदमियों में' विश्वास नहीं था। उन्होंने लिखा है कि इन गढ़े हुए पात्रों के कार्यों और विचारों से हम प्रभावित नहीं होते। हमें इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि लेखक ने जो सृष्टि की है वह प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर की गई है, या अपने पात्रों की जबान से वह खुद बोल रहा है'।

1.3.1 कथा विकास में भूमिका

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि उपन्यास में पात्रों के माध्यम से ही कथा का विकास होता है। उपन्यास के पात्र नियति के हाथ की कठपुतली नहीं होते। यह सही है कि घटनाओं पर पात्रों का पूरा नियंत्रण नहीं होता लेकिन प्रत्येक पात्र अपने ढंग से स्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया ही व्यक्त नहीं करता बल्कि उसमें हस्तक्षेप भी करता है और उनके हस्तक्षेप से ही कथा में संघर्ष और पात्रों में द्वंद्व की स्थिति पैदा होती है। बिना संघर्ष और द्वंद्व के उपन्यास की कथा का विकास नहीं होता। एक पात्र उपन्यास के आरंभ से अंत तक जिस तरह का व्यवहार करता है उससे उसका नज़रिया, उसकी प्रवृत्ति, उसकी मानसिकता और उसके संस्कारों का पता चलता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह शुरू से अंत तक एक-सा ही बना रहता है। उसके व्यवहार में ही नहीं उसकी प्रवृत्तियों और नज़रिए में भी अंतर आता है। इस प्रकार पात्र में होने वाले परिवर्तन कथा के विकास को दिशा देने में सहायक होते हैं।

1.3.2 मुख्य पात्र और गौण पात्र

उपन्यास में पात्रों की संख्या कहानी की तुलना में बहुत ज्यादा होती है। इसलिए यह ज़रूरी है कि वह इन पात्रों के बीच संतुलन बनाए रखे। उसे यह देखना होता है कि उपन्यास के मुख्य पात्र और गौण पात्रों के बीच तालमेल रहे। लेकिन सभी पात्रों की कथा के विकास में

भूमिका होनी चाहिए। कोई पात्र ऐसा नहीं होना चाहिए कि वे सिर्फ खानापूर्ति के लिए हो। मुख्य पात्र या केंद्रीय पात्र कथा के केंद्र में ही रहना चाहिए। मसलन, 'गोदान' में होरी कथा के केंद्र में आरंभ से अंत तक बना रहता है या 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में बाणभट्ट के साथ ही साथ कथा चलती रहती है। यहाँ तक कि ऐसे उपन्यास जो चरित्र प्रधान नहीं कहे जा सकते वहाँ भी केंद्रीय पात्र ज़रूर होता है और उसके इर्द-गिर्द कथा का विकास होता है। उपन्यास में केंद्रीय पात्र हो या गौण पात्र उनका चरित्र चित्रण उपन्यासकार को पूरे मनोयोग से करना चाहिए। यदि वह पात्र का चित्रण चलताऊ ढंग से करता है या यह ध्यान नहीं देता कि उसको कैसा रंग और आकार दिया जाना है तो बहुत मुमकिन है कि उनमें चरित्रगत 'कंसिस्टेंसी' बनाए रखने में वह कामयाब न हो सके। इससे उपन्यास का कुल प्रभाव क्षीण होता है। उपन्यास का प्रत्येक पात्र उपन्यास की संरचना और प्रभावान्विति को निर्धारित करने में भूमिका अवश्य निभाता है। उपन्यास के पूरे ढाँचे में उनकी जगह अवश्य होती है। प्रत्येक पात्र दूसरे पात्रों के साथ अपने संबंधों में गतिशील रहता है। उनकी सापेक्ष स्वायत्तता होती है। 'गोदान' में धनिया होरी के साथ अपने संबंधों में तो व्याख्यायित होती ही है। उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान भी है। होरी और धनिया प्रायः प्रत्येक घटना और स्थिति के संयुक्त भोक्ता हैं। लेकिन दोनों की प्रतिक्रियाएँ एक-सी नहीं होती। उनकी चरित्रगत भिन्नता उनके परस्पर संबंधों को ही तय नहीं करती बल्कि दूसरों पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। इसके बावजूद उन दोनों की चारित्रिक विशेषताएँ मिलकर ही किसान चेतना का निर्माण करते हैं।

1.3.3 चरित्र चित्रण की विभिन्न पद्धतियाँ

उपन्यास में कथा के विकास के साथ चरित्रों का विकास भी होता है। उपन्यास जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, कथा जैसे-जैसे खुलती जाती है, उपन्यास के विभिन्न पात्र भी अपनी चारित्रिक विशेषताओं के साथ सामने आते जाते हैं। उपन्यास में पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ कई तरह से सामने आती हैं। पात्रों द्वारा जो कुछ किया जाता है, वे दूसरों के साथ जैसा व्यवहार करते हैं, जैसी भाषा बोलते हैं, जैसा उनका रहन-सहन है, दूसरे पात्र के बारे में जो कहते हैं या जैसा सोचते हैं, या वे स्वयं दूसरों के बारे में जैसा कहते या सोचते हैं। जाहिर है कि पात्रों के बारे में उपन्यासकार को स्वयं न बताना पड़े। उपन्यासकार यदि पात्रों की चरित्रगत विशेषताएँ स्वयं बताता है, तो बहुत विश्वसनीय तरीका नहीं है। हालांकि प्रेमचंद जैसे महान् उपन्यासकार भी अपने उपन्यासों में यह पद्धति अपनाते हैं। 'गोदान' में मालती के बारे में उपन्यास में की गई टिप्पणी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। प्रेमचंद के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की प्रायः सभी पद्धतियों का इस्तेमाल किया गया है। चरित्र-चित्रण की कौन-कौन सी पद्धतियाँ हो सकती हैं, यह तय करना बहुत मुश्किल काम है। फिर भी कुछ पद्धतियों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

व्यक्ति बनाम सामाजिक

चरित्र चित्रण की यह बहु प्रचलित पद्धति है। उपन्यास में चित्रित किए गए पात्र व्यक्ति रूप में ही चर्चित होते हैं। लेकिन यदि उनमें अपने वर्ग की विशेषताओं की प्रधानता रहती है, उनमें वैयक्तिक विशेषताएँ गौण रूप में ही सामने आती हैं तो उस चरित्र या पात्र को सामाजिक चरित्र या पात्र कहेंगे। ऐसे पात्रों को टाइप पात्र कहने का रिवाज है। टाइप यानी प्रकार। यानी समाज के किसी वर्ग, समुदाय या प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र। जैसे गोदान का होरी टाइप पात्र माना जाता है। निम्नवर्गीय किसान का प्रतिनिधि पात्र। उसकी चरित्रगत विशेषताएँ कमोबेश वही हैं जो इस वर्ग के किसान की होती हैं। लेकिन 'शेखर : एक जीवनी' का शेखर टाइप पात्र नहीं है क्योंकि वह मध्यवर्ग का प्रतिनिधि पात्र नहीं है। उसकी विशेषताएँ मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करती। यहाँ यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि कोई भी पात्र ऐसा नहीं होता जिसमें अपने वर्ग की विशेषताएँ न हों और न ही कोई सामाजिक पात्र तब तक जीवंत बन सकता है जब तक कि उसमें अपनी निजी विशिष्टता न हो। होरी टाइप होकर भी प्रभावशाली इसीलिए है कि वह एक जीवंत पात्र है और जीवंत

इसलिए कि उसमें अपनी विशेषताएँ हैं, अपनी पहचान है, यही बात धनिया, गोबर आदि पात्रों के बारे में भी सही है।

अज्ञेय का मानना है कि व्यक्ति और परिस्थिति के संघर्ष के अध्ययन ने मानव-चरित्र के उपन्यासों को जन्म दिया। उनके अनुसार उपन्यास में समाज में निरंतर चलने वाले संघर्षों की अभिव्यक्ति होती है। इस संघर्ष के विभिन्न स्तरों ने ही व्यक्ति चरित्र के उपन्यासों की सृष्टि की। मानव-चरित्र और व्यक्ति-चरित्र के उपन्यासों की तुलना करते हुए वे लिखते हैं, "मानव-चरित्र और व्यक्ति-चरित्र में यह अंतर है कि मानव चरित्र में मानव-मात्र की चारित्रिक विशेषता पर बल दिया जाता है जबकि व्यक्ति-चरित्र में केवल उस एक और अद्वितीय व्यक्ति पर ध्यान केंद्रित होता है जिसे हम दूसरे मानवों से पृथक करके चुनते हैं। अर्थात् पहले में हम मानवेतर जीव से मानव प्राणी को पृथक करके उसकी मानवता को परिस्थिति के परिपार्श्व में देखते हैं, दूसरे में हम एक व्यक्ति मानव को इतर मानव-व्यक्तियों से पृथक करके उसके व्यक्तित्व को मानव-समाज के परिपार्श्व में देखते हैं।"

प्रतिनिधि और प्रतीक

चरित्र चित्रण की दूसरी पद्धति को पहले के संदर्भ मे समझने का प्रयत्न करें। प्रतिनिधि चरित्र से मतलब टाइप चरित्र से है जिसका उल्लेख हम इससे पहले कर चुके हैं। उपन्यासों के संदर्भ में टाइप्ड चरित्रों की बात कुछ इस तरह की जाती है, मानो टाइप्ड होना लेखकीय दोष है। दरअसल कोई भी पात्र अपने वर्ग समुदाय और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों में टाइप ही होता है। किसी ऐसे चरित्र का निर्माण मुमकिन नहीं है, जिसमें प्रतिनिधित्व की संभावना न हो। जो अपना प्रतिनिधि खुद है, वैसा निराला, विलक्षण चरित्र रचना न संभव है और न ज़रूरी। उपन्यास के पात्र प्रतिनिधि होकर ही प्रासंगिक और कालजयी बनते हैं। पात्रों के संदर्भ में प्रातिनिधिकता की बात जब की जाती है तो तात्पर्य यह नहीं होता कि वह अपनी समस्त चारित्रिक विशेषताओं के साथ अपने वर्ग, समाज या प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व कर रहा है। प्रातिनिधिकता से तात्पर्य सिर्फ इतना है कि अपनी मूल पहचान में वह पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। शेखर अपनी सारी विशिष्टताओं के साथ मध्यवर्गीय पात्र ही है और इस अर्थ में वह होरी से अपनी भिन्नता स्थापित करता है।

प्रातिनिधिकता का दूसरा पहलू देशकाल सापेक्षता से जुड़ा है। कोई भी चरित्र किसी खास स्थान और काल की रचना होता है। यह बात समसामयिक कथानकों पर तो लागू होती ही है, ऐसे उपन्यासों पर भी लागू होती है, जिसमें सुदूर अतीत का वर्णन किया गया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का बाणभट्ट यदि 'कादंबरी' के रचयिता महाकवि बाण के जीवन से प्रेरित चरित्र है, तो उससे भी ज्यादा बड़ी सच्चाई यह है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में जिस बाण की रचना की है, वह उनके अपने समय की चिंताओं से, अपने समय की सर्जनात्मक ज़रूरतों से उपजा है, और यही वजह है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का बाण हमे प्रासंगिक और जीवंत लगता है।

प्रातिनिधिकता का शिखर प्रतीकात्मकता में प्रतिबिंबित होता है। उपन्यास का ऐसा पात्र जो अपनी प्रातिनिधिकता में ऐसी विशिष्टता हासिल कर लेता है कि वह किसी खास प्रवृत्ति का प्रतीक बन जाता है। मसलन, प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' का नायक सूरदास। सूरदास जो उपन्यास के आरंभ में एक मामूली अंधा भिखारी है, धीरे-धीरे अपनी संघर्षधर्मिता के बल पर, अपने अहिंसात्मक और दृढ़ निश्चयी सत्याग्रह पर, वह गांधी का प्रतीक बन जाता है। वह उस दौर के राष्ट्रीय आंदोलन का प्रतीक बन जाता है। पात्र में प्रतीकात्मकता की सृष्टि यहाँ प्रेमचंद ने जानते-समझते हुए नहीं की है, बल्कि उपन्यास में सूरदास के चरित्र का जिस तरह विकास हुआ है, उसी के कारण वह प्रतीकात्मकता का दर्जा हासिल कर लेता है।

लेकिन कई उपन्यासों में उपन्यासकार पात्रों को प्रतीकों के रूप में ही रचता है। उदाहरण के लिए अज्ञेय के उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' के तीनों पात्र योके सेल्मा और जगन्नाथ दरअसल तीन अलग-अलग प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। प्रतीकात्मक उपन्यासो में उपन्यासकार पात्र का विकास करते हुए उसकी मानवीकृत स्वाभाविकता की बजाए प्रवृत्तिगत स्वाभाविकता की तरफ ज्यादा ध्यान देता है। ऐसे में पात्र रचनाकार के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं और उनमें सहजता और स्वाभाविकता नहीं रह पाती।

अंतर और बाह्य व्यक्तित्व (संघर्ष और द्वंद्व)

उपन्यास के पात्र चाहे सामाजिक हों या व्यक्तिपरक, प्रातिनिधिक हो या प्रतीकात्मक, उनका विकास संघर्ष के माध्यम से ही होता है। ऐसा कोई पात्र जिसके जीवन में कोई तनाव नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है, सुख, संपन्नता और शांति है, तो उसके जीवन में न कोई आकर्षण होगा न कोई जीवंतता। प्रत्येक पात्र के जीवन में ऐसा कुछ ज़रूर होता है, जिसके कारण वह अपने जीवन से असंतुष्ट और बेचैन होता है। इस असंतोष और बेचैनी का कारण बाहरी भी हो सकता है और आंतरिक भी, वास्तविक भी हो सकता है और काल्पनिक भी। लेकिन किसी भी स्थिति में वह पात्र को कुछ-न-कुछ करने के लिए बाध्य करता है। उसके द्वारा कुछ किया जाना अनायास नहीं होता। कोई भी कदम उठाने से पहले वह मानसिक द्वंद्व से गुजरता है। 'करूँ या न करूँ', 'करूँ तो क्या करूँ', 'क्या ऐसा या वैसा करना मेरे लिए उचित होगा', 'इन सबका परिणाम क्या होगा' इस तरह के द्वंद्व से गुजरता हुआ वह निर्णय पर पहुँचता है और उसकी क्रियाशीलता, नए तनावों और नए संघर्षों की सृष्टि करती है। यहाँ यह भी ध्यान देना ज़रूरी है कि प्रत्येक पात्र का सोच और कर्म उसकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, धारणाओं और पूर्वाग्रहों पर निर्भर करती है। ये धारणाएँ काफी उलझे हुए रूप में उसके मानस में स्थित होती है और उसकी क्रियाशीलता के खास क्षण में उसके निर्णय को ये किस रूप में प्रभावित करेंगी, यह जानना मुश्किल है क्योंकि यह एक जटिल प्रक्रिया है। उपन्यास में पात्रों के चरित्र चित्रण में इस बाहरी और आंतरिक संघर्ष की गहरी भूमिका होती है। पात्रों में स्वाभाविकता प्रासंगिकता और जीवंतता की सृष्टि उनके बाहरी और आंतरिक संघर्षों के चित्रण के माध्यम से ही उभरकर सामने आती है।

चरित्र-चित्रण की इन उपर्युक्त पद्धतियों के अलावा और भी कई तरीके हो सकते हैं। लेकिन उपन्यास रचना में पात्रों की भूमिका केंद्रीय होती है, इसलिए उपन्यासकार को पात्रों के चित्रण में खास तरह की प्रवीणता लाना ज़रूरी है। एक स्तर पर उपन्यासकार को अपने पात्रों पर पूरा नियंत्रण होना चाहिए तो दूसरे स्तर पर उपन्यास के पात्र, उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली नहीं होने चाहिए। नियंत्रण से तात्पर्य चरित्र-चित्रण की लेखकीय क्षमता से है। पात्र स्वाभाविक रूप से विकसित हों, लेकिन उनका चित्रण करते हुए वह उसको संभाल सके, यह क्षमता उसमें होनी चाहिए। कई बार उपन्यासकार अपने पात्र को ठीक से संभाल नहीं पाता और वह अपने ही अंतर्द्वंद्वों का शिकार होकर पतनशील बनने के बजाए, कई बार लेखक के अंतर्विरोधों का शिकार होकर चरित्र-च्युत हो जाता है। यहाँ पात्र की सीमा नहीं उजागर होती बल्कि लेखक की रचनात्मक क्षमता की सीमा उजागर होती है।

1.4 औपन्यासिक संरचना

उपन्यास की संरचना किस तरह की हो, इसे निर्धारित करने वाले कई तत्व हैं। उपन्यास की कथा का सबंध किससे है और उसकी रचना किस रूप में हुई है, इससे उसकी संरचना भी तय होती है। उपन्यास की कथा का संबध किसी स्थान विशेष से ज़रूर होगा चाहे उस स्थान का फैलाव कितना ही अधिक या कम क्यों न हो किसी खास समय से संबद्ध होगा चाहे समय का विस्तार भी कितना ही क्यो न हो और कथा की प्रस्तुति का रूप चाहे जो भी **वर्णन के रूप में (Narration) विवेचन** के रूप में (description) प्रतिनिधि के रूप में

(Representation), या प्रतीकात्मक रूप में (symbolisation) हो सकता है। उपन्यास की संरचना का निरंतर विकास होता है। यह विकास उपन्यास विधा के विकास के साथ-साथ यथार्थ के साथ उसके संबंधों और लेखक की जीवन-दृष्टि और रचनात्मक क्षमता पर भी निर्भर करता है। औपन्यासिक संरचना के इन विविध पहलुओं पर इकाई के इस भाग में विचार किया गया है।

1.4.1 स्थानिक संरचना

उपन्यास का संबंध किसी स्थान विशेष से ज़रूर होता है। स्थान यानी वह क्षेत्र जिसमें उपन्यास मे वर्णित घटनाएँ घटती हैं और पात्र क्रियाशील होते हैं। उनके पारस्परिक संबंधें और संघर्षों की भूमि होती है। स्थान की अपनी विशिष्ट पहचान होती है। स्थान का अपना चरित्र होता है। वह आरंभ से अंत तक एक-सा नहीं रहता। उपन्यासों में घटनाएँ अलग-अलग स्थानों पर घटती हैं। एक ही उपन्यास में घटनाएँ अलग-अलग स्थान पर घटती हैं। 'गोदान' में होरी की झोंपड़ी और रायसाहब की हवेली का अंतर महत्वपूर्ण है। 'रंगभूमि' में सूरदास जिस इलाके में रहता है, वह जगह जॉन सेवक और प्रभु सेवक से बहुत अलग है। यही नहीं स्थान की अपनी भाषा, अपनी परंपरा, अपना रंग और अपना मिज़ाज़ होता है। कई उपन्यासकार स्थान की विशिष्टता को कथा के केंद्र में रखते हैं, जैसे आंचलिक उपन्यासों में। मैला आँचल' में रेणु ने मिथिलांचल की विशिष्टता को कथा के केंद्र में रख दिया है। यहाँ स्थान ही कथा का नायक है, उसका जीवन ही कथा का आधार है जबकि प्रेमचंद के यहाँ स्थान मूल कथा में जीवंत रूप में आता है, लेकिन वह कथा का नायक नही सहायक है।

स्थान भी कई रूपों में उपन्यास में आता है। कहीं वह क्षेत्र विशेष के रूप में, कहीं समुदाय विशेष के रूप में तो कहीं देश विशेष के रूप में। एक ही स्थान एक के लिए महज़ ज़मीन का टुकड़ा है, दूसरे के लिए जीवन मरण का प्रश्न बन जाता है। 'रंगभूमि' में सूरदास की चार एकड़ ज़मीन को हासिल करने क लिए सारे षड्यंत्र होते हैं। सूरदास को इस ज़मीन से कोई आमदनी नहीं होती, उसका संसार में कोई नहीं कि वह उस ज़मीन की वसीयत कर जाए फिर भी वह उस ज़मीन के लिए आखरी दम तक लड़ता है क्योंकि उसका मानना हे कि ज़मीन के उस टुकड़े पर सिग्रेट का कारखाना खोलने से उस क्षेत्र के लोगों के जीवन पर संकट के बादल छा जाएँगे। वह अकेले अपने बल पर बहुत बड़ा आंदोलन खड़ा कर देता है।

स्थान विशेष में रहने वाले लोगों का उससे रिश्ता एक-सा नहीं होता। लोग अपने वर्ग, जाति, समुदाय की पहचान और हितों के अनुसार भी व्यवहार करते हैं। प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' के जोखू की तरह दलित अपनी ही ज़मीन से निर्वासित की तरह जीने को विवश होते हैं। एक ही गाँव में रहते हुए उन्हें अछूत बनकर जीना पड़ता है। 'धरती धन न अपना, ऐसे ही जीवनानुभवों से निकला उपन्यास हैं। ग्राम्य जीवन से जुड़े उपन्यासों में स्थान की अहमियत शहरी जीवन पर आधारित उपन्यासों की तुलना में ज्यादा होती है। शहर का व्यक्ति अपनी ज़मीन से उतना नहीं जुड़ा होता जितना कि ग्रामीण व्यक्ति। लेकिन अपनी ज़मीन से निर्वासित भी ग्रामीण व्यक्ति को ही ज्यादा होना पड़ता है। निर्वासन इसी कारण उपन्यास का एक महत्वपूर्ण विषय है। 'गोदान' में होरी का अपनी ज़मीन से निर्वासन होता है और 'झूठा सच' में पात्रों का अपने देश से। निर्वासन की पीड़ा दोनों जगह हैं और इसी कारण शायद ये महाकाव्यात्मक उपन्यास हैं।

1.4.2 कालिक संरचना

औपन्यासिक संरचना में काल की भूमिका स्थान से कम महत्वपूर्ण नहीं होती। काल की प्रतिध्वनियाँ प्रत्येक उपन्यास में सुनी जा सकती है। काल अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनो रूपों में अपने को अभिव्यक्त करता है। विचार करें तो उपन्यास में सदैव अतीत की ही अभिव्यक्ति होती है। अतीत तो अतीत के रूप में व्यक्त होता ही है, वर्तमान भी उपन्यास में

व्यक्त होकर अतीत बन जाता है। ऐसे उपन्यास जो भविष्योन्मुखी होते हैं, वहाँ भी लेखकीय अनुभव और दृष्टि बीते हुए कल से ही निःसृत होती है। लेकिन उपन्यासकार अतीत का वर्णन करते हुए भी उपन्यास में अपनी दृष्टि भविष्य की ओर उन्मुख रखता है। बाणभट्ट की आत्मकथा दिव्या अमिता जैसे अतीत आधारित उपन्यास में व्यक्त यथार्थ के विवरण भले ही आज से सैकड़ों साल पहले की अवधि से संबद्ध क्यों न हो, लेखक की चिंताएँ जिनसे ये उपन्यास उपजे हैं, वर्तमान की हैं।

वर्तमान चिंताओं से प्रेरित उपन्यास में लेखक इस समझ के साथ प्रवृत्त होता है कि अतीत से सबक लेते हुए वह भविष्य को आज से बेहतर बनाने का प्रयत्न करे। इसलिए अतीत का चित्रण करते हुए भी उपन्यासकार की दृष्टि भविष्य की तरफ ही लगी होती है। यही उस रचना को महान् बनाती है।

उपन्यास में सामान्य अर्थ में काल के जिस खंड का भी चित्रण क्यों न हो, उसको वास्तविक और प्रामाणिक रूप देना ज़रूरी होता है। ऐसा करना आसान नहीं होता। अतीत जितना दूर होगा, हमारा उसके बारे में ज्ञान उतना ही कम होगा। कम ज्ञान के आधार पर हम अतीत को प्रामाणिक ढंग से चित्रित नहीं कर सकते इसके लिए कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। दरअसल यथार्थ और कल्पना के संयोजन से ही उपन्यास की रचना संभव है। वर्तमान का चित्रण भी कल्पना के बिना संभव नहीं है। कल्पना का तात्पर्य यह नहीं है कि लेखक को कुछ भी लिखने की छूट मिल जाती है। कल्पना का तात्पर्य सिर्फ यह है कि अतीत अधिक प्रामाणिक रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित हो। भले ही घटनाएँ ठीक उसी रूप में न हुई हों, ठीक वे ही पात्र उस काल में न रहे हों लेकिन जिस काल का वर्णन उपन्यास में किया गया है, उस काल में वैसा घटित होना, वैसे चरित्रों का मौजूद होना, स्वाभाविक प्रतीक हो, पाठकों को पढ़ते हुए अविश्वसनीय न लगे।

उपन्यास लिखते हुए लेखक उपन्यास में काल विशेष को रचना में बांध लेता है। जैसे 'गोदान' में स्वतंत्रता से पहले का भारतीय गाँव है। आज के गाँव इनसे काफी भिन्न हैं, लेकिन इस भिन्नता को हम 'गोदान' के संदर्भ में आसानी से समझ सकते हैं। यही बात सामाजिक संरचना की है और स्त्री-पुरुष संबंधों की। 'निर्मला' की कहानी को बाद में यथावत् नहीं दोहराया जा सकता था और शेखर और शशि के प्रेम संबंध की झलक हमें प्रेमचंद में नहीं मिल सकती थी। 'चाक' से 'अल्मा कबूतरी' तक की रचनाएँ इसी दौर में संभव थी। औपन्यासिक संरचना में काल अपनी पूर्णता में व्यक्त होता है। यह पूर्णता सरल और सीधी रेखा में नहीं व्यक्त होती बल्कि उलझाव और जटिल रूप में व्यक्त होती है। काल के साथ लेखक का संबंध एक-सा नहीं होता। एक ही दौर के रचनाकार अपने उपन्यासों में काल को भिन्न-भिन्न ढंग से व्यक्त करते हैं। अज्ञेय, नागार्जुन, यशपाल और रेणु लगभग एक ही दौर में सक्रिय उपन्यासकार थे, लेकिन उनके उपन्यास एक दूसरे से काफी भिन्न हैं। पचास-साठ के हिंदुस्तान को समझने के लिए हमें न सिर्फ इन लेखकों की रचनाओं को पढ़ना होगा वरन् उसी दौर में लिखे गए अन्य भाषाई उपन्यासों को भी दृष्टि में रखना होगा।

1.4.3 वर्णन और विश्लेषण

श्रेष्ठ उपन्यासों में कथा वर्णनात्मक रूप में नहीं प्रस्तुत की जाती। वर्णन कथा कहने का ज़रूरी माध्यम है, लेकिन वही एक मात्र तरीका नहीं है। रचनाकार कथा को इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि यथार्थ को सिर्फ तथ्यात्मक रूप में ही नहीं बल्कि विवेकपूर्ण ढंग से समझने की क्षमता भी उसमें विकसित हो सके। श्रेष्ठ रचनाकार कथानक से पाठकों को परिचित नहीं कराते बल्कि उसके माध्यम से वे जीवन के ऐसे रूप से साक्षातकार कराते हैं जो न सिर्फ भिन्न होता है वरन् विलक्षण भी। यह विलक्षणता चमत्कारिक नहीं होती बल्कि उसमें यह भाव रहता है कि जीवन को जिस ढंग से उपन्यासकार ने देखा है, उस रूप में हमने क्यों नहीं देखा। वह घटनाओं, तथ्यों, चरित्रों में निहित अंतर्विरोधों और विरोधाभावों को

पकड़ता है। वह संयोगों, दुर्बलताओं, भावावेगों का कथा के विकास और चरित्र-चित्रण में प्रयोग करता है, लेकिन मनमाने ढंग से नहीं। प्रत्येक उपन्यास जिसकी कथा भले ही कितनी ही स्वाभाविक, सहज और प्रामाणिक क्यों न लगे, अंततः गढ़ी हुई होती है। उसमें वर्णित प्रत्येक घटना, प्रत्येक परिस्थिति, प्रत्येक पात्र उपन्यासकार की कल्पना की उपज होते हैं। लेकिन इनका वर्णन करते हुए वह मनमानेपन से संचालित नहीं होता। उसके सामने कोई न कोई मकसद ज़रूर मौजूद रहता है। उद्देश्य के अनुसार ही वह उपन्यास की रचना करता है और वर्णन की पद्धति तय करता है। यदि 'गोदान', 'शेखर – एक जीवनी', 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'मैला आँचल' और 'राग दरबारी' के वर्णन की विधियाँ अलग-अलग है तो इसका कारण लेखकीय उद्देश्य के अंतर में भी है। उपन्यास को पढ़ते हए जिसे आसानी से समझा जा सकता है।

दरअसल, यथार्थवादी उपन्यासकार वर्णन की अपेक्षा विश्लेषण और विवेचन पर अधिक बल देता है। विश्लेषण और विवेचन से तात्पर्य कथा की व्याख्या से नहीं है। यदि उपन्यासकार कथा की व्याख्या साथ-साथ करता जाएगा तो फिर पाठकों के लिए उपन्यास में क्या बचेगा। दूसरा मुद्दा यह है कि उपन्यासकार पाठक की भावनाओं को उद्वेलित करता है या विचारों को। रचना यदि पाठक को सोचने के लिए मज़बूर करती है तो इसका मतलब यह है कि उपन्यासकार उपन्यास द्वारा पाठक को एक वैचारिक दिशा देना चाहता है। इसके विपरीत धर्मवीर भारती के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' पाठकों की भावनाओं को उत्तेजित करता हैं इसलिए उसका असर एक खास उम्र तक और अस्थाई ही रहता है।

1.4.4 प्रातिनिधिकता औरा प्रतीकात्मकता

उपन्यास की संरचना में एक तरह की प्रातिनिधिकता निहित होती है। जब कोई रचनाकार अपने अनुभव संसार में से किसी एक हिस्से को उपन्यास की कथावस्तु बनाने के लिए चुनता है तो उसके चुनाव का आधार उस हिस्से में निहित प्रातिनिधिकता भी होती है। यानी वह अनुभव संसार अपने से ज्यादा व्यापक और अपने जैसे अन्य अनुभव संसार का प्रतिनिधि बनकर उपस्थित होने की क्षमता रखता है। अनुभवों को ऐसी प्रातिनिधिकता रचनाकार देता है। इस संदर्भ में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रातिनिधिकता औपन्यासिक संरचना की आवश्यकता भी है। यदि उपन्यास का एक पात्र इतना निजी और विशिष्ट है कि उस जैसा कोई अन्य पात्र हो ही नहीं सकता तो वह हमारे लिए क्षणिक आकर्षण का कारण तो बन सकता है, लेकिन हमारी प्रेरणा और विवेचना का आधार नहीं बन सकता। उपन्यास में वर्णित प्रत्येक स्थिति, घटना और अनुभव किसी न किसी रूप में अपने ही तरह की दूसरी स्थितियों, अनुभवों, घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। यही नहीं इस प्रातिनिधिकता में प्रतीकात्मकता के तत्व भी मौजूद होते हैं। अपनी ज़मीन को बचाने का सूरदास का संघर्ष देश को आजाद कराने के राष्ट्रीय संघर्ष का प्रतिनिधि तो बनता ही है, प्रतीक भी बनता है। उपन्यासों में ऐसी क्षमता अनायास ही नहीं आती। रचनाकार अपने उपन्यास की कथावस्तु को जितने विराट फलक पर चित्रित करता है, जितने बड़े उद्देश्य से जोड़ता है और जितना गहन संघर्ष उपन्यास में चित्रित होता है, उसमें प्रातिनिधिकता की संभावना उतनी ही बढ़ती जाती है और यह प्रातिनिधिकता की सफलता और उत्कर्षता ही उसे रूपक या प्रतीक में बदल देती है। प्रेमचंद के बाद के दौर में ऐसे उपन्यास हिंदी में बहुत कम हैं जिनमें प्रातिनिधिकता और प्रतीकात्मकता की ऐसी विलक्षण क्षमता मौजूद है।

1.5 शिल्पगत वैशिष्ट्य का आधार

उपन्यास विधा का उदय क्यों हुआ इसके बारे में आप इस पाठ्यक्रम के पहले खंड में पढ़ चुके हैं और विश्व संदर्भ में खंड तीन और भारतीय संदर्भ में खंड चार में पढ़ेंगे। यहाँ हम उपन्यास विधा की शिल्पगत विशिष्टता को समझने का प्रयास करेंगे। उपन्यास जिसे अंग्रेज़ों

में नावेल कहा जाता है, वह क्या है – एक लंबी कथा, आकार में कहानी से बड़ी, गद्य में लिखी रचना। उपन्यास आधुनिक युग की विधा है। यह प्रिंटिंग प्रेस के आगमन के बाद की रचना है। दो बातें खास तौर पर ध्यान देने की हैं। उपन्यास गद्य में लिखा जाता है। आधुनिक युग से पहले इतनी बड़ी कृतियाँ गद्य में लिखने का रिवाज नहीं था। 'कादंबरी' जैसे अपवाद हर कहीं मिल सकते हैं लेकिन थे ये अपवाद ही। दूसरी बात पहली बात से जुड़ी है। गद्य में उपन्यास लिखना आधुनिक युग में शुरू हुआ इसलिए आधुनिक युग की विशिष्टताओं का प्रभाव उपन्यास विधा के शिल्प पर पड़ना स्वाभाविक था।

आधुनिक युग पूंजीवादी युग है इसलिए पूंजीवादी युग का प्रभाव भी उपन्यास पर दिखाई देता है। यह युग अपने से पहले के किसी युग की तुलना में ज्यादा जटिल, ज्यादा विविध और ज्यादा बहुआयामी है जो इस युग के यथार्थ में निहित है। यथार्थ की इस विशिष्टता के कारण इस दौर के संघर्ष को पद्य में व्यक्त तो किया जा सकता है, लेकिन गद्य में रचनात्मक संभावनाएँ ज्यादा होती हैं। गद्य रचना में इसके लिए ज़रूरी नए प्रयोग किए जा सकते हैं। रचनात्मक कल्पनाशीलता के लिए ज्यादा खुली ज़मीन मिल सकती है। इस भाग में हम इन्हीं मसलों पर विचार करेंगे।

1.5.1 यथार्थ की जटिलता और विविधता

पहले के किसी भी दौर की तुलना में आधुनिक दौर अधिक जटिल, विविध और बहुआयामी है। उपन्यास का संबंध यथार्थ से है। गद्य में लिखा जाकर उपन्यास यथार्थ के सबसे नज़दीक पहुँच जाता है। भाषा में वर्णन करने की अपनी क्षमता के कारण उपन्यास मनुष्य के आंतरिक जगत में भी प्रवेश कर जाता है। उपन्यास हमें बताता है कि उसके पात्रों के मन में क्या द्वंद्व चल रहा है, वे क्या सोच रहे हैं और क्या करना चाहते हैं और क्या करेंगे। परकाया प्रवेश की यह शक्ति उपन्यास की पहुँच को बढ़ा देता है। उपन्यास में काल और देश की सीमाओं को लांघ जाने की क्षमता होती है। पूंजीवादी समाज की विविधता को व्यक्त करने में उपन्यास किसी अन्य विधा की तुलना में अधिक सक्षम है। पूंजीवादी समाज में तकनीकी प्रगति और वैचारिक विकास में दुनिया को संकुचित कर दिया है। विश्व के हर कोने में रहने वाले व्यक्ति एक दूसरे से इतने अनजान और अपरिचित नहीं है। विश्व के सारे लोगों की नियति आज आपस में बंधी हुई है। दुनिया के विभिन्न देशों, समाजों, समुदायों और वर्गों की नियति इस तरह परस्पर संबद्ध है कि उसको समझना आसान न होते हुए भी आवश्यक है। उपन्यास हमारे समय के यथार्थ की इस विविधता और जटिलता को अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

1.5.2 संघर्ष के विविध स्तर और आयाम

यथार्थ की विविधता और जटिलता के कारण आधुनिक समाजों में संघर्ष के स्तर भी बहुत तरह के ओर बहुआयामी हो गए हैं। यदि आधुनिक युग ने यह चेतना दी है कि सभी मनुष्य बराबर हैं, जाति, धर्म, भाषा, लिंग, क्षेत्र, नस्ल आदि के आधार पर उनके साथ भेदभाव करना अनुचित है। एक समतावादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक समाज बनाना लोगों का बुनियादी अधिकार है तो धर्म, राष्ट्र, भाषा, संप्रदाय, जाति, नस्ल, लिंग आदि के आधार पर लोगों में भेद के बीज बोने की कोशिशें भी बढ़ी हैं। ये कोशिशें पूंजी के अधिकार के बल पर की जा रही हैं। दुनिया आज अमीर देशों और गरीब देशों, अमीर वर्गों और गरीब वर्गों में पहले के किसी भी समय की तुलना में ज्यादा विभाजित है। साम्राज्यवादी राष्ट्रों की नवऔपनिवेशिक कोशिशें, प्रत्येक देश के शासक बुर्जुआजी द्वारा अपने यहाँ के मेहनतकश वर्ग के अधिकारों को कुचलने की कोशिशें हर कहीं देखी जा सकती हैं। इससे इनमें संघर्ष अवश्यम्भावी है। इस संघर्ष को दिग्भ्रमित करने के लिए धर्म, राष्ट्र, जाति, नस्ल, भाषा आदि विभाजनों का इस्तेमाल किया जाता है ताकि श्रमिक जनता को एक्यबद्ध होने से रोका जा सके और उन्हें आपस में लड़ाकर अपनी सत्ता को सुरक्षित रखा जा सके।

आधुनिक युग में संघर्ष का दूसरा महत्वपूर्ण आयाम यह है कि लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का विस्तार हुआ है। स्त्रियों में लिंग चेतना, दलितों में जातीय चेतना, अल्पसंख्यकों में अधिकार चेतना का विस्तार इसकी पहचान है। वे सभी वर्ग, समूह जिनके परंपरागत अधिकारों को चुनौती दी जा रही है, वे इस चुनौती को सहज रूप से स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं और इनमें तनाव और संघर्ष का पैदा होना अनिवार्य हो जाता है। उपन्यास मौजूदा दौर के इन संघर्षों को अभिव्यक्ति देने का सशक्त माध्यम है।

1.5.3 गद्य में निहित स्तर और आयाम

उपन्यास गद्य में लिखा जाता है। गद्य की विशेषता यह है कि वह जटिलतम विचारों और भावों को अभिव्यक्त करने में सक्षम है। गद्य की विभिन्न विधाओं का उपयोग उपन्यास रचना में किया जा सकता है। मसलन नाटक कहानी, निबंध, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, रिपोर्ताज, यात्रावृत्तांत आदि विभिन्न विधाओं का प्रयोग उपन्यास में किया जा सकता है। जार्ज लुकाच का मानना है कि "उपन्यास का बाहरी रूप मूलतः आत्मकथा का होता है।" लेकिन अपनी आंतरिक संरचना में उपन्यास जीवनी की तरह होता है। उपन्यासकार ऐसे जीवनीकार की तरह अपने पात्रों का निर्मम और वस्तुपरक ढंग से वर्णन करता है, मानो वह उसका रचयिता नहीं बल्कि आलोचक है। उपन्यासकार में गद्य की समस्त शक्तियों का इस्तेमाल करने की क्षमता होना ज़रूरी है। वह आवश्यकतानुसार नाटकीयता, किस्सागोई, भावात्मक प्रवाह, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, लालित्य, वस्तुपरक रिपोर्टिंग की क्षमता का इस्तेमाल कर सके। वह अपने पात्रों का ऐसा चित्र निर्मित कर सके कि उसको ठीक उसी रूप में पहचाना जा सके जिस रूप में लेखक उसे संप्रेषित करना चाहता है। उपन्यास रचना में महाकाव्यातमक क्षमता हासिल करने की कोशिश उपन्यासकार का लक्ष्य होता है। रवींद्रनाथ ठाकुर के उपन्यासों की भाषा में निहित काव्यात्मकता की ओर विद्वानों ने ध्यान आकृष्ट किया है। 'राग दरबारी' में श्रीलाल शुक्ल ने व्यंग्य की तीक्ष्ण धार का अनुपम प्रयोग किया है जबकि धर्मवीर भारती के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' की भाषा में भावोच्छ्वास का लालित्य है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की गद्य भाषा बाणभट्ट के समय का आईना बन जाती है। गद्य के इन विभिन्न स्तरों और आयामों का प्रयोग उपन्यास रचना की शक्ति का द्योतक है।

1.5.4 कल्पनाशीलता और प्रयोगधर्मिता

साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति उपन्यास भी कल्पनाशीलता के बिना नहीं रचा जा सकता। कल्पना का प्रयोग उपन्यास की कथावस्तु, चरित्र चित्रण, परिवेश, भाषा, शैली आदि सभी तत्वों में आवश्यक है। यथार्थ से सबसे ज्यादा संपृक्त होकर भी उपन्यास यथार्थ की अनुलिपि नहीं होता। उपन्यास में जीवन जैसा है, उसी तरह प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। उपन्यास आत्मकथात्मक तो होता है, आत्मकथा नहीं होता। वह जीवनीपरक हो सकता है, जीवनी नहीं होता। वह यात्रावृतांत की तरह लिखा जा सकता है, लेकिन यात्रावृतांत नहीं हो सकता। उपन्यास की कथावस्तु किस पद्धति की माँग कर रहा है, उसी के अनुसार उपन्यासकार उपन्यास की रचना करेगा। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आत्मकथापरक होते हुए भी बाणभट्ट एक काल्पनिक जीवनी से अधिक कुछ नहीं है जिसके बाणभट्ट को छोड़कर अधिकांश पात्र उपन्यासकार की कल्पना की उपज है और अधिकांश घटनाएँ भी। 'शेखर : एक जीवनी' जीवनीपरक होते हुए भी उसमें अज्ञेय के जीवनानुभवों का काफी प्रभाव माना जाता है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि शेखर और अज्ञेय एक हैं और अज्ञेय के जीवन में जो कुछ उस समय तक हुआ होगा, उसे शेखर में हुबहू देखा जा सकता है।

उपन्यासकार अपनी बात कहने के लिए कोई भी प्रविधि अपना सकता है। यह प्रविधि कितनी सफल होगी, उपन्यास की सफलता पर निर्भर करेगी। उपन्यास की प्रविधियों में निरंतर परिवर्तन और विकास होता आया है। समय के बदलते स्वरूप में रचनाकार उपन्यास लेखन की पुरानी प्रविधियों को अपर्याप्त महसूस करता है और वह नयी प्रविधि की तलाश करने को

विवश होता है। 'चंद्रकांता', 'सेवासदन', 'गोदान', 'शेखर : एक जीवनी', 'त्यागपत्र', 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'मैला आँचल', 'राग दरबारी', 'वे दिन', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', 'जिंदगीनामा', 'खिलेगा तो देखेंगे', 'अल्मा कबूतरी' तक हमें यथार्थ के विभिन्न रूप ही नहीं वरन् उपन्यास लेखन के नए-नए प्रयोग भी दिखाई देते हैं· यथार्थ के बदलाव और यथार्थ के उपन्यास में रूपांतरण से कल्पना और प्रयोग दोनों का गहरा संबंध है। इसी से उपन्यास विधा का निरंतर विकास होता आया है।

1.6 सारांश

एम.ए. हिंदी के पाठ्यक्रम एम एच डी-13 'उपन्यास : स्वरूप और विकास' के दूसरे खंड 'उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-2' की पहली इकाई 'उपन्यास वस्तु और शिल्प' का आपने अध्ययन किया है। उपन्यास की अंतर्वस्तु, पात्रों का विकास, औपन्यासिक संरचना और उपन्यास के शिल्पगत वैशिष्ट्य के आधार पर इस इकाई में विचार किया गया है।

उपन्यास की अंतर्वस्तु के अंतर्गत आपने कथानक का निर्धारण, विकास, मुख्य और अवांतर कथाएँ, कथावस्तु में स्वाभाविकता और विश्वसनीयता तथा नवीनता संबंधी बातों पर विचार किया गया है। इससे आपको उपन्यास की कथावस्तु को समझने में मदद मिलेगी।

इकाई के अगले भाग में उपन्यास में पात्रों के विकास पर विचार किया गया है। उपन्यास की कथा के विकास में पात्रों की क्या भूमिका होती है, इस पर प्रकाश डाला गया है। मुख्य पात्रों और गौण पात्रों के महत्व और चित्रण पर विचार किया गया है और पात्रों के चरित्र चित्रण की विभिन्न पद्धतियों पर प्रकाश डाला गया है। इस भाग को पढ़ने से उपन्यास के पात्रों और चरित्र-चित्रण की पद्धतियों को समझने में मदद मिलेगी।

इकाई में उपन्यास की संरचना पर भी विस्तार से विचार किया गया है। स्थान, काल, देश, वर्ग, आदि का प्रभाव उपन्यास की संरचना पर किस तरह पड़ता है और संरचनात्मक प्रस्तुति के कौन-कौन से रूप हो सकते हैं। मसलन वर्णन, विश्लेषण, प्रातिनिधिकता और प्रतीकात्मकता पर भी विचार किया गया है।

इकाई के अंतिम भाग में उपन्यास विधा की शिल्पगत विशिष्टता के आधारों पर विचार किया गया है। उपन्यास आधुनिक युग की उपज है और आधुनिक समय के यथार्थ की विविधता और जटिलता, उसमे निहित संघर्ष के विविध आयाम और गद्य के माध्यम से इनको अभिव्यक्त करना यही इस भाग का मुख्य विचारणीय विषय रहा है। इस अभिव्यक्ति में कल्पना और प्रयोग की भूमिका पर भी इकाई में विचार किया गया है।

इस प्रकार इस इकाई का अध्ययन करने से आप उपन्यास की वस्तु और शिल्प से संबंधित मुख्य-मुख्य बातों की जानकारी हासिल कर चुके हैं।

अभ्यास

1. उपन्यास की कथावस्तु का निर्धारण करने के लिए किन बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है और उपन्यास की कथावस्तु में क्या-क्या गुण होने चाहिए, इस पर विचार कीजिए।
2. कथाविकास में, पात्रों की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए चरित्र-चित्रण की विभिन्न पद्धतियों का परिचय दीजिए।
3. औपन्यासिक संरचना के देशकालगत आधारों पर विचार कीजिए और उनकी प्रस्तुति के विभिन्न तरीकों का उल्लेख कीजिए।

इकाई 2 उपन्यास की भाषिक संरचना

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 भाषा : रचनात्मक माध्यम
2.3 उपन्यास की भाषा
    2.3.1 पद्य और गद्य का अंतर
    2.3.2 वर्णन और विश्लेषण की क्षमता
2.4 औपन्यासिक भाषा की विशिष्टता
    2.4.1 कथा कहना
    2.4.2 कथा रचना
    2.4.3 कथा दिखाना
2.5 बोलचाल की भाषा के विविध रंग-रूप
    2.5.1 व्यंग्यात्मकता
    2.5.2 मुहावरे और लोकोक्ति
2.6 काव्य भाषा के उपकरणों का प्रयोग
2.7 सारांश

2.0 उद्देश्य

एम.ए. हिंदी के पाठ्यक्रम एम एच डी-13 (उपन्यास : स्वरूप और विकास) के दूसरे खंडा 'उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप भाग-2' की दूसरी इकाई 'उपन्यास की भाषिक संरचना' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई में उपन्यास में भाषा के प्रयोग के विविध रूपों पर विचार किया जाएगा। भाषा साहित्य रचना का ऐसा माध्यम है जिसमें अपार रचनात्मक संभावनाएँ छुपी हैं। भाषा के दो रूप होते हैं : पद्य और गद्य। उपन्यास गद्य में लिखा जाता है इसलिए इस इकाई में गद्य और पद्य के अंतर पर विचार किया गया है। गद्य की भाषा में वर्णन और विश्लेषण की क्षमता होती है। उपन्यास गद्य की इस क्षमता का उपयोग किस तरह करता है, इकाई में इस पर भी विचार किया गया है।

गद्य की भाषा से अलग उपन्यास की भाषा की अपनी विशिष्टता होती है। इस विशिष्टता को इकाई में तीन ढंग से समझाया गया है। कथा कहना और सुनाना, इसमें नाटकीयता का तत्व शामिल है, कथा रचना यानी कि ऐसी फैंटेसी की रचना करना जैसे हमारे सामने एक नया संसार उतर आया हो, और कथा दिखाना यानी जैसे हमारे सामने फिल्म चल रही हो, उपन्यास की भाषा की विशिष्टेता पर इन तीनों पहलुओं से विचार किया गया है।

उपन्यास की भाषा बोलचाल की भाषा से गहरे रूप में प्रभावित होती है। बोलचाल की भाषा के सभी गुणों का प्रयोग उपन्यास में किया जाता रहा है। व्यंग्य, लोकोक्ति, मुहावरे, संवादपरक और ध्वनिपरक उपकरण आदि पर इस दृष्टि से इकाई में विचार किया गया है।

इकाई के अंत में उपन्यास में काव्य भाषा की विशेषताओं के प्रयोग पर भी प्रकाश डाला गया है। बिंब, प्रतीक, मिथक, अलंकार, गीति तत्व आदि के प्रभाव पर भी इकाई में विचार किया गया है। इस प्रकार इकाई के अध्ययन से आप उपन्यास की भाषिक संरचना को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

इस खंड की पहली इकाई में आपने उपन्यास के वस्तु और शिल्प पर विचार किया था। उपन्यास की अंतर्वस्तु, पात्रों का विकास औपन्यासिक संरचना, उसकी शिल्पगत विशिष्टता

और उसके आधारों का अध्ययन किया था। खंड एक की इकाइयों और इस खंड की पहली इकाई पढ़ने के बाद आपके सामने उपन्यास विधा की संरचना और शिल्प का स्वरूप काफी हद तक स्पष्ट हो गया होगा।

इस इकाई में उपन्यास की भाषिक संरचना पर विस्तार से विचार किया गया है। साहित्य की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है। भाषा का गद्य रूप उपन्यास में व्यक्त होता है। गद्य का कथात्मक रूप उपन्यास का आधार होता है। उपन्यास में जीवन का विस्तृत वर्णन होता है। व्यापक परिवेश, बहुत से पात्र और विविध तरह की परिस्थितियाँ और घटनाएँ उपन्यास में वर्णित होती हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि उपन्यास की भाषा में भी विविधता हो। उपन्यास की भाषा में लेखकीय विशिष्टता तो हो ही साथ ही कथानक पात्रों और परिवेश के अनुरूप भी भाषा का होना ज़रूरी है। कथा के प्रवाह और भावनाओं के उतार चढ़ाव के अनुसार भाषा में नाटकीयता, गतिमयता और तनाव और संघर्ष की अभिव्यक्ति ज़रूरी हो जाती है। उपन्यास की भाषा पाठकों को ध्यान में रखकर भी प्रयुक्त की जानी चाहिए।

उपन्यास की भाषा बोलचाल के अनुरूप हो लेकिन उसे सर्जनात्मक बनाने की ज़रूरत होती है। क्लिष्ट और किताबी भाषा उपन्यास के अनुरूप नहीं मानी जाती। भाषा में लोकोक्ति, मुहावरे, संवाद, ध्वनि प्रयोग भाषा को बोलचाल के नज़दीक ले जाती है।

उपन्यास की भाषा मे नए-नए प्रयोग किए जा सकते हैं। जिस भाषा का प्रयोग देवकीनंदन खत्री ने किया था, उससे भिन्न भाषा का प्रयोग प्रेमचंद ने किया। प्रेमचंद की भाषा का प्रयोग जयशंकर प्रसाद ने नहीं किया। इन दोनों के बाद की पीढ़ी के उपन्यासकारों यशपाल, नागार्जुन, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय, रेणु की भाषा के रंग अलग-अलग हैं और आज जब हम मनोहरश्याम जोशी, कृष्ण बलदेव वैद, विनोद कुमार शुक्ल आदि के उपन्यासों की भाषा से प्रेमचंद, जैनेंद्र, यशपाल आदि की भाषा से तुलना करें तो हम समझ सकते हैं कि हिंदी उपन्यासों की भाषा में कितना बदलाव आया है।

उपन्यासों में भाषा का प्रयोग निरंतर बदलता रहता है। इसका कारण एक तो समाज में भाषा के प्रयोग में आने वाला अंतर है। दूसरे, उपन्यासकार द्वारा अपने उपन्यास के लिए नयी भाषा के प्रयोग की खोज है। वह अपने उपन्यास के नए कथ्य के अनुरूप नयी भाषा की तलाश करता है। यह एक सर्जनात्मक चुनौती से भरा काम है, लेकिन उपन्यासकार के रूप में उसकी सफलता भाषा के नए प्रयोग में निहित है। उपन्यास के संदर्भ में भाषा की इस भूमिका का अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

2.2 भाषा : रचनात्मक माध्यम

भाषा का प्रयोग साहित्य में जीवन से बहुत भिन्न नहीं होता है। भाषा का जो प्रयोग हम अपने दैनंदिन जीवन में करते हैं उसी में रचनात्मकता के तत्व समाहित होते हैं। रचनाकार इनको पहचानकर अपनी रचना में इनका प्रयोग इस तरह करता है कि भाषा नए रूप और नए निखार के साथ उभरकर आती है। भाषा की रचनात्मकता न तो वर्णों मे, न शब्दों में और न ही वाक्यों में निहित होती है। न ही छंद, तुक या लय में। न ही नाटकीयता या व्यंग्यात्मकता में। मुहावरे, लोकोक्ति या बिंब प्रतीक में भी भाषा की रचनात्मकता नहीं होती। दरअसल भाषा में रचनात्मकता कथ्य और शिल्प के साथ संयोजन से तय होती है। यदि भाषा की कथ्य और शिल्प के साथ संगति नहीं है तो रचना का प्रभाव भी कमज़ोर होगा।

गद्य का साहित्य में प्रयोग कई रूपों में होता है। मुद्रण प्रणाली के विस्तार के साथ गद्य का प्रयोग बढ़ा है। गद्य के प्रयोग के साथ उसमें विविधता भी आई है। आरंभ में गद्य का प्रयोग करते हुए उसमें विभिन्न विधाओं के अनुसार फर्क पैदा करने का प्रयत्न किया गया है। निबंध

में प्रयुक्त गद्य की भाषा को नाटक और कहानी की भाषा से अलग किया जाना ज़रूरी था। लेकिन जैसे-जैसे प्रत्येक विधा में लेखन की मात्रा बढ़ती गई, भाषा प्रयोग में विविधता एक विधा के अंतर्गत भी ज़रूरी हो गई। निबंध की भाषा में विचारों का प्राधान्य रहता है जबकि कहानी में क्रियाशीलता की प्रधानता रहती है। घटनाओं, स्थितियों, भावनाओं में निरंतर होने वाले परिवर्तन से कहानी का ताना-बाना बुना जाता है। कहानी में किसी खास परिवेश में रहने-जीने वाले पात्रों के जीवन को प्रस्तुत किया जाता है। कहानी में भाषा का प्रयोग करते हुए परिवेश, पात्र, स्थिति और संवेदनाओं में आने वाले अंतर का ध्यान रखना होता है। यह अंतर सिर्फ यथार्थ के अनुरूप होने की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं हैं बल्कि कहानी के कथ्य के अनुरूप होना भी ज़रूरी है। जो बात कहानी, नाटक और निबंध आदि साहित्यिक विधाओं के लिए सत्य है, कमोबेश वह उपन्यास के लिए भी सत्य है। उपन्यास एक अर्थ में किसी भी अन्य कथात्मक विधा से, और काफी हद तक गद्य विधाओं से ज्यादा उन्मुक्त, स्वतंत्र और प्रयोगधर्मी विधा है इसलिए उपन्यास में भाषा के प्रयोग में अधिक रचनात्मक संभावनाएँ निहित होती हैं। उपन्यास की भाषा के इसी रचनात्मक पहलू पर आगे विस्तार से विचार करेंगे।

2.3 उपन्यास की भाषा

उपन्यास की भाषा पर विचार करने से पहले एक बार उपन्यास को समझ लेना आवश्यक है। उपन्यास अंग्रेजी नॉवेल के हिंदी अनुवाद के रूप में प्रचलित है। नॉवेल में नवीनता का भाव निहित होता है, जबकि उपन्यास शब्द में 'समीप रखना' का भाव समाविष्ट है। इसका तात्पर्य यह है कि उपन्यास मानव जीवन के अधिक समीप होता है और उसमें जीवन को नए-नए रूपों में व्यक्त किया जाता है। 'न्यू इंग्लिश डिक्शनरी' के अनुसार, "नॉवेल वह विस्तृत गद्यात्मक प्रकथन प्रधान रचना है जिसमें वास्तविक जीवन का अनुकरण करने वाली घटनाओं और पात्रों का एक व्यवस्थित कथावस्तु के रूप में वर्णन रहता है।" (साहित्यिक विधाएँ – पुनर्विचार : डॉ. हरिमोहन से उद्धृत पृ. 146)। 'न्यू बेबस्टर डिक्शनरी' के अनुसार, "उपन्यास एक ऐसी कल्पित गद्य रचना है जिसके विषय की सीमा असीम हो, जिसके शिल्प-कौशल में विविधता हो और जिसमें एक या अधिक कथानक हों।" जे.बी. प्रीस्टले के अनुसार, "उपन्यास काल्पनिक पात्र और घटनाओं से लैस गद्य कथा है। इसे जीवन का बड़ा दर्पण कहा जा सकता है" (वही, पृ. 146)। हिंदी में प्रेमचंद ने उपन्यास को परिभाषित करते हुए लिखा है, 'मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ – मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।' आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उपन्यास को परिभाषित करते हुए लिखा है, 'मानव जीवन के अनेक रूपों का परिचय कराना उपन्यास का काम है। यह उन सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं का प्रत्यक्ष करने का यत्न करता है जिनसे मनुष्य का जीवन बनता है और जो इतिहास आदि की पहुँच के बाहर है।' मराठी रचनाकार भालचंद्र नेमाड़े के अनुसार, "उपन्यास साहित्य की ऐसी विधा है जिसका भाषिक अवकाश (स्पेस) विस्तृत होता है अतः उसके तत्वों की व्याप्ति भी बड़ी होती है।

उपन्यास की इन विभिन्न परिभाषाओं से हम ऐसे सूत्र निकाल सकते हैं जिससे उपन्यास के लिए उपयुक्त भाषा की पहचान की जा सके। उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार, उपन्यास :

1. एक गद्य रचना है।
2. में वास्तविक जीवन का अनुकरण करने वाली घटनाओं और पात्रों से कथावस्तु का निर्माण होता है।
3. के शिल्प-कौशल में विविधता रहती है।
4. का भाषिक अवकाश विस्तृत होता है।

उपन्यास की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर उसकी भाषिक संरचना का निर्माण होता है। उपन्यास, जैसा कि उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है, मानव जीवन का व्यापक स्तर पर चित्रण करता है और उपन्यास में मानव जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियों को शब्दों में अभिव्यक्ति करने की कोशिश होती है। इस तरह उपन्यास की परिधि से कुछ भी बाहर नहीं है। न मनुष्य का बाहरी जीवन और न ही आंतरिक जीवन। जीवन के ऐसे चित्रण के लिए भाषा की सर्जनात्मक शक्ति का भरपूर इस्तेमाल करना होता है। गद्य में यह शक्ति होती है।

2.3.1 पद्य और गद्य का अंतर

उपन्यास गद्य रचना है। गद्य और पद्य में भाषा का अंतर समझने से हम यह समझ सकते हैं कि उपन्यास में कैसे भाषा की शक्ति का विस्तार होता है। पद्य की भाषा छंद और लय से बंधी होती है। यदि छंद से न बँधी हो तो भी लय से अवश्य बँधी होती है। लय कविता में दो रूपों में अवस्थित होती है – शब्द की लय और अर्थ की लय। यदि कविता में शब्द की लय का अभाव भी हो तो अर्थ की लय के बिना कविता नहीं बन सकती। कविता होने की यह न्यूनतम शर्त है।

गद्य के लिए ऐसी किसी शर्त की आवश्यकता नहीं। यहाँ तक कि उपन्यास में अर्थ की लय हो यह ज़रूरी नहीं है। महाकाव्यात्मक उपन्यासों में तो यह मुमकिन भी नही है। लय के बंधन से बंधे होने के कारण कविता में जीवन-यथार्थ से एक दूरी कायम हो जाती है। कविता होने से ही वह जीवन से अपनी दूरी का एहसास करा देती है जबकि गद्य जीवन के हुबहू होने का आभास पैदा करता है। गद्य में अयथार्थ भी यथार्थ की तरह भासित होता है। इस प्राकर गद्य अयथार्थ को यथार्थ और यथार्थ को जीवन का प्रतिरूप बना देता है।

पद्य जीवन से प्रेरित होकर भी उसकी जटिलता और विविधता को समग्रता में प्रस्तुत नहीं करता। कविता में प्रातिनिधिकता और प्रतीकात्मकता के लिए ज्यादा अवसर होते हैं जबकि गद्य में प्रातिनिधिकता और प्रतीकात्मकता के लिए अलग से प्रयत्न करने पड़ते हैं। इसके लिए गद्य में पद्य की विशेषताओं को आरोपित करना पड़ता है। गद्य और पद्य की भाषा के अंतर को निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। अज्ञेय की लंबी कविता 'असाध्य वीणा' का निम्नलिखित अंश जिसमें कथात्मकता भी समाहित है, काव्य शिल्प की विशेषताओं को व्यक्त करता है।

"मैं नहीं, नहीं! मैं कहीं नहीं!
ओ रे तरु! ओ वन!
ओ स्वर-संभार!
नाद-मय संसृति
ओ रस-प्लावन
मुझे क्षमा कर–भूल अकिंचनता को मेरी–
मुझे ओट दे–ढँकले–छा ले–
ओ शरण्य!
मेरे गूंगेपन को तेरे सोये स्वर सागर का ज्वार डुबा ले!
आ, मुझे भुला,
तू उतर बीन के तारों में
अपने से गा
अपने को गा
अपने खग-कुल को मुखरित कर
अपनी छाया में पले मृगों की चौकड़ियों को ताल बाँध,
अपने छाया-तप, दृष्टि-पवन, पल्लव-कुसुमन की लय पर
अपने जीवन-संचय को कर छंदयुक्त,

अपनी प्रज्ञा को वाणी दे!
तू गा, तू गा
तू सन्निधि पा तू खो
तू आ–तू हो–तू–गा। तू गा!'

नीचे अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर – एक जीवनी' का अंश उद्धृत है। अज्ञेय की गद्य भाषा काव्य भाषा के काफी नज़दीक होते हुए भी दोनों अंशों को एक साथ पढ़ने से पद्य ओर गद्य की भाषा का अंतर आसानी से समझा जा सकता है।

दुनिया शेखर के आगे खुल गई। वह सब कुछ समझ गया–जो अस्पष्ट संकेत उसने देखे थे, जो पुकारें सुनी थीं, जो उत्तेजनाएँ पायी थीं, जो दंश सहे थे, सब सुलझ गए, माँ का छाती पीटना, पिता का क्रोध, नाचती हुई जिन्निया की नंगी टाँगें, अमृतसर की वेश्या, रसोइया का व्यंग, अत्ती की नंगी पीठ, गीतगोविंद के पद, अठमास बच्चा, छिन्नमस्ता के नीचे पुरुष और प्रकृति का चित्र, कविता का सुख...और हाँ, सरस्वती की लज्जा, शांति के आँसू, सावित्री का मौन, शशि का आग्रह, शारदा का कम्पन–सब एक ही सूत्र में गुँथ गए, स्पष्ट हो गए, समझ में आ गए न...सबकी गति एक ही ओर है, एक ही घृणित पाप-कर्म की ओर, जिसे उसके माता-पिता ने किया है, शारदा के माता-पिता ने किया है, सृष्टि के आरंभ से प्रत्येक माता-पिता करते आए हैं। यही है प्यार, यही जिसके लिए वह शारदा को चाहता था, यह–अकथ्य, घृणित, अचिंतनीय, भ्रष्टाचार...अच्छा है कि तुम मर जाओ, अच्छा है कि शारदा मर जाए, अच्छा है कि सारा संसार मर जाए–यदि यही होना है तो....।

2.3.2 वर्णन और विश्लेषण की क्षमता

गद्य की भाषा में वर्णन और विश्लेषण की क्षमता होती है और उपन्यास में इन क्षमताओं का इस्तेमाल करने की ज़रूरत बहुत अधिक रहती है। उपन्यास में वर्णन (Narration), विवरण (Description) और विश्लेषण (Analysis) तीनों विशेषताओं की ज़रूरत होती है। प्रेमचंद के उपन्यास में हमें इन सभी विशेषताओं का चरम उत्कर्ष दिखाई देता है। उपन्यासों में नवीनतम प्रयोगों में भी हम इनका इस्तेमाल पा सकते हैं। दरअसल गद्य भाषा की ये ऐसी विशेषताएँ जिसके कारण मनुष्य अपनी बात, अपने भाव और अपने विचार दूसरों तक संप्रेषित कर पाता है। यहाँ हम प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' से कुछ अंश दे रहे हैं जिनसे भाषा की इन शक्तियों का परिचय मिल सकेगा।

'वर्णन' का उदाहरण

सेमरी और बेलारी दोनों अवध-प्रांत के गाँव हैं। जिले का नाम बताने की कोई ज़रूरत नहीं। होरी बेलारी में रहता है, रायसाहब अमरपाल सिंह सेमरी में। दोनों गाँवों में कवेल पाँच मील का अंतर है। पिछले सत्याग्रह-संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गए थे। तब से उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी। यह नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियासत की जाती हो, या डाँड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवस्था के गुलाम थे। जाब्ते का काम तो जैसे होता चला आया है, वैसा ही होगा। रायसाहब की सज्जनता उस पर कोई असर न डाल सकती थी, इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ-भर को भी कमी न होने पर भी उनका यश मानो बढ़ गया था। असामियों से वह हँसकर बोल लेते थे। यही क्या कम है? सिंह का काम तो शिकार करना है, अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे

घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में जंगल में न भटकना पड़ता।

'विवरण' का उदाहरण

दिन चढ़ने लगा। रात को कुछ न खाया था। भूख मालूम होने लगी। पाँव लड़-खड़ाने लगे। कहीं बैठकर दम लेने की इच्छा होती थी। बिना कुछ पेट में डाले, वह अब नहीं चल सकता, लेकिन पास एक पैसा भी नहीं है। सड़क के किनारे झुड़-बेरियों के झाड़ थे। उसने थोड़े से बेर तोड़ लिए और उदर को बहलाता हुआ चला। एक गाँव में गुड़ पकने की सुगंध आयी। अब मन न माना। कोल्हाड़ में जाकर लोटा-डोर माँगा और पानी भरकर चुल्लू से पीने बैठा कि एक किसान ने कहा—अरे भाई, क्या निराला ही पानी पियोगे? थोड़ा-सा मीठा खालो। अबकी और चला लें कोल्हू और बना लें खाँड़। अगले साल तक मिल तैयार हो जाएगी। सारी ऊख खड़ी बिक जाएगी। गुड़ और खाँड़ के भाव चीनी मिलेगी, तो हमारा गुड़ कौन लेगा? उसने एक कटोरे में गुड़ की कई पिंडियाँ लाकर दीं। गोबर ने गुड़ खाया, पानी पिया। तमाखू तो पीते होंगे? गोबर ने बहाना किया। अभी चिलम नहीं पीता। बुड्ढे ने प्रसन्न होकर कहा—बड़ा अच्छा करते हो भैया! बुरा रोग है। एक बार पकड़ ले, तो ज़िंदगी भर नहीं छोड़ता।

'विश्लेषण' का उदाहरण

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाए, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

उपन्यास में डिटेल्स का बड़ा महत्व होता है। इससे लेखक की अवलोकन क्षमता का पता चलता है। विभूति भूषण उपाध्याय के उपन्यासों में सूक्ष्म अवलोकन की प्रवृत्ति ने उन्हें अन्य उपन्यासकारों से अलग और विशिष्ट बनाया। उपन्यास में उपन्यासकार सिर्फ बाह्य स्थितियों का ही वर्णन नहीं करता, पात्रों के आंतरिक मनोभावों का भी वर्णन करता है। प्रेमचंद भी पात्रों के आंतरिक अंतर्द्वंद्व के चित्रण के लिए ये विधि अपनाते हैं।

धनिया का दिल भी अभी तक साफ़ नहीं हुआ। अभी तक उसके मन में मलाल बना हुआ है। मुझे सब आदमियों के सामने उसको मारना न चाहिए था। जिसके साथ पचीस साल गुजर गए, उसे मारना और सारे गाँव के सामने, मेरी नीचता थी, लेकिन धनिया ने भी तो मेरी आबरू उतारने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मेरे सामने से कैसा कतराकर निकल जाती है, जैसे कभी की जान-पहचान ही नहीं। कोई बात कहनी होती है, तो सोना या रूपा से कहलाती है। देखता हूँ, उसकी साड़ी फट गई है, मगर कल मुझसे कहा भी, तो सोना की साड़ी के लिए, अपनी साड़ी का नाम तक न लिया। सोना की साड़ी अभी दो-एक महीने थेगलियाँ लगाकर चल सकती है। उसकी साड़ी तो मारे पेबंदों के बिलकुल कथरी हो गई है। और फिर मैं ही कौन उसका मनुहार कर रहा हूँ? अगर मैं ही उसके मन की दो-चार बातें करता रहता, तो कौन छोटा हो जाता? यही तो होता, वह थोड़ा-सा अदरावन कराती, दो-चार लगने वाली बात कहती, तो क्या मुझे चोट लग जाती, लेकिन मैं बुड्ढा होकर भी

उल्लू बना रह गया। वह तो कहो, इस बीमारी ने आकर उसे नर्म कर दिया, नहीं जाने कब तक मुँह फुलाए रहती।

और आज उन दोनों में जो बातें हुई थीं, वह मानो भूखे का भोजन थीं। वह दिल से बोली थी और होरी गद्‌गद हो गया था। उसके जी में आया, उसके पैरों पर सिर रख दे और कहे मैंने तुझे मारा है तो ले मैं सिर झुकाए लेता हूँ, जितना चाहे मार ले, जितनी गालियां देना चाहे दे ले।

सहसा उसे मँड़ैया के सामने चूड़ियों की झंकार सुनाई दी। उसने कान लगाकर सुना। हाँ, कोई है। पटवारी की लड़की होगी, चाहे पंडित की घरवाली हो। मटर उखाड़ने आयी होगी। न जाने क्यों इन लोगों की नीयत इतनी खोटी है। सारे गाँव से अच्छा पहनते हैं, सारे गाँव से अच्छा खाते हैं, घर में हजारों रुपए गड़े हैं, लेन-देन करते हैं, ड्योढ़ी-सवाई चलाते हैं, घूस लेते हैं, दस्तूरी लेते हैं, एक-न-एक मामला खड़ा करके हमा-सुमा को पीसते ही रहते हैं, फिर भी नीयत का यह हाल! बाप जैसा होगा, वैसी ही संतान भी होगी। और आप नहीं आते, औरतों को भेजते हैं। अभी उठकर हाथ पकड़ लूँ तो क्या पानी रह जाए! नीच कहने को नीच हैं, जो ऊँचे हैं, उनका मन तो और नीचा है। औरत जात का हाथ पकड़ते भी तो नहीं बनता, आँखों देखकर मक्खी निगलनी पड़ती है। उखाड़ ले भाई, जितना तेरा जी चाहे। समझ ले, मैं नहीं हूँ। बड़े आदमी अपनी लाज न रखें, छोटों को तो उनकी लाज रखनी ही पड़ती है।

2.4 औपन्यासिक भाषा की विशिष्टता

उपन्यास की भाषा पर विचार करते हुए उसकी विशिष्टता को तीन दृष्टियों से समझा जा सकता है। उपन्यास कथात्मक विधा होने के कारण कहानी कहने की कला का प्रयोग उपन्यास की भाषा का गुण होना ज़रूरी है। कहानी कहना और सुनना-सुनाना भाषा में रोचकता के बिना संभव नहीं है। इसी तरह कहानी को रचना और दिखाना भी होता है। उपन्यास में जीवन का विस्तृत चित्रण होता है और सूक्ष्म चित्रण भी। इसलिए किस्सागोई को उपन्यास की भाषा का आधार नहीं बनाया जा सकता, लेकिन इसका इस्तेमाल किया जा सकता है। उपन्यास में आधुनिक कहानी की तरह रचना की क्षमता का इस्तेमाल भी ज़रूरी है यानी उपन्यास में कहानी इस तरह कही जानी चाहिए मानो उसे पढ़ने के लिए ही रचा गया हो, लेकिन रचे जाने में सृजनात्मकता की अनेक विशेषताओं का प्रयोग उपन्यास में किया जा सकता है। उपन्यास में दृश्यात्मकता की विशेषता का भी प्रयोग किया जा सकता है। यानी कहानी इस तरह कही जाए मानो हमारे सामने फिल्म चल रही हो। भाषा के द्वारा उपन्यास में इन तीनों विशेषताओं का प्रयोग किया जा सकता है।

2.4.1 कथा कहना

उपन्यास की रचना पढ़ने के लिए होती है, सुनने, कहने के लिए नहीं लेकिन उपन्यासों में किस्सागोई की विशेषताओं का समावेश उपन्यासकार प्रायः करते रहते हैं। उपन्यास की कथा में वैसा ही कौतूहल, रहस्य और नाटकीयता होना ज़रूरी है जो किस्सगोई में होता है। लेकिन केवल इन तत्वों के होने से कौतूहलपूर्ण और मनोरंजन-प्रधान उपन्यास की ही रचना हो सकती है। किसी भी शैली का प्रयोग करते हुए उपन्यास क्यों न लिखा गया हो और उसमें वर्णित स्थितियाँ और मनोभाव कितने ही सूक्ष्म क्यों न हो, उपन्यास में उनका उद्‌घाटन इस तरह किया जाना चाहिए कि पाठक इस उद्‌घाटन के लिए पहले से उत्सुक हों। वह यह जानने के लिए बेचैन हो कि पात्र क्या सोचेगा, क्या करेगा या क्या कहेगा। विभिन्न पात्रों के मध्य भावनाओं, विचारों और कार्यों की ऐसी टकराहट हो कि उससे निरंतर स्थितियाँ बदलती रहे और बदली हुई स्थितियाँ पात्रों में नयी भावनाओं, नए विचारों को पैदा करे और उनकी प्रतिक्रियाएँ नए ढंग से सामने आए। कोई भी उपन्यास प्रभावशाली नहीं हो सकता यदि उसमें

तीव्र गतिशीलता और उसके पात्रों में गहरी बेचैनी न हो। आत्मतुष्ट और निष्क्रिय पात्र उपन्यास में जान नहीं फूंक सकते। ज़ाहिर है कि ऐसी स्थिति में भाषा में भी शिथिलता और अकर्मण्यता व्यक्त होगी। हाँ, यह हो सकता है कि कई बार पात्र या परिस्थिति ऊपर से देखने पर ठहरी हुई बोझिल और शिथिल नज़र आए लेकिन उनमें गहरे रूप में बेचैनी और बदलाव की आकांक्षा व्यक्त होती दिखाई दे। ऐसा आभास उपन्यासकार भाषा के माध्यम से ही व्यक्त करेगा।

उपन्यास में घटना प्रधानता के अभाव का अर्थ यह नहीं है कि उपन्यास बोझिल और ऊबाऊ हो। कोई भी उपन्यास बोझिल और ऊबाऊ होकर श्रेष्ठ नहीं हो सकता। घटना प्रधानता उपन्यास को बोझिल होने से नहीं बचाती बल्कि उसका पूरा विन्यास ऐसा होना चाहिए कि पाठक में हर स्तर पर पढ़ने की उत्सुकता जाग्रत हो। यह लेखकीय क्षमता पर निर्भर करता है जिसमें कथा का विन्यास, चरित्र-चित्रण, शैली का रचनात्मक प्रयोग और उद्देश्य के अनुरूप अन्य तत्वों का पारस्परिक संयोजन आवश्यक होता है। लेकिन ये सभी कार्य भाषा के माध्यम से ही संपन्न होते हैं। भाषा ही लेखक का औजार है इसलिए उपन्यासकार के लिए यह ज़रूरी है कि वह न सिर्फ भाषा पर अधिकार हासिल करे बल्कि उसके सृजनात्मक प्रयोग में दक्ष हो।

उपन्यास की कथा में निरंतरता, संगति और आवश्यकतानुसार मोड़, घुमाव और उतार-चढ़ाव से कहानी कहने की क्षमता का विकास होता है। 'रंगभूमि' में एक अंधे भिखारी से ज़मीन का छोटा-सा टुकड़ा हासिल करने की मामूली लड़ाई एक बड़े जन संघर्ष में तब्दील हो जाती है, यह कथा कहने की लेखकीय क्षमता का ही परिणाम है। निराशा के खास क्षण में सूरदास की संकल्प शक्ति उपन्यास की कथा के विकास का पूर्व संकेत की नहीं देती वरन् उस विराट संघर्ष का भी संकेत देती है, जो 'रंगभूमि' को कालजयी कृति बना देता है।

सहसा वह चौंक पड़ा। किसी ओर से आवाज़ आयी–तुम खेल में रोते हो।

मिठुआ घीसू के घर से रोता चला आता था, शायद घीसू ने मारा था। इस पर घीसू उसे चिढ़ा रहा था–खेल में रोते हो!

सूरदास कहाँ तो नैराश्य, ग्लानि, चिंता और क्षोभ के अपार जल में गोते खा रहा था, कहाँ यह चेतावनी सुनते ही उसे ऐसा मालूम हुआ, किसी ने उसका हाथ पकड़कर किनारे पर खड़ा कर दिया। वाह! मैं तो खेल में रोता हूँ। कितनी बुरी बात है। लड़के भी खेल में रोना बुरा समझते हैं, रोने वाले को चिढ़ाते हैं, और मैं खेल में रोता हूँ। सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाजी-पर-बाजी हारते हैं, चोट-पर-चोट खाते हैं, धक्के-पर-धक्के सहते हैं, पर मैदान में डटे रहते हैं उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़ते। हिम्मत उनका साथ नहीं छोड़ती, दिल पर मालिन्य के छींटे भी नहीं आते, न किसी से जलते हैं, न चिढ़ते हैं। खेल में रोना कैसा? खेल हँसने के लिए, दिल बहलाने के लिए है, रोने के लिए नहीं।

सूरदास उठ खड़ा हुआ, और विजय-गर्व की तरंग मे राख के ढेर को दोनों हाथों से उड़ाने लगा।

आवेग में हम उद्दिष्ट स्थान से आगे निकल जाते हैं। वह संयम कहाँ है, जो शत्रु पर विजय पाने के बाद तलवार को म्यान में कर ले?

एक क्षण में मिठुआ, घीसू और मुहल्ले के बीसों लड़के आकर इस भस्म-स्तूप के चारों ओर जमा हो गए और मारे प्रश्नों के सूरदास को परेशान कर दिया। उसे राख फेंकते देखकर सबों को खेल हाथ आया। राख की बर्षा होने लगी। दम-के-दम में सारी राख बिखर गयी, भूमि पर केवल काला निशान रह गया।

मिठुआ ने पूछा–दादा, अब हम रहेंगे कहाँ?

सूरदास–दूसरा घर बनाएँगे।

मिठुआ–और कोई फिर आगे लगा दे?

सूरदास–तो फिर बनाएँगे।

मिठुआ–और फिर लगा दे?

सूरदास–तो हम भी फिर बनाएँगे।

मिठुआ–और कोई हजार बार लगा दे?

सूरदास–तो हम हजार बार बनाएँगे।

बालकों को संख्याओं से विशेष रुचि होती है। मिठुआ ने फिर पूछा–और जो कोई सौ लाख बार लगा दे?

सूरदास ने उसी बालोचित सरलता से उत्तर दिया–तो हम भी सौ लाख बार बनाएँगे।

लेकिन इसी उपन्यास में प्रेमचंद ने ऐसी कई अवांतर कथाएँ डाल दी हैं जिनका मूलकथा में संबध सदैव जुड़ा नहीं दिखता। ऐसी अवांतर कथाएँ कथा कहने की लेखकीय क्षमता में व्यवधान उत्पन करती हैं। इसके विपरीत 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और बाणभट्ट द्वारा भट्टिनी को मुक्त कराने का लक्ष्य निरंतर गतिशील रहता है। उसमें आशा-निराशा के क्षण लगातार आते हैं। बीच-बीच में कई नए पात्र, अवांतर कथाएँ आती हैं लेकिन मूलकथा इनके कारण न शिथिल पड़ती है और न ही उलझती हैं।

2.4.2 कथा रचना

उपन्यास की कथा कितनी ही स्वाभाविक, सहज और यथार्थपरक क्यों न लगे, अंततः उपन्यासकार एक परियोजना के अनुसार उसे रूप देता है। उपन्यास ही नहीं कोई भी साहित्यिक विधा बिना किसी पूर्व योजना के नहीं लिखी जाती। आरंभ में, एक बृहदकाय एक भाव, एक विचार के रूप में ही उपन्यासकार के मन में उत्पन्न हुआ हो, लेकिन उसे उपन्यास का रूप देने के लिए उपन्यासकार को कथावस्तु का एक ढाँचा कल्पित करना पड़ता है, पात्रों के बारे में सोचना होता है, उस देशकाल को तय करना होता है जिसकी एक निश्चित पहचान है क्योंकि ये तीनों चीज़ें एक दूसरे से गहरे रूप में संबद्ध होती है। यदि एक ऋणग्रस्त गरीब किसान को नायक बनाना है तो ज़ाहिर है कि उसकी पृष्ठभूमि कोई गाँव ही होगी, और उनका आवास झोंपड़ी में ही होगा। लेकिन किसी कालेज में पढ़ाने वाला प्रोफ़ेसर या डॉक्टरी का पेशा करने वाली स्त्री वैसे ही गाँव या वैसी ही झोंपड़ी में नहीं रहेंगे। ऐसा होना संभव है लेकिन तब उपन्यासकार को वह वजह बतानी होगी जिसने डॉक्टर और प्रोफेसर को गाँव की झोपड़ी में रहने के लिए प्रेरित किया है। इसके बावजूद किसान का झोपड़ी में रहना और प्रोफेसर का झोंपड़ी में रहना एक-से अर्थ को ध्वनित नहीं करेगा।

उपन्यास की कथा कितनी ही काल्पनिक और अयथार्थपरक क्यों न हो उसका स्वाभाविक और विश्वसनीय लगना ज़रूरी है। फिल्म में नायक द्वारा खलनायक और उसके दसियों साथियों को अकेले पीट देना, कितना ही अतिरंजनापूर्ण क्यों न लगे, फिल्म में उस खास क्षण में वह स्वाभाविक इसलिए लगता है क्योंकि नायक से दर्शक उस समय ठीक इसी चीज़ की अपेक्षा करते हैं। फिल्म का आंतरिक तर्क इस संभावना को स्वाभाविक बना देता है। कहानी की रचना करते हुए उपन्यासकार को भाषा के माध्यम से उसकी स्वाभाविकता और विश्वसनीयता की रक्षा करनी होती है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्टिनी की रक्षा करते हुए महावराह को नदी में विसर्जित करने का प्रसंग इसी आंतरिक तर्क से ही स्वाभाविक बनता है। महामाया को दिया गया वचन भट्ट के लिए पथ प्रदर्शक बन जाता है।

उपन्यास में उपन्यासकार एक फैंटेसी की रचना करता है। उपन्यास कितना ही यथार्थवादी क्यों न हो, लेकिन वह लेखक की मानस रचना है। कथा विकास और चरित्र निर्माण के सारे सूत्र उसके हाथ में होते हैं। यदि वह उपन्यास की रचना करते हुए कलात्मक संयम नहीं रखता और कथा तथा पात्रों को अपनी भावनाओं और विचारों के अनुसार बहने देता है तो उपन्यास रचना में झोल और दरारें पैदा हो सकती है। उसे पात्रों को उनके मनोविज्ञान के अनुसार विकसित होने देना चाहिए। लेकिन एक खास मनोवैज्ञानिक ढाँचे में जीने वाला व्यक्ति भी एक-सी परिस्थिति में एक ही तरह का निर्णय ले, यह ज़रूरी नहीं है। इसलिए लेखक के सामने सदैव नए-नए विकल्प खुलते जाते हैं और रचना करते हुए उसे चुनौती भरे फैसले करने होते हैं। 'अन्ना कैरेनिना' के उदाहरण से निर्मल वर्मा ने उपन्यास में स्वाभाविकता और सांयोगिकता का खुलासा किया है। वे लिखते हैं, "बड़े से बड़े उपन्यास को पढ़ते हुए क्यों यह तकलीफ मन को कोंचती रहती है कि घटनाएँ नितांत दूसरी तरह से घट सकती थीं कि उनके पीछे ऐसा कोई दैवी या प्राकृतिक सेंक्शन नहीं, जो उन्हें किसी दूसरे क्रम में सँजोने से रोक सकता हो। क्यों यह संदेह मन को सालता रहता है कि यदि अन्ना कैरेनिना चाहती, तो अपने जीवन की घटनाओं के पहिए विपरीत दिशा में मोड़ सकती थीं, उनके क्रम को बदल सकती थीं और इस तरह अपने को आत्महत्या के भयावह अंत से बचा सकती थीं? यह नहीं कि उपन्यास में उसकी मृत्यु विश्वसनीय और अनिवार्य नहीं जान पड़ती—यही तो सबसे बड़ी विडंबना है—उपन्यास में जो चीज़ सबसे अधिक अनिवार्य और स्वाभाविक जान पड़ती है—जीवन के प्रवाह में वही चीज़ अचानक सांयोगिक (contingent) और संदिग्ध-सी बन जाती है।" (शताब्दी के ढलते वर्षों में, पृ. 59)

उपन्यास को जीवन की पुनर्रचना कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि वह जीवन की अनुकृति है बल्कि उपन्यास को जीवन की तरह लगते हुए भी जीवन से अलग लगना चाहिए। जीवन की अनुकृति बनकर उपन्यास में सृजनशीलता के गुण नहीं आ सकते। एक गाय पालने की किसान की इच्छा होरी और धनिया के जीवन का कैसा अभिशाप बन जाता है, 'गोदान' इसी अभिशाप को पर्त-दर-पर्त उद्घाटित करता जाता है और होरी की मृत्यु के समय धनिया द्वारा किए गए 'गोदान' के साथ मानो इस इच्छा का त्रासद अंत हो जाता है। अंत के इस पूरे प्रसंग में व्यंग्य, विडंबना, करुणा और विषाद का ऐसा अनोखा संगम है कि बहुत कम उपन्यास इतनी गहरी बेचैनी पैदा करते हुए खत्म होते हैं।

> *होरी की चेतना लौटी। मृत्यु समीप आ गई थी, आग दहकने वाली थी। धुआँ शांत हो गया था। धनिया को दीन आँखों से देखा, दोनों कोनों से आँसू की दो बूँदें ढ़लक पड़ीं। क्षीण स्वर में बोला—मेरा कहा-सुना माफ करना धनिया! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गई। अब तो यहाँ के रुपए क्रिया-करम में जाएँगे। रो मत धनिया, अब कब तक जिलाएगी? सब दुर्दशा तो हो गई। अब मरने दे।*
>
> *और उसकी आँखें फिर बंद हो गईं। उसी वक्त हीरा और शोभा डोली लेकर पहुँच गए। होरी का उठाकर डोली में लिटाया और गाँव की ओर चले।*
>
> *गाँव में यह खबर हवा की तरह फैल गई। सारा गाँव जमा हो गया। होरी खाट पर पड़ा शायद सब कुछ देखता था, सब कुछ समझता था पर ज़बान बंद हो गई थी। हाँ, उसकी आँखों से बहते हुए आँसू बतला रहे थे कि मोह का बंधन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दुःख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्तव्य और निपटाए हुए कामों का क्या मोह! मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है, जिनके साथ हम अपना कर्तव्य न निभा सके, उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम न पूरा कर सके।*
>
> *मगर सब कुछ समझकर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आँखों से आँसू गिर रहे थे, मगर यंत्र की भाँति दौड़-दौड़कर कभी आम भूनकर पना*

बनाती, कभी होरी की देह में गेहूँ की भूसी की मालिश करती। क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेजकर डॉक्टर बुलाती।

हीरा ने रोते हुए कहा—भाभी, दिल कड़ा करो, गो-दान करा दो, दादा चले।

धनिया ने उसकी ओर तिरस्कार की आँखों से देखा। अब वह दिल को और कितना कठोर करे? अपने पति के प्रति उसका जो कर्म है, क्या वह उसको बताना पड़ेगा? जो जीवन का संगी था, उसके नाम को रोना ही क्या उसका धर्म है?

और कई आवाज़ें आयीं—हाँ, गो-दान करा दो, अब यही समय है।

धनिया यंत्र की भाँति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली—महराज, घर में गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो-दान है।

और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

2.4.3 कथा दिखाना

उपन्यास के संदर्भ में रैल्फ फॉक्स ने इस बात पर विचार किया है कि नए मानव की आवश्यकताओं को पूरा करने, उसकी आशा-आकांक्षाओं को व्यक्त करने तथा उसकी तूफानी दुनिया को चित्रित करने में सिनेमा किस हद तक कामयाब है। उनके अनुसार, नया सिनेमा जो ध्वनि और रंग से लैस है तथा संगीत का उपयोग करने की क्षमता से युक्त है, काफी बड़ी हद तक ऐसा करने में सफल हा सकता है, लेकिन "वह पूर्णतया ऐसा नहीं कर सकता।" स्वयं उनके शब्दों में, "उपन्यास...मानव का कहीं अधिक पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकता है तथा उस महत्वपूर्ण आंतरिक जीवन की झांकी दिखा सकता है जो कि मानव के निरे नाटकीय क्रियाशील रूप से भिन्न होती है और जो सिनेमा की क्षमता से बाहर की चीज़ है।" रैल्फ फॉक्स के उपर्युक्त कथन ने सिनेमा के ऊपर उपन्यास की उपादेयता को स्थापित कर दिया है, लेकिन उपन्यास सिनेमा तकनीक का इस्तेमाल कर दृश्यात्मकता के क्षेत्र में भी प्रवेश कर सकता है। उपन्यास ऐसा सिनेमा के प्रभाव के कारण करता रहा हो, यह सत्य नहीं है। लेकिन शब्दों से दृश्यों को रचना उपन्यास की गुणवत्ता को बढ़ाने में सहायक हो सकता है। उपन्यासकार लगातार ऐसे प्रसंगों की सृष्टि करते रहते हैं जिनको दृश्य रूप में प्रस्तुत करने से उस प्रसंग का प्रभाव ज्यादा पड़ता है। 'निर्मला' का प्रसंग जब निर्मला अंतिम साँसे ले रही होती है, ऐसा ही दृश्यात्मक प्रसंग है।

निर्मला की सांस बड़े वेग से चलने लगी। फिर खाट पर लेट गई और बच्ची की ओर एक ऐसी दृष्टि से देखा जो उसके जीवन की संपूर्ण विपत्कथा की बृहद् आलोचना थी। वाणी में इतनी सामर्थ्य कहाँ? तीन दिनों तक निर्मला की आँखों में आंसुओं की धारा बहती रही। वह न किसी से बोलती थी, न किसी की ओर देखती थी, और न किसी का कुछ सुनती थी। बस रोए चली जाती थी। उस वेदना का कौन अनुमान कर सकता है?

चौथे दिन संध्या समय वह विपत्तिकथा समाप्त हो गई। उसी समय जब पशु-पक्षी अपने-अपने बसेरे को लौट रहे थे, निर्मला का प्राण पक्षी भी दिन भर शिकारियों के निशानों, शिकारी चिड़ियों के पंजों और वायु के प्रचंड झोंकें से आहत और व्यथित अपने बसेरे की ओर उड़ गया।

लेकिन यहाँ जिस बिंब को प्रेमचंद ने प्रस्तुत किया है, वह फिल्म मे यथावत् नहीं प्रस्तुत किया जा सकता। जब उपन्यासकार मानसिक दशा को दृश्य बिंब मे बाँधता है तो वह काव्य भाषा की विशेषताओं का इस्तेमाल करता है। उपन्यास में फिल्म की तरह के दृश्य बिंब रूप में निर्मित किए जा सकते हैं खासतौर पर बाहरी स्थितियों के वर्णन में दृश्यात्मकता को शब्दबद्ध कर उपन्यासकार उसकी पूरी गतिशीलता और रूप-रंग की विशिष्टता को अभिव्यक्त

कर सकता है। भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' **का** निम्नलिखित प्रसंग इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

> *आले में रखे दीये ने फिर से झपकी ली। ऊपर, दीवार में, छत के पास से दो ईंटें निकली हुई थीं। जब-जब वहाँ से हवा का झोंका आता, दीये की बत्ती झपक जाती और कोठरी की दीवारों पर साए से डोल जाते। थोड़ी देर बाद बत्ती अपने-आप सीधी हो जाती और उसमें से उठने वाली धुएँ की लकीर आले को चाटती हुई फिर से ऊपर की ओर सीधे रुख जाने लगती। नत्थू का साँस धौंकनी की तरह चल रहा था और उसे लगा जैसे उसके साँस के ही कारण दीये की बत्ती झपकने लगी है।*
>
> *नत्थू दीवार से लगकर बैठ गया। उसकी नज़र फिर सुअर की ओर उठ गयी। सुअर फिर से किकियाया था और अब कोठरी के बीचोबीच कचरे के किसी लसलसे छिलके को मुँह मार रहा था। अपनी छोटी-छोटी आँखे फर्श पर गाड़े गुलाबी-सी थूथनी छिलके पर जमाए हुए था। पिछले दो घंटे से नत्थू इस बदरंग, कँटीले सुअर के साथ जूझ रहा था। तीन बार सुअर की गुलाबी थूथनी उसकी टाँगों को 'चाट' चुकी थी और उनमें से तीखा दर्द उठा रहा था। आँखें फर्श पर गाड़े सुअर किसी वक्त दीवार के साथ चलने लगता, मानो किसी चीज़ को ढूँढ़ रहा हो, फिर सहसा किकियाकर भागने लगता। उसकी छोटी-सी पूँछ जहरीले डंक की तरह, उसी पीठ पर हिलती रहती, कभी उसका छल्ला-सा बन जाता, लगता उसमें गाँठ पड़ जाएगी, मगर फिर वह अपने-आप ही खुलकर सीधी हो जाती थी। बायीं आँख से मवाद बहकर सुअर के थूथने तक चला आया था। जब चलता तो अपनी बोझिल तोंद के कारण दाएँ-बाएँ झूलने-सा लगता था। बार-बार भागने से कचरा सारी कोठरी में बिखर गया था। कोठरी में उमस थी। कचरे की जहरीली बास, सुअर की चलती साँस और कड़वे तेल के धुएँ से कोठरी अटी पड़ी थी। फर्श पर जगह-जगह खून के चित्ते पड़ गए थे लेकिन जरक के नाम पर सुअर के शरीर में एक भी जख्म नहीं हो पाया था। पिछले दो घंटे से नत्थू जैसे पानी में या बालू के ढेर में छुरा घोंपता रहा था। कितनी ही बार वह सुअर के पेट मे और कंधों पर छुरा घोंप चुका था। छुरा निकालता तो कुछ बूँदे खून की फर्श पर गिरतीं, पर जख्म की जगह एक छोटी-सी लीक या छोटा-सा धब्बा-भर रह जाता। जो सुअर की चमड़ी में नज़र तक नहीं आता था। और सुअर गुर्राता हुआ या तो नत्थू की टाँगों को अपनी थूथनी का निशाना बनाता या फिर से कमरे की दीवार के साथ-साथ चलने अथवा भागने लगता। छूरे की नोक चर्बी की तहों को काटकर लौट आता थी, अंतड़ियों तक पहुँच ही नहीं पाती थी।*

2.5 बोलचाल की भाषा के विविध रंग-रूप

उपन्यास की भाषा निबंध की भाषा नहीं हो सकती। अपने आदर्श रूप में वह नाटक और कहानी की मिलीजुली भाषा हो सकती है। लेकिन उपन्यास में आवश्यकलानुसार निबंध, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रावृत्तांत, व्यंग्य की भाषा का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। यहाँ तक कि काव्य भाषा की विशेषताओं को भी उपन्यास में इस्तेमाल किया जा सकता है। उपन्यास में काव्यभाषा की विशेषताओं के बारे में अध्ययन हम भाग 2.6 में करेंगे।

उपन्यास के लिए आदर्श भाषा बोलचाल की भाषा है। बोलचाल की भाषा में गतिशीलता, नाटकीयता और जीवंतता होती है। स्थितियों, भावनाओं और अवसरों के अनुसार बोलचाल की भाषा का रूप बदलता रहता है। परिवेश, स्वभाव, शिक्षा, उम्र, स्तर के अनुसार बोलचाल की भाषा में फर्क आता है। भाषा कभी सहज, कभी नाटकीय, कभी भावपूर्ण, कभी रूक्ष और कटु, कभी करुणाद्र, कभी व्यंग्यपूर्ण बन जाती है। उपन्यास में बोलचाल की भाषा के इन सभी

गुणों की आवश्यकता निरंतर बनी रहती है। भाषा की ऐसी कुछ विशेषताओं की चर्चा इस भाग में की गई है।

2.5.1 व्यंग्यात्मकता

व्यंग्य भाषा को जीवंत बनाता है। उपन्यास में ऐसी कई स्थितियाँ आती हैं जब व्यंग्य का सहारा लेकर उन स्थितियों को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया जा सकता है। प्रेमचंद व्यंग्य की इस शक्ति का उपयोग उपन्यासो में प्रायः करते रहे हैं। उपन्यास में व्यंग्य का ऐसा उपयोग 'गोदान' जैसे त्रासद उपन्यास में भी किया गया है जबकि व्यंग्य को उपन्यास की पूर्ण शैली के रूप में 'राग दरबारी', 'एक चूहे की मौत', 'रानी नागफनी की कहानी' जैसे उपन्यासों में देखा जा सकता है। 'एक चूहे की मौत' का व्यंग्य उसकी प्रतीकात्मकता में निहित है जबकि 'राग दरबारी' का व्यंग्य उसकी कथावस्तु, पात्रों, शैली और भाषा सभी में निहित है।

> *वहीं एक ट्रक खड़ा था। उसे देखते ही यक़ीन हो जाता था, इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है। जैसे कि सत्य के होते हैं, इस ट्रक के भी कई पहलू थे। पुलिस वाले उसे एक ओर से देखकर कह सकते थे कि वह सड़क के बीच में खड़ा है, दूसरी ओर देखकर ड्राइवर कह सकता था कि वह सड़क के किनारे पर है। चालू फ़ैशन के हिसाब से ड्राइवर ने ट्रक का दाहिना दरवाज़ा खोलकर डैने की तरह फैला दिया था। इससे ट्रक की खूबसूरती बढ़ गयी थी, साथ ही यह ख़तरा मिट गया था कि उसके वहाँ होते हुए कोई दूसरी सवारी भी सड़क के ऊपर से निकल सकती है।*

2.5.2 मुहावरे और लोकोक्ति

उपन्यास की भाषा जनभाषा के नज़दीक तभी पहुँच पाती है जब उसमें जनभाषा के गुण समाविष्ट हो। जनभाषा तत्सम शब्दों, लंबे वाक्यों और पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग से निर्मित नहीं होती। ऐसी भाषा निर्मित होती है, तद्‌भव और देशज शब्दों के प्रयोग से। लोगों के बीच प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से और समग्र रूप में ऐसी भाषा से जो स्वाभाविक, सहज, सरल और परदर्शी हो, जो पात्रों, स्थितियों और भावनाओं के अनुरूप हो। 'रंगभूमि' का निम्नलिखित अंश इस दृष्टि से उल्लेखनीय है :

> *बजरंगी के विचार में नायकराम ने उतनी मिन्नत-समाजत न की थी, जितनी करनी चाहिए थी। आए थे अपना काम निकालने कि हेकड़ी दिखाने। दीनता से जो काम निकल जाता है, वह **डींग मारने** से नहीं निकलता। नायकराम ने तो लाठी कंधे पर रखी, और चले। बजरंगी ने कहा—मैं ज़रा गोरुओं को देखने जाता हूँ, उधर से होता हुआ आऊँगा। यों बड़ा अक्खड़ आदमी था, **नाक पर मक्खी न बैठने देता**। सारा मुहल्ला उसके क्रोध से काँपता था, लेकिन क़ानूनी कार्रवाइयों से डरता था। पुलिस और अदालत के नाम से ही उसके **प्राण सूख जाते** थे। नायकराम को नित्य ही आदालत से काम रहता था, वह इस विषय में अभ्यस्त थे। बजरंगी को अपनी ज़िंदगी में कभी गवाही देने की भी नौबत न आयी थी। नायकराम के चले आने के बाद ताहिर अली भी घर चले गए, पर बजरंगी वहीं आस-पास टहलता रहा कि वह बाहर निकलें, तो अपना दुखड़ा सुनाऊँ।*

प्रेमचंद की भाषा में जो रवानगी, जो सहजता नज़र आती है, उसकी वजह यही है कि वे पात्र के मनोभावों के अनुसार भाषा को बदलने में माहिर हैं। प्रेमचंद के प्रभाव के कारण हिंदी में उपन्यास की भाषा पर बोलचाल की भाषा का नियंत्रण रहा लेकिन प्रेमचंद की बाद की पीढ़ी के लेखक जिन्होंने अपने उपन्यासों में शहरी मध्यवर्गीय जीवन को प्रमुखता से चित्रित किया, उनकी भाषा का आदर्श प्रेमचंद की भाषा से अलग था।

मैं अपने पहले बीते हुए असंख्या युगों का निचोड़ हूँ। एक निर्जीव धूमकेतु से इस पृथ्वी के जन्म की, उस पर अत्यंत प्राथमिक जीवन के उद्भव की और उससे उत्पन्न अनेक विभिन्न जातियों के उद्भिज, अंडज, स्वेदज और पिंडज जीव-जंतुओं की वसीयत की छाप मुझ पर है, पिछले करोड़ों वर्षों से निरंतर उन्नत होती हुई नृजाति के उच्चतम आदर्शों का केंद्रीभूत पूंज भी मैं ही हूँ। इस दृष्टि से, मैं जो कुछ हूँ, अपना कुछ नहीं हूँ, नया कुछ नहीं हूँ। मैं किसी अत्यंत प्राचीन ग्रंथ का एक नया संशोधित, संवर्धित और सटीक-सटिप्पण संस्करण हूँ, जिसके मूल लेखक का पता नहीं।

और मैं नया हूँ, अपूर्व हूँ। मेरे जीवन का एक क्षण भी पहले कभी नहीं हुआ। मैं एक नई वस्तु हूँ, एक नई प्रतिज्ञा हूँ, जिसे भविष्य पूरा करेगा, एक शिक्षा हूँ जो भविष्य के लिए रह जाएगी।

शेखर : एक जीवनी की उपर्युक्त भाषा का कारण लेखकीय आदर्श ही नहीं है, वरन् इसमें निहित है कि 'गोदान' से नितांत भिन्न शेखर एक शहरी, उच्च शिक्षा प्राप्त, मध्यवर्गीय, विचारवान् युवक है जाहिर है। कि शेखर की भाषा की तुलना यदि किसी से की जा सकती है तो 'गोदान' के मेहत से।

मेहता ने एक मिनट तक मौन रहने के बाद कहा—हाँ, हैं, लेकिन मैं समझता हूँ कि नारी केवल माता है, और उसके उपरांत वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है। एक शब्द में उसे लय कहूँगा—जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी। आप मिस्टर खन्ना के विषय में इतना ही समझ लें कि वह अपने होश में नहीं हैं। वह जो कुछ कहते है या करते हैं, वह उन्माद की दशा में करते हैं, मगर यह उन्माद शांत होने में बहुत दिन न लगेंगे, और वह समय बहुत जल्द आएगा, जब वह आपको अपनी इष्टदेवी समझेंगे।

लेकिन बोलचाल की भाषा का प्रभाव उपर्युक्त दोनों भाषाओं पर देखा जा सकता है। अज्ञेय की भाषा पर बोलचाल की भाषा का कम प्रभाव है जबकि गोदान में मेहता की भाषा बोलचाल के अधिक नज़दीक है। शेखर की भाषा में किताबीपन है। वह अनुवाद के निकट और अधिक तत्सम युक्त भाषा है।

बोलचाल की भाषा मुहावरे, लोकोक्ति और व्यंग्य से ही निर्मित नहीं होती उसमें रचनात्मकता के वे सभी तत्व शामिल होते हैं जिनको प्रायः साहित्य और काव्य की भाषा का गुण माना जाता है। बोलचाल की भाषा की विशेषता यह भी होती है कि उसमें पात्रों, परिवेश, मनःस्थिति, बाह्य परिस्थिति आदि के अनुरूप शब्द चयन और वाक्य रचना का ध्यान रखना होता है। बोलचाल की भाषा का मतलब ही है कि रोजमर्रा के जीवन में इस्तेमाल होने वाली भाषा की विशेषताओं का प्रयोग। तत्सम शब्दों का कम इस्तेमाल, तद्भव, देशज और बोलचाल में प्रचलित दूसरी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग आवश्यकतानुसार मुहावरे लोकोक्ति, यहाँ तक कि लोक जीवन में प्रचलित गालियों का प्रयोग (द्रष्टव्य : आधा गाँव, मुरदा घर) रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग। इन सबसे उपन्यास की भाषा अधिक रचनात्मक और संप्रेषणीय बन जाती है। अगले भाग में हम उपन्यास में काव्य भाषा की विशेषताओं के प्रयोग पर विचार करेंगे।

2.6 काव्य भाषा के उपकरणों का प्रयोग

उपन्यास में काव्य भाषा के उपकरणों का प्रयोग करना गलत नहीं है बल्कि उपयुक्त स्थान पर इनका उपयोग उपन्यास की भाषा के स्तर को ऊपर उठा देता है। आमतौर पर यह माना

जाता है कि प्रेमचंद की परंपरा के प्रगतिशील कथाकारों की भाषा में काव्य भाषा के गुण नहीं होते। यह विशेषता प्रसाद, अज्ञेय, निर्मल वर्मा की परंपरा के भाववादी-व्यक्तिवादी रचनाकारों में ही मिलती है, लेकिन यह बात सही नहीं है। स्वयं प्रेमचंद के उपन्यासों में हमें कदम-कदम पर काव्य भाषा की विशेषताओं के गुण मिलते हैं।

> *होरी कंधे पर लाठी रखकर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आलंकमय कम्पन-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के संपूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय-दान दे रही थी। उसके अंतःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकलकर होरी को अपने अंदर छिपाए लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था जिसे पकड़े हुए सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा, बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना-शक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखो वाले आदमी को हो सकता है?*

उपर्युक्त अंश की भाषा की काव्यात्मकता कितनी स्पष्ट है, यह यहाँ बताने की आवश्यकता नहीं है। काव्य भाषा के उपकरणों का प्रयोग केवल उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक जैसे अलंकारों के उपयोग से ही नहीं, उसकी भाषा में बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग और उसमें गीति तत्व का प्रभाव भी देखा जा सकता है। निर्मल वर्मा के उपन्यास 'वे दिन' का उदाहरण द्रष्टव्य है :

> *तब सहसा मुझे वह आवाज़ सुनाई दी थी। आवाज़ भी नहीं—महज़ एक सरसराहट—बर्फ और धूप में दबी हुई। मुझे हमेशा यह आवाज़ अचानक अकेले में पकड़ लेती थी, या शायद जब मैं अकेला होता था, तभी उसे सुन पाता था। वह दरिया की ओर से आती थी—किंतु वह दरिया की ही आवाज़ है, इसमें मुझे संदेह था। वह सिर्फ़ हवा हो सकती थी—तीखी सफ़ेद और आकारहीन। या सिर्फ़ शहर का शोर, जो पुराने मकानों के बीच आते ही अपना स्वर बदल देता था। घरों के बीच एक गिरता हुआ नोट—पेड़ों, छतों, गलियों के 'की-बोर्ड' पर सरसराता हुआ बर्फ की सफेदी पर एक भूरी-सी आहट-सा।*

अज्ञेय के यहाँ हम काव्यात्मक भाषा की सौंदर्यात्मक छटा देख सकते हैं। बाह्य स्थिति और आंतरिक भावों का ऐसा भावपूर्ण चित्रण बहुत कम उपन्यासकारों के यहाँ देखने को मिलता है। निम्नलिखित अंश में शेखर जहाँ एक ओर बाह्य परिवेश का वर्णन कर रहा है, वहीं दूसरी ओर स्वयं उसकी मनःस्थिति का चित्रण भी मिलता है।

> *चाँद निकल रहा है। नाव की गति से नदी पर उठी हुई छोटी-छोटी मछलियाँ चाँदनी में चमककर परे हट जाती हैं, मानो बुला रही हों। सतह के नीचे भी छोटी-छोटी बिजली से चमकने वाली मछलियाँ इधर-उधर भागकर मानो हरी आग से कुछ लिखती जाती हैं। उनके भागने से आलोड़ित पानी भी किसी प्रकाश से चमक उठता है, मानो उसमें भी वह हरी आग लगी हुई है...नाव भी चाँदनी में धुल-सी गई है, और आलोक में उसकी गति मानो और भी शब्दहीन हो गई है। गर्मी के कारण मल्लाह भी चुप हैं...रहस्य, रहस्य, रहस्य...शेखर मानो धीरे-धीरे अपने आपमें से निकलने लगता है, खुलने लगता है, इस व्याप्त रहस्यमय मौन से मिलकर स्वस्थ होने लगता है...होस्टल के लड़के, कालेज की लड़कियाँ, शहर के लोग, सब उसकी चेतना में से मिटने लगते हैं, उनके द्वारा पाए हुए आघात, घाव, इस स्वच्छ चाँदनी में मैल की तरह धुलने लगते हैं...उसकी बाँह थक रही है, वह हाथ की बजाय अपनी गर्दन वहाँ अटकाकर, और पैर छत के सिरे में बँधी हुई एक रस्सी की*

गाँठ में अटकाकर सीधा लेट जाता है और पाता है कि वह फिसलता नहीं, लेट सकता है...थकान उसे आती है बड़ी मीठी थकान, पर मस्तिष्क उसका भरा आ रहा है उन स्कूल के बच्चों से, उनकी मुग्ध दृष्टि से, इस मुग्ध चाँदी से, और आज न जाने क्यों शारदा के ध्यान से भी...शारदा को देखे दो वर्ष हो गए, न जाने वह है कहाँ, शेखर ने याद नहीं किया, लेकिन आज इतने दिन बाद, इतनी कलह और कटुता के बाद, इस एक स्वच्छ, शांत, स्नेह-भरे क्षण में, वह इस इस सारे रहस्य का हिस्सा बनकर आयी है....

शारदा...थकान...चाँदनी...शारदा...

अगर वह सो सकता–शादा को स्वप्न में देख सकता–सो सकता...

प्रतीकात्मकता भी काव्य भाषा का गुण मानी जाती है। लेकिन प्रतीकों का प्रयोग सदैव काव्यात्मक रूप में हो, यह आवश्यक नहीं है। बदीउज्जमाँ के उपन्यास 'एक चूहे की मौत' में चूहा प्रतीक है, लेकिन उपन्यास में चूहे का वर्णन कहीं भी भाषा को काव्यात्मक नहीं बनाता। दरअसल उपन्यास का कथ्य काव्यात्मक भाषा का प्रयोग करने की अनुमति नहीं देता।

लेकिन यह मनोदशा बहुत देर तक नहीं रहती थी। वह बहुत सोचता रहता है। यह उसकी आदत बन गयी है। निरंतर सोचते रहने के कारण ही उसे चूहे इतने निरर्थक और प्रयोजनहीन लगते हैं। वास्तव में ऐसा नहीं है। कोई भी चूहा अर्थहीन नहीं है। और यह बात है कि हर चूहे की अर्थवत्ता का उसे ज्ञान नहीं है। हो भी नहीं सकता। चूहे तो लाखों की संख्या में हैं। और जितने चूहे हैं उतने ही अर्थ हैं। हरेक चूहे का कोई-न-कोई अर्थ है। सब चूहों के अर्थ वह नहीं जानता। लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं हो सकता कि उनका कोई अर्थ ही नहीं है। यदि ये निरर्थक होते, इनकी कोई उपयोगिता न होती, कोई सार्थकता न होती तो इन्हें इतना महत्व कैसे मिल सकता था। इनके पीछे इतने सारे लोग क्यों भागते? यह तो हो सकता है कि कुछ चूहों का महत्व बहुत अधिक हो, कुछ का उनसे कम और कुछ का और भी कम। लेकिन किसी भी चूहे को बिल्कुल महत्वहीन नहीं माना जा सकता। दरअसल चूहों के महत्व से ही चूहेमार के महत्व का अनुमान लगाया जाता था। जो चूहेमार बड़े चूहे मारते उनका महत्व अधिक था। चूहे जितने बड़े होते थे उसी अनुपात से चूहेमार की अहमियत का अंदाज़ा लगाया जाता था।

इसके विपरीत बिंबों का प्रयोग उपन्यास की भाषा में काव्यात्मकता के गुण को बढ़ा देता है 'पथेर पांचाली' का निम्नलिखित अंश जिसमें रचनाकार ने बरसात के वर्णन के लिए देवासुर संग्राम के बिंब का प्रयोग किया है। उपन्यास की भाषा में ऐसे प्रयोग काव्य भाषा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

दो-एक दिन में तेज़ वर्षा शुरू हुई। पुरबैया हाहाकर करती हुई चलने लगी। जहाँ भी छोटे-बड़े गड़हे थे, वे लबालब भर गए। कच्ची सड़क पर घुटने तक पानी था। बांस की झाड़ी में दिन-रात आंधी की सांय-सांय बनी रहती थी। जहाँ-तहाँ बांस मिट्टी में लोट रहे थे। आसमान में बादलों के बीच कहीं कोई दरार नहीं थी। बीच-बीच में कुछ समय के लिए अंधेरा गहरा हो जाता था। काले-काले बादल मनमाने ढंग से उड़ते हुए पूरब से पश्चिम जा रहे थे, जैसे दूर आकाश में देवताओं और असुरों में महा संग्राम छिड़ा हुआ हो और किसी कुशल सेनापति के परिचालन में दैत्यों की विराट सेना अक्षोहिणी के बाद अक्षौहिणी जल, थल और अंतरिक्ष पर छाकर अदृश्य रथी और महारथियों के नेतृत्व में आंधी की तेज़ी से आगे बढ़ रही हो। उधर देवताओं की सेना जलते हुए वज्र छोड़कर पलक मारते ही इस विशाल काली सेना को छिन्न-भिन्न किए दे रही थी, पर यह ठहरा रक्तबीज का वंश, वह तिसपर भी

नष्ट नहीं होती थी और बादलों की कराल काली छाया पृथ्वी और अंतरिक्ष को अंधकारमय बना रही थी।

पहले 'निर्मला' का जो उदाहरण दिया है, वह मानसिक स्थिति को बिंब में बाँधने के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि उपन्यास में काव्य भाषा का प्रयोग यत्र-तत्र किया जा सकता है, लेकिन उपन्यास की भाषा अंततः गद्य की भाषा होती है और काव्य भाषा का उपयोग गद्य की रचनात्मक उत्कृष्टता बढ़ाने के लिए है।

2.7 सारांश

एम एच डी-13 के दूसरे खड की इस दूसरी इकाई में आपने उपन्यास की भाषा पर विचार किया है। भाषा का प्रयोग दूसरों से संवाद करने के लिए सभी करते हैं लेकिन साहित्य में भाषा के प्रयोग में रचनात्मक नवीनता का गुण होना आवश्यक है।

उपन्यास की भाषा गद्य की भाषा होती है। गद्य की भाषा पद्य की भाषा से अलग होती है। गद्य और पद्य के गुणों के अंतर पर विचार करते हुए बताया गया है कि गद्य की भाषा में वर्णन, विवरण और विश्लेषण की गहरी क्षमता होती है। यद्यपि गद्य में भी पद्य की भाषा के गुणों का प्रयोग होता है।

उपन्यास की भाषा में कथा कहने, कथा रचने और कथा दिखाने की क्षमता का होना आवश्यक है। कथा कहना, किस्सागोई की परंपरा की देन है जबकि कथा रचना उपन्यास की अपनी भाषिक संरचना की देन है। उपन्यास में कथा दिखाना सिनेमाई भाषा को उपन्यास में ढालना है।

उपन्यास की भाषा मूलतः बोलचाल की भाषा के नज़दीक होना चाहिए उसमें पात्र, परिवेश और आंतरिक और बाह्य परिस्थिति के अनुकूल ढलने वाला लचीलापन होना चाहिए। व्यंग्यात्मक, लोकोक्ति, मुहावरे, तद्भव, देशज आदि शब्दों का प्रयोग करते हुए स्वाभाविकता और प्रामाणिकता का भी ध्यान रखना ज़रूरी होता है।

उपन्यास में काव्य भाषा का भी प्रयोग किया जाता है। अलंकारों का ही नहीं, बिंबों और प्रतीकों के साथ काव्य के गीति तत्व, लय, छंद आदि का प्रभाव भी हम उपन्यास की भाषा पर देख सकते हैं।

उपन्यास की भाषा की संरचनात्मक विशेषताओं को समझाने के लिए आवश्यकतानुसार उदाहरण भी दिए गए हैं। उम्मीद है कि इकाई को पढ़ने से आपको उपन्यास की भाषिक संरचना समझने में मदद मिली होगी।

अभ्यास

1 उपन्यास के संदर्भ में गद्य भाषा की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

2. उपन्यास में कथा-निर्मिति में भाषा प्रयोग के विभिन्न प्रयोगों का अंतर स्पष्ट कीजिए।

3. बोलचाल की भाषा और काव्य भाषा के प्रयोग से उपन्यास की भाषा के अंतःसंबंधों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 3 उपन्यास : वर्गीकरण और उसके विभिन्न आधार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 उपन्यास की रचना क्यों : वर्गीकरण के आधार

3.3 रचना का उद्देश्य

- 3.3.1 राजनीतिक उद्देश्य
- 3.3.2 सामाजिक उद्देश्य
- 3.3.3 सांस्कृतिक उद्देश्य
- 3.3.4 साहित्यिक उद्देश्य

3.4 कथावस्तु का स्वरूप

- 3.4.1 घटना-प्रधान कथावस्तु
- 3.4.2 सामाजिक कथावस्तु
- 3.4.3 आँचलिक कथावस्तु
- 3.4.4 ऐतिहासिक कथावस्तु
- 3.4.5 मनोवैज्ञानिक कथावस्तु

3.5 चरित्रों के आधार पर

- 3.5.1. सामाजिक चरित्र
- 3.5.2. वैयक्तिक चरित्र
- 3.5.3. प्रातिनिधिक चरित्र
- 3.5.4. प्रतीकात्मक चरित्र
- 3.5.5. मिथकीय चरित्र

3.6 शैली के आधार पर

- 3.6.1 वर्णनात्मक शैली
- 3.6.2 व्यंग्यात्मक शैली
- 3.6.3 आत्मकथात्मक शैली
- 3.6.4 जीवनीपरक शैली
- 3.6.5 रूपक प्रधान शैली

3.7 जीवन दृष्टि के आधार पर

- 3.7.1 भाववादी-आदर्शवादी दृष्टि
- 3.7.2 यथार्थवादी दृष्टि
- 3.7.3 आधुनिकतावादी और उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टि

3.8 सारांश

3.0 उद्देश्य

एम ए हिंदी से संबंधित पाठ्यक्रम एम एच डी-13 'उपन्यास : स्वरूप और विकास' के दूसरे खंड 'उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-2' की तीसरी इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई का शीर्षक है : 'उपन्यास – वर्गीकरण और उसके विभिन्न आधार'। इस इकाई में आप उपन्यास की रचना के वर्गीकरण के विभिन्न आधारों पर विचार करेंगे। उपन्यास के वर्गीकरण के जिन आधारों की इस इकाई में चर्चा की गई है उनमें उपन्यास रचना के उद्देश्य के आधार पर, कथावस्तु के स्वरूप के आधार पर, चरित्रों के आधार पर, शैली के आधार पर और जीवन दृष्टि के आधार पर प्रमुख हैं। उपन्यासों का वर्गीकरण करने का मकसद उपन्यास विधा की विविधता और बहुलता को समझना है। उपन्यास विधा में रचनात्मक संभावनाएँ कितनी अधिक हैं, इसे आप इस इकाई के अध्ययन से समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

एम एच डी-13 के दूसरे खंड की तीसरी इकाई में आप उपन्यासों के वर्गीकरण के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पहले की इकाई में आपने उपन्यास की भाषा के बारे में

विस्तार से अध्ययन किया था। उपन्यास की भाषा के बारे में विचार करते हुए हमने गद्य और पद्य के अंतर को समझा था और यह भी समझने का प्रयास किया था कि उपन्यास की भाषा में अन्य साहित्यिक विधाओं की विशेषताएँ किस तरह अंतर्निहित होती हैं। इस इकाई का उद्देश्य उपन्यास विधा के विभिन्न वर्गीकरणों को समझना है। अब तक के अपने अध्ययन के दौरान आप ऐतिहासिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, आंचलिक उपन्यास जैसे पदों का उपयोग देखा होगा। आपके मन में यह स्वाभाविक सवाल उपजा होगा कि इन पदों का उपयोग क्यों किया जा रहा है और इसका आधार क्या है। मसलन आँचलिक उपन्यास कहा जा रहा है तो गैर आँचलिक उपन्यास भी होते होंगे। यदि सामाजिक उपन्यास होते हैं तो क्या राजनीतिक उपन्यास भी होते हैं या हो सकते हैं। दूसरा सवाल यह भी पैदा होता है कि उपन्यासों के वर्गीकरण के अध्ययन की आवश्यकता क्यों है। क्या इससे उपन्यास के आस्वादन में मदद मिलती है? क्या इससे उपन्यास को समझने में मदद मिलती है? इस खंड की चौथी इकाई में हम उपन्यास की आलोचना संबंधी दृष्टियों पर विचार करेंगे। इस इकाई का अध्ययन करते हुए आप पाएँगे कि उपन्यास के सैद्धांतिक पक्षों का अब तक आपने जो अध्ययन किया है, उसका प्रयोग उपन्यास की आलोचना संबंधी दृष्टियों के अध्ययन में किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन का एक अन्य पक्ष यह है कि इससे आपको भिन्न-भिन्न तरह के उपन्यासों के बीच के अंतर को समझने में और उनमें परस्पर एकता के आधारों को समझने में मदद मिलेगी। उपन्यासों के वर्गीकरण के विभिन्न आधारों की चर्चा का यह तात्पर्य नहीं है कि एक उपन्यास एक ही ढंग से वर्गीकृत किया जा सकता है। एक उपन्यास शैली के आधार पर एक ढंग से, जीवन दृष्टि के आधार पर दूसरे ढंग से, कथावस्तु के आधार पर तीसरे ढंग से, पात्रों के आधार पर चौथे ढंग से और उद्देश्य के आधार पर पाँचवें ढंग से विभाजित किया जा सकता है। उपन्यासों के वर्गीकरण के इस अध्ययन से आपको उपन्यास की विशेषताओं को समझने में भी मदद मिलेगी।

3.2 उपन्यास की रचना क्यों : वर्गीकरण के आधार

कोई साहित्यकार उपन्यास क्यों लिखता है? क्या सभी उपन्यासकार एक ही उद्देश्य से प्रेरित होकर उपन्यास लिखते हैं। क्या प्रेमचंद, अज्ञेय, यशपाल, कृष्णा सोबती, ओमप्रकाश वाल्मीकि के लेखन का एक ही उद्देश्य है। ग्रामीण जीवन पर आधारित होते हुए भी 'गादोन' को आँचलिक उपन्यास क्यों नहीं कहा जाता। 'झूठा सच' के मध्यवर्ग और 'नदी के द्वीप' के मध्यवर्ग में क्या अंतर है? 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आत्मकथात्मक शैली में क्यों लिखा और 'शेखर : एक जीवनी' को अज्ञेय ने जीवनीपरक शैली में क्यों लिखा? ऐसे बहुत सारे सवाल उपन्यास के संदर्भ में उठते हैं, उठाए जा सकते हैं।

उपन्यास की रचना बिना किसी उद्देश्य के कोई लेखक नहीं करता और सभी उपन्यासकार एक उद्देश्य से प्रेरित होकर उपन्यास नहीं लिखते। यदि उद्देश्य अलग-अलग हैं तो उपन्यास की रचना पर उसका प्रभाव भी अलग-अलग रूपों में दिखाई देगा। उद्देश्य के आधार पर ही लेखक कथावस्तु का चयन करता है। दरअसल, रचनाकार का उद्देश्य अप्रत्यक्ष रूप से, यथार्थ को कथावस्तु में रूपांतरित करने में सहायक होता है। प्रत्येक रचनाकार यथार्थ को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखता है। वह यथार्थ के किस पहलू को महत्वपूर्ण और रचना में शामिल करने के योग्य मानता है, यह उसकी जीवन-दृष्टि और रचना-दृष्टि पर निर्भर करता है। 'गोदान' में होरी द्वारा गाय खरीदने और उस गाय को उसी के भाई हीरा द्वारा जहर दिए जाने की घटना अत्यंत महत्वपूर्ण होते हुए भी केंद्रीय महत्व हासिल नहीं करती। लेकिन कोई अन्य रचनाकार जो 'गोदान' की कथा को भाई-भाई के पारस्परिक संबंध की कथा के रूप में

चित्रित करना चाहता है, इसे केंद्रीय कथा बना सकता था, लेकिन तब 'गोदान' किसान जीवन का महाकाव्य नहीं बनता।

उपन्यास का नायक कौन हो, यह प्रश्न भी बराबर उठता रहा है। लेकिन प्रेमचंद जैसे लेखकों ने आरंभ में ही इस समस्या को काफी हद तक सुलझा लिया था। प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' नायक नहीं नायिका प्रधान है, वह भी एक वैश्या। सुमन कोई आदर्श नायिका नहीं है। बाद में 'निर्मला' की निर्मला भी साधारण स्त्री है। 'प्रेमाश्रम' नायक नहीं खलनायक प्रधान उपन्यास है। उसका केंद्रीय चरित्र ज्ञानशंकर है जो एक बुरा ज़मींदार है। 'रंगभूमि' का नायक सूरदास मामूली अंधा भिखारी है, लेकिन रचनाकार ने उसे जो चारित्रिक उत्कर्षता प्रदान की है, वह उसे गांधी के समकक्ष बना देती है। 'गोदान' के होरी में तो वह तेजस्विता और संघर्ष क्षमता भी नहीं है जो सूरदास में है। इसके बावजूद होरी प्रेमचंद के अमर चरित्रों में सिरमौर है। उपन्यास विधा में चरित्रों की विविधता और साधारणता बाधक नहीं बनती। यह रचनाकार पर निर्भर करता है कि उपन्यास में अपने पात्रों को कितना जीवंत और ऊर्जावान. बनाकर प्रस्तुत करता है।

जिस प्रकार उपन्यास की कथावस्तु जीवन के किसी भी पक्ष से संबंधित हो सकती है, उसी प्रकार चरित्र भी कई प्रकार के हो सकते हैं।

उपन्यास लिखने के लिए उपन्यासकार किसी भी तरह की शैली अपना सकता है। वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक, जीवनीपरक व्यंग्यात्मक, रूपक प्रधान आदि। एक ही उपन्यास में रचनाकार एक से अधिक शैलियों का उपयोग कर सकता है और किसी नई शैली का प्रयोग कर सकता है। विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यासों में शैली के नए प्रयोगों को देखा जा सकता है। ज़ाहिर है कि शैली का चयन रचनाकार अपने उपन्यास की कथावस्तु और उद्देश्य को ध्यान मे रखकर ही करेगा। यदि उपन्यासकार की दृष्टि में उपन्यास के उद्देश्य और कथ्य से अधिक महत्व शैली का होगा तो वह ऐसी शैली और भाषा का उपन्यास में प्रयोग करेगा जिससे उपन्यास में कलात्मक नवीनता उत्पन्न हो। कई बार ऐसी कोशिशें उपन्यास के कथ्य से मेल नहीं खाती और उसमें दरार पड़ जाती है। यह दरार उपन्यास के कुल प्रभाव को क्षीण करती है।

उपन्यास के वर्गीकरण को अंतिम रूप से प्रभावित करती है लेखक की जीवन दृष्टि। लेखक की कला दृष्टि इसी जीवन-दृष्टि का अंग होती है। उपन्यासकार यथार्थवादी है या आधुनिकतावादी या उत्तर आधुनिकतावादी, उसी के अनुसार वह उपन्यास के उद्देश्य, कथ्य और शैली का चयन करता है। आजकल ऐसे रचनाकार भी सामने आ रहे हैं जो न तो यथार्थवादी हैं न आधुनिकतावादी। उनमें से कुछ उत्तर आधुनिकतावादी होने का दावा करते हैं, लेकिन उनकी जीवन दृष्टि परंपरावादी और प्रतिगामी हो सकती है। भारतीयता के नाम पर वे अतीत को ही पुनर्स्थापित करने की कोशिश करते हैं। भारतीय उपन्यास परंपरा में ऐसे लेखक अभी हाशिए पर ही हैं। लेकिन वर्तमान राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक माहौल में ऐसे लेखक रचनात्मक परिवेश पर हावी हो सकते हैं। उपन्यासों के विकास और वर्गीकरण पर विचार करते हुए इस बात को समझना आवश्यक है।

3.3 रचना का उद्देश्य

उपन्यास एक साहित्य विधा है। लेखक किसी भी उद्देश्य से प्रेरित होकर उपन्यास क्यों न लिखे, अंततः उस रचना को उपन्यास होना आवश्यक है। उपन्यास के रूप में उसके मूल्यांकन का आधार उसका 'उपन्यासत्व' है। उपन्यास में उपन्यासत्व क्या है? क्या वह कथावस्तु, पात्र, परिवेश, शैली, भाषा से भिन्न कहीं और विद्यमान होता है? उपन्यास के उद्देश्य का उपन्यासत्व से क्या संबंध है? 'गोदान' की सार्थकता उसके उपन्यास होने में है

या किसान जीवन का महाकाव्य होने में? 'गोदान' जो उपन्यास है, महाकाव्य नहीं, वह उपन्यास महाकाव्य होकर श्रेष्ठ क्यों है? क्या उपन्यास में महाकाव्यत्व उसकी श्रेष्ठता का आधार है? यदि 'मैला आँचल' में महाकाव्य का गुण नहीं है, तो क्या वह श्रेष्ठ नहीं है? यदि वह भी श्रेष्ठ उपन्यास है तो उसकी श्रेष्ठता किसमें निहित है, क्या उसकी आँचलिकता में? लेकिन क्या सभी आँचलिक उपन्यास इसी वजह से श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं? ज़ाहिर है नहीं। उपन्यास के लिए उपन्यास होना पहली शर्त हो सकता है, लेकिन अकेली शर्त नहीं। उपन्यासत्व के आधार पर सिर्फ यह तय होता है कि रचना उपन्यास बन गई है, लेकिन यह उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं बनती। श्रेष्ठता अन्य बातों पर भी निर्भर करती है। उद्देश्य इनमें प्रमुख है। कोई भी श्रेष्ठ रचनाकार महज रचना के लिए रचना नहीं करता, उपन्यास लिखने के लिए उपन्यास नहीं लिखता। उपन्यास लिखने का उसका उद्देश्य कुछ ओर होगा--राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि।

3.3.1 राजनीतिक उद्देश्य

वैसे तो प्रत्येक उपन्यास राजनीतिक होता है लेकिन यहाँ राजनीतिक उपन्यास सिर्फ उन्हें कहा गया है जिसमें राजनीतिक घटनाओं और राजनीति से जुड़े लोगों के जीवन को कथा का आधार बनाया गया है। राजनीतिक जीवन को कथा का हिस्सा बनाने की परंपरा हिंदी में बहुत पहले से है। प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' से लेकर 'गोदान' तक सभी उपन्यासों में राजनीति संबंधी घटनाओं का विवरण उनके उपन्यासों में मिलता है। प्रेमचंद के बाद के प्रायः सभी प्रमुख लेखक यशपाल, नागार्जुन, रेणु, रांगेय राघव, भीष्म साहनी, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी आदि के उपन्यासों में राजनीतिक परिदृश्यों का विस्तार से चित्रण मिलता है। लेकिन राजेंद्र यादव के 'उखड़े हुए लोग', मन्नू भंडारी के 'महाभोज' में राजनीति कथा के केंद्र में है इसलिए इन्हें राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है।

राज़नीतिक उपन्यासों का तात्पर्य यह नहीं है कि उपन्यास में किसी खास राजनीति का समर्थन या विरोध किया गया है और न ही इसका तात्पर्य यह है कि इन उपन्यासों का मकसद किसी खास राजनीतिक पार्टी या नज़रिए का प्रचार करना है। यदि किसी उपन्यास में ऐसा किया गया है तो उसका प्रभाव सतही होगा और साहित्यिक दृष्टि से ऐसा उपन्यास अधिक मूल्यवान नहीं होगा।

3.3.2 सामाजिक उद्देश्य

सामाजिक उद्देश्य को प्रधानता से चित्रित करने वाले उपन्यासों को सामाजिक उपन्यासों के रूप में भी जाना जाता है। सामाजिक का तात्पर्य समाज से संबंधित समस्याओं और मसलों को कथावस्तु का आधार बनाने वाले उपन्यासों से है। मसलन, प्रेमचंद का उपन्यास 'निर्मला' अनमेल विवाह की समस्या को केंद्र में रखकर लिखा गया है इसलिए इसे सामाजिक उपन्यास कहा जा सकता है। 'सेवासदन' में वैश्या उन्मूलन के मुद्दे को कथा का विषय बनाया गया है। इसी तरह प्रेमचंद की बाद की पीढ़ी के उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक विषयवस्तु को केंद्र में रखकर सामाजिक समस्याओं के प्रति पाठकों को जागरूक बनाने का प्रयत्न किया है। सामाजिक प्रश्न वैसे तो प्रत्येक उपन्यास में अवश्य अभिव्यक्त होते हैं। यही नहीं कोई भी उपन्यास सिर्फ एक ही समस्या को केंद्र में रखकर लिखा जाए, यह ज़रूरी नहीं है। मन्नू भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी' तलाक और पुनर्विवाह की समस्या को केंद्र में रखकर लिखा गया है लेकिन इस उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों और एकल परिवार की आंतरिक समस्याओं को भी कथा का विषय बनाया गया है।

किसी समस्या को कथा के केंद्र में रखने का तात्पर्य यह नहीं है कि उपन्यासकार ने उस समस्या के समग्र पहलुओं को उपन्यास में प्रस्तुत कर दिया है और न ही इसका तात्पर्य यह है कि उसमें समस्या के बारे में प्रगतिशील नज़रिया अपनाया गया है। यह तो पाठकों पर निर्भर करता है कि वह उपन्यास की कथावस्तु और उससे निःसृत होने वाले नज़रिए को

किस रूप में ग्रहण करता है। लेकिन यह कहना ज़रूरी है कि प्रत्येक युग का रचनाकार अपने युग की सामाजिक समस्याओं और प्रश्नों के प्रति उपेक्षा का भाव नहीं रख सकता। वह उसे उपन्यास में अवश्य स्थान देता है।

वे उपन्यास भी सामाजिक उपन्यास की श्रेणी में गिने जा सकते हैं जिसमें समाज और व्यक्ति के बीच के अंतर्द्वंद्वों को कथा का विषय बनाया गया है। अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' में कथा की मूल समस्या यही है। आधुनिक रचनाकारों के सामने यह ज्वलंत प्रश्न रहा है कि समाज में व्यक्ति का स्थान क्या है और व्यक्ति-स्वातंत्र्य और सामाजिक दायित्व के बीच किस तरह का संतुलन आवश्यक है। इसी तरह वर्तमान समय में स्त्री स्वातंत्र्य, दलित उत्थान और अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा का प्रश्न सामाजिक जीवन के केंद्र में है और हिंदी सहित अन्य भाषाओं के लेखकों ने अपने उपन्यासों में इन विषयों को उठाया है। सामाजिक जीवन में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं और उन परिवर्तनों को हम उस दौर के प्रतिनिधि उपन्यासों के माध्यम से पहचान सकते हैं।

3.3.3 सांस्कृतिक उद्देश्य

साहित्य रचना स्वयं एक सांस्कृतिक कर्म है लेकिन समाज के सांस्कृतिक जीवन को भी उपन्यास का विषय बनाया जा सकता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की कथावस्तु में सामाजिक जीवन के साथ-साथ सांस्कृतिक जीवन की भी पर्याप्त झलक मिलती है। सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन अलग-अलग नहीं किए जा सकते, लेकिन जहाँ सांस्कृतिक जीवन प्रधानता के साथ प्रस्तुत हो तो वहाँ हम उपन्यास को संस्कृति प्रधान उपन्यास कह सकते हैं। सांस्कृतिक जीवन को व्यक्त करने के लिए उपन्यासकार किसी संस्कृतिकर्मी को नायक के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। मसलन किसी कवि, गायक, संगीतकार, चित्रकार, शिल्पी के जीवन पर। रांगेय राघव ने कई हिंदी कवियों के जीवन को आधार बनाकर उपन्यास लिखे। रांगेय राघव के उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' नट जाति के आदिवासियों की जीवनगाथा है। इस उपन्यास में उनके सामाजिक जीवन के साथ-साथ सांस्कृतिक जीवन को भी प्रधानता के साथ चित्रित किया गया है। शिक्षा, खेलकूद आदि से संबंधित उपन्यास भी हमारे सांस्कृतिक जीवन की ही झलक प्रस्तुत करते हैं। आँचलिक उपन्यासकार भी अँचल विशेष के सांस्कृतिक जीवन को प्रमुखता के साथ चित्रित करते हैं। आँचलिकता का लालित्य सांस्कृतिक जीवन के चित्रण के बिना उभर ही नहीं सकता। वैसे भी जीवन का यथार्थ जीवन के समग्र चित्रण से ही सामने आता है। संस्कृति समग्रता का अनिवार्य हिस्सा है।

3.3.4 साहित्यिक उद्देश्य

उपन्यास का लेखन सिर्फ साहित्यिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए करने का चलन हिंदी मे नहीं है। 'कला, कला के लिए' के उपासक हिंदी में खोजने पर भी शायद ही मिलें। कई बार आधुनिकतावादी, व्यक्तिवादी रचनाकारों को कलावादी समझने की भूल कर दी जाती है। यह संभव है कि कुछ उपन्यासकार रचना में कला पक्ष पर अधिक बल देते हों, लेकिन इसी कारण उन्हें कलावादी कहना या उनकी रचनाओं को कलावादी मानना तर्कसंगत नहीं है। विनोद कुमार शुक्ल, कृष्ण बलदेव वैद जैसे उपन्यासकारों ने उपन्यासों में प्रयोगधर्मिता पर बल दिया है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि वे सिर्फ साहित्यिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपन्यास लिखते हैं। यह अवश्य माना जा सकता है कि उनके सभी प्रयोग कामयाब नहीं हुए हैं।

साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास नवीन विधा होते हुए भी इसकी रचना परंपरा में लगातार नवीनीकरण की ज़रूरत होती है। हिंदी में उपन्यास लेखन की परंपरा मुश्किल से लगभग 130 साल पुरानी है और सोद्देश्यपरक और साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट उपन्यासों की रचना को तो अभी आरभ हुए सौ साल भी पूरे नहीं हुए हैं लेकिन उपन्यास

विधा में लगातार नए प्रयोग होते रहे हैं। इन परिवर्तनों के कारण ही हिंदी उपन्यास परंपरा में लगातार ऐसी कृतियाँ सामने आती रही हैं जो साहित्यिक दृष्टि से भी उल्लेखनीय मानी जा सकती हैं।

3.4 कथावस्तु का स्वरूप

उपन्यास में कथावस्तु अवश्य होती है। यह और बात है कि प्रत्येक उपन्यास में कथावस्तु अलग-अलग होती है। यही नहीं आरंभिक उपन्यासों में कथावस्तु के नाम पर घटनाओं का बाहुल्य रहता था, लेकिन अब कथावस्तु अधिक सूक्ष्म होती है। श्रेष्ठ उपन्यास वही होता है जिसकी कथावस्तु का वर्णन करना कठिन काम हो। इसकी वजह यह है कि अब कथावस्तु में बल घटनाओं पर नहीं बल्कि उन स्थितियों, मनोभावों, आंतरिक द्वंद्वों और संघर्षों पर होता है जिसकी परणति किसी घटना में निकल सकती है। यही कारण है कि उपन्यासकार अब घटनाओं के स्थूल वर्णन पर केंद्रित उपन्यास नहीं लिखता। किसी ज़माने में 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' जैसे घटना बाहुल्य उपन्यास इसीलिए पढ़े जाते थे लेकिन अब ऐसे उपन्यासों को पढ़ना साहित्यिक अभिरुचि में शामिल नहीं किया जाता।

उपन्यास की कथावस्तु कई तरह की हो सकती है, सामाजिक, आँचलिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि। कथावस्तु के आधार पर उपन्यासों के वर्गीकरण पर विचार आगे किया जा रहा है।

3.4.1 घटना-प्रधान कथावस्तु

घटना प्रधान उपन्यास उपन्यासों का कथावस्तु एक महत्वपूर्ण प्रकार है, भले ही आज ऐसे उपन्यासों को साहित्यिक श्रेणी में नहीं गिना जाता। जासूसी, ऐयारी, तिलस्मी आदि कथानकों पर आधारित रहस्य और रोमांच से भरपूर उपन्यास घटना प्रधान उपन्यास होते हैं और इनके पाठक आज भी बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं, विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में लोकप्रिय उपन्यासों की यह श्रेणी अवश्य मिलती है। इन उपन्यासों में घटनाओं में निहित रोमांच और लगातार पैदा होने वाली उत्सुकता पाठकों को अपनी तरफ आकृष्ट करती है। ऐसे उपन्यासों में न तो चरित्र महत्वपूर्ण होते हैं और न ही उपन्यास का शिल्प। उपन्यासकार की सफलता इसी बात में मानी जाती है कि वह ऐसी कथा निर्मित कर सका, जिसे पढ़ते हुए पाठक उससे बंध रह सका। पाठक हर पल, हर क्षण यही सोचता है कि 'आगे क्या होगा'। किसी ज़माने में अंग्रेजी में आर्थर कानन डायल के उपन्यासों के प्रति पाठकों में ऐसी ही उत्सुकता थी, या हिंदी में देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति', 'भूतनाथ' आदि ने भी पाठकों में ऐसी ही गहरी अभिरुचि जगाई थी। घटना-प्रधान उपन्यासों का उद्देश्य पाठकों का मन बहलाव करना होता है। ऐसे उपन्यासकार किसी महत् उद्देश्य से प्रेरित होकर उपन्यास की रचना नहीं करते। इनके उपन्यासों में तेजी से चलने वाली घटनाएँ, पात्रों के सामने लगातार आने वाले खतरे और उनसे जूझने का उनका साहस और अंत में असंभव को संभव कर दिखाने का जादुई चमत्कार पाठकों को सम्मोहित किए रहता है। इस तरह के उपन्यास पाठक आराम के क्षणों में, यात्रा के दौरान पढ़ता है। इस तरह के उपन्यास उनकी शारीरिक और मानसिक थकान को मिटाते हैं। इस तरह के उपन्यासों के लेखन में भी रोचक कथा का निर्माण करना, पात्रों को प्रभावशाली बनाना, भाषा-शैली को कथा के अनुसार संप्रेष्य और प्रवाहपूर्ण बनाना आवश्यक होता है। भले ही ऐसे उपन्यास साहित्यिक श्रेणी में न माने जाते हों, लेकिन रचनात्मक और लेखन कौशल की आवश्यकता घटना-प्रधान उपन्यास लिखने वालों के लिए भी ज़रूरी है।

3.4.2 सामाजिक कथावस्तु

सामाजिक उपन्यासों की यह श्रेणी वही है जिसका उल्लेख हम 3.3.2 में कर चुके हैं। सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित उपन्यास की कथावस्तु भी सामाजिक होगी। वैसे तो कोई भी उपन्यास ऐसा नहीं होता जिसमें सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति न हो। सामाजिक

उपन्यासों में समाज के किसी भी पहलू या मसले को विषय बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए मोहन राकेश के उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' में दिल्ली जैसे महानगर में रहने वाले एक परिवार की कहानी कही गई है जहाँ पति-पत्नी के बीच के तनाव को कथावस्तु का विषय बनाया गया है। यह एक सामाजिक मसला है। इसी प्रकार राजेंद्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' में छोटे शहर के कस्बाई वातावरण में रहने वाले युवक-युवती के जीवन की परेशानियों और उसके बीच पलने वाले सपनों और आकांक्षाओं को कथा का विषय बनाया गया है। भीष्म साहनी ने 'तमस' में देश के विभाजन के समय पैदा हुए सांप्रदायिक तनाव को कथा का विषय बनाया है। ये सभी उपन्यास किसी न किसी सामाजिक मसले को कथा के केंद्र में रखते हैं।

सामाजिक जीवन में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। श्रद्धाराम फिल्लौरी के उपन्यास 'भाग्यवती' की रचना के समय स्त्रियों की शिक्षा एक मुख्य मुद्दा था, इसलिए श्रद्धाराम फिल्लौरी ने अपने उपन्यास का विषय स्त्री-शिक्षा को बनाया। प्रेमचंद के समय में स्त्री शिक्षा से आगे स्त्रियों के जीवन की अन्य समस्याएँ जैसे वैश्या उन्मूलन, अनमेल विवाह, स्त्री स्वातन्त्र्य आदि कई मुद्दे कथा के केंद्र में आ गए। बाद में स्वयं लेखिकाएँ भी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अग्रसर हुई। उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, गीतांजली श्री आदि लेखिकाओं ने स्त्रियों के जीवन का अधिक सूक्ष्मता और गहनता से चित्रण किया। स्त्रियों की तरह दलित जीवन भी उपन्यास के प्रमुख विषयों में शामिल हुआ। मराठी साहित्य में तो दलित लेखन साहित्य के केंद्र में आ गया। आत्मकथात्मक उपन्यासों ने दलित जीवन को नए नज़रिए से पेश किया।

कई बार सामाजिक उपन्यासों से तात्पर्य उन लोकप्रिय उपन्यासों से भी ले लिया जाता है जो रेलवे के बुक स्टालों पर बिकते हैं। सतही रोमानी कथाओं को केंद्र बनाकर लिख गए इन उपन्यासों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति तो होती है, लेकिन उनमें न तो सामाज़िक यर्थाथ होता है और न ही औपन्यासिक कलात्मकता। ये उपन्यासों में विकृत अभिरुचि को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। ये पाठकों को न तो समाज के बारे में जागरूक बनाते हैं और न ही उन्हें वैचारिक रूप से उद्वेलित करते हैं। ये उन पापुलर फिल्मों की तरह हैं जिनका मकसद क्षणिक मनवहलाव है।

3.4.3 आँचलिक कथावस्तु

किसी भी तरह का उपन्यास क्यो न हो, घटना प्रधान हो, चाहे सामाजिक हो, और चाहे जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर लिखा गया हो, उसमें विशेष देश और काल का वर्णन ज़रूर होता है। देशकाल को ही परिवेश भी कहा जाता है। श्रेष्ठ उपन्यासकार अपने उपन्यास में परिवेश के चित्रण पर विशेष बल देते हैं। लेकिन जिन उपन्यासों में परिवेश चित्रण कथा के केंद्र में होता है, ऐसे उपन्यास को आँचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है। यह समझने की भूल की जाती है कि आँचलिक उपन्यास का संबंध सिर्फ गाँवों से होता है, लेकिन यह सच नहीं है। ऐसी भूल का कारण रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' की लोकप्रियता है। लेकिन गाँवों से इतर जीवन पर लिखे गए उपन्यासों को भी आँचलिक कहा जा सकता है। अमृतलाल नागर के उपन्यास 'बूँद और समुद्र' जिसमें लखनऊ का वर्णन है, आँचलिकता की श्रेणी में आ सकता है। इसी प्रकार रांगेय राघव का उपन्यास 'कब तक पुकारूँ', उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य', कृष्णा सोबती का 'ज़िंदगीनामा', जगदीशचंद्र का 'धरती धन न अपना', मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' और 'अल्मा कबूतरी'। इन सब उपन्यासों में अँचल विशेष की कथा कही गई है और ये सभी ग्रामीण जीवन से संबंधित नहीं हैं। इनमें गाँव हैं, शहर हैं, कस्बे हैं, यहाँ तक कि महानगर को भी उपन्यासों में अँचल की तरह प्रस्तुत किया गया है।
आँचलिक उपन्यास से तात्पर्य यही है कि उस उपन्यास में कथा उस अँचल के संपूर्ण परिवेश पर आधारित होती है। अँचल विशेष की परंपरा, रीति-रिवाज़, तीज-त्यौहार, लोग-बाग, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के समग्र पहलू को ऐसे उपन्यासों की

कथावस्तु का विषय बनाया जाता है। यहाँ कई कहानियाँ एक दूसरे के साथ आपस में गुँथी हुई और उलझती-टकराती आगे बढ़ती है। अँचल की पूरी गतिशीलता उपन्यास में समाहित करने का प्रयास उपन्यासकार करता है।

आँचलिक उपन्यासकार कई बार अँचल के लोगों की वास्तविक समस्याओं और संघर्षों की बजाए ऐसे बाह्य उपकरणों की तरफ ज्यादा ध्यान देने लगता है जिससे उपन्यास की शोभा तो बढ़ जाती है, लेकिन वह प्रासंगिक नहीं बन पाता।

3.4.4 ऐतिहासिक कथावस्तु

इतिहास भी उपन्यास की कथावस्तु के लिए मुख्य स्रोत रहा है। सभी भाषाओं में इतिहास की घटनाओं, पात्रों और स्थितियों को लेकर उपन्यास लिखने की लंबी और समृद्ध परंपरा रही है। बंगला के उपन्यासकार बंकिमचंद्र के कई महत्वपूर्ण उपन्यास इतिहास की घटनाओं और पात्रों पर ही आधारित हैं। 'दुर्गेशनंदिनी', 'कपाल कुंडला', 'आनंदमठ', आदि उपन्यास ऐतिहासिक कथानकों पर ही आधारित हैं। हिंदी में वृंदावनलाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ही जाने जाते हैं। 'विराटा की पद्मिनी', 'झांसी की रानी', 'मृगनयनी', 'गढ़ कुंडार' आदि उनके द्वारा लिखे गए कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इसी प्रकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक और पौराणिक दोनों तरह के कथानकों पर उपन्यास लिखे हैं। यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, आदि रचनाकारों ने भी कई उपन्यास ऐतिहासिक विषयवस्तु को आधार बनाकर लिखे हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों से तात्पर्य अतीत से संबंधित घटनाओं, चरित्रों और देशकाल को लेकर उपन्यास की रचना करना है। यहाँ इतिहास में वास्तविक इतिहास भी शामिल है और मिथकीय (पौराणिक) इतिहास भी शामिल है। रामायाण, महाभारत, पुराणों या उपनिषदों आदि की कहानियों पर आधारित उपन्यासों को भी ऐतिहासिक उपन्यास के अंतर्गत ही शामिल किया जाएगा यद्यपि इन कथाओं का संबंध न तो अतीत की किसी वास्तविक घटना से होता है और न ही किसी वास्तविक पात्र से। इसके बावजूद ऐसे उपन्यास जीवन के जिस मनोवैज्ञानिक या सांस्कृतिक यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं, उसका महत्व और उसकी प्रासंगिकता बनी रहती है। मराठी के प्रसिद्ध उपन्यासकार वि.स. खांडेकर की रचना 'ययाति' और कन्नड़ के उपन्यासकार भैरप्पा के उपन्यास 'पर्व' का महत्व इसीलिए है। ययाति एक पौराणिक पात्र है और 'पर्व' महाभारत की कथा पर लिखा गया उपन्यास है। कई बार उपन्यासकार इतिहास का प्रयोग रूमानी कथा कहने के लिए भी करते हैं। वृंदावनलाल वर्मा के अधिकांश उपन्यास दरअसल ऐतिहासिक रोमांस कहे जा सकते हैं जबकि हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में तत्कालीन समाज के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में निहित जटिलताओं, तनावों और द्वंद्वों को प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों की प्रासंगिकता ज्यादा स्थायी और ठोस रूप में उभर कर सामने आती है। प्रासंगिक प्रश्नों की प्रेरणा यशपाल के उपन्यासों में ज्यादा स्पष्ट रूप से पहचानी जा सकती है। 'अमिता' और 'दिव्या' उपन्यासों की कथा का महत्व यही है कि वे युद्ध और शांति तथा सांप्रदायिक तनावों से ग्रसित समाज के यथार्थ को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास अतीत के गौरवगान या अतीत की वर्तमान पर पुनर्प्रतिष्ठा के आधार पर स्वीकार्य नहीं बन सकते। ऐतिहासिक उपन्यास का महत्व तभी है जब वे वर्तमान को समझने और बदलने की प्रेरणा दे।

3.4.5 मनोवैज्ञानिक कथावस्तु

उपन्यास की कथावस्तु व्यक्तियों की गतिशीलता के आधार पर निर्मित होती है। व्यक्ति के चरित्र का निर्माण उसके कार्यों से होता है। कार्य का तात्पर्य जो वह करता है और जो वह कहता है। वास्तविक जीवन में हम मनुष्य की कथनी और करनी को तो जान जाते हैं लेकिन

मनुष्य की कथनी और करनी से पहले, दौरान और पश्चात् वह क्या सोचता है, उसको जानना संभव नहीं होता। उपन्यास में उपन्यासकार मनुष्य क्या सोचता है, उसका भी विस्तार से वर्णन करता है। इससे मनष्य के कथन और कर्म को हम ज्यादा बेहतर ढंग से समझ पाते हैं। मनोविज्ञान के विकास ने रचनाकार को यह क्षमता दी है कि वह व्यक्ति की कथनी और करनी के पीछे के वास्तविक कारणों को उजागर कर सके।

पात्रों के मन को टटोलने और उसे विस्तार से चित्रित करने की शुरुआत तो हम प्रेमचंद के उपन्यासों में भी देख सकते हैं। लेकिन व्यक्ति के अंतर्मन की गुत्थियों को कथा के केंद्र में रखकर उपन्यास लिखने का श्रेय जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी को जाता है। जैनेंद्र कुमार ने फ्रायड से प्रेरणा लेते हुए व्यक्ति की कामभावनाओं को समझने और उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न किया है जबकि इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों में पात्र को इस तरह चित्रित किया गया है, मानो ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी मनोचिकित्सक के सामने प्रस्तुत मनोरोग का मामला हो और उपन्यासकार उसी को विस्तार से पाठकों को सामने रख रहा हो। अज्ञेय भी आधुनिक मनुष्य को यौन भावनाओं का पुंज मानते हैं इसलिए स्त्री और पुरुष के यौन जीवन की गुत्थियाँ उनके यहाँ भी प्रमुखता से चित्रित हुई है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि मनोविज्ञान के विकास का लाभ अन्य उपन्यासकारों ने नहीं उठाया। दरअसल पात्रों के चारित्रित विकास को यथार्थवादी ढंग से चित्रित करने में मनोवैज्ञानिकता ने गहरी मदद की है। इससे चरित्र की कई पर्तों को उजागर किया जा सका है। पात्रों के मन, वचन और कर्म में निहित अनेकता को पहचानना और उसके कारणों को समझना आसान हुआ है। मनोवैज्ञानिक पद्धति को उपयोग के कारण चेतन, उपचेतन, अवचेतन-मन के विभिन्न स्तरों, मुक्त चेतना प्रवाह, स्वप्न चित्रों और दिवास्वप्नों को उपन्यास में चित्रित करते हुए पात्रों की विभिन्न मनोदशाओं को कथा विकास में सहायक बनाया जा सका है। वे उपन्यासकार जो मनोविश्लेषण को ही कथा के केंद्र में स्थापित कर देता है, न कि उसे सहायक के रूप में इस्तेमाल करता है, उनके उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक उपन्यास या मनोविश्लेषणवादी उपन्यास की संज्ञा दी जाती है।

कथावस्तु के आधार पर उपन्यासों के वर्गीकरण के और भी कई प्रकार हो सकते हैं। विज्ञान कथाओं पर आधारित उपन्यास इसी तरह का एक वर्गीकरण है यद्यपि हिंदी में विज्ञान कथाओं के लेखन की कोई सुदृढ़ परंपरा नहीं है। इसी तरह बच्चों और किशोरों के लिए उपन्यास लेखन भी न सिर्फ बहुत कम होता है बल्कि उनको पर्याप्त महत्व भी नहीं दिया गया है जबकि बच्चों और किशोरों के लिए उपन्यास लिखना चुनौती भरा काम है।

3.5 चरित्रों के आधार पर

उपन्यास के पात्र उपन्यास की जीवंतता के प्रमाण होते हैं। उपन्यास की कथावस्तु की तरह उसके पात्र भी समाज के किसी भी वर्ग से संबंधित हो सकते हैं। स्त्री-पुरुष, राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, शहरी-ग्रामीणवासी, शिक्षित-अशिक्षित, उच्चवर्ग-मध्यवर्ग, हिंदू-मुसलमान, सवर्ण-दलित। कहने का तात्पर्य यह है कि उपन्यास के पात्र कैसे होंगे यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी कथावस्तु किस तरह की है। 'रंगभूमि' का नायक अंधा भिखारी है। 'उसका बचपन' का केंद्रीय पात्र छोटा बच्चा है। 'निर्मला' की नायिका घेरलू स्त्री है, 'अमिता' की केंद्रीय चरित्र छोटी बच्ची अमिता है। उपन्यास के चरित्र वास्तविक भी हो सकते हैं ('बाणभट्ट की आत्मकथा' का नायक बाणभट्ट), पौराणिक भी हो सकते हैं ('ययाति' का नायक ययाति), काल्पनिक भी ('गोदान' का होरी) जो वास्तविक पात्रों से ज्यादा वास्तविक हों। उपन्यासों का वर्गीकरण पात्रों के आधार पर भी किया जा सकता है। इस भाग में हमने उपन्यासों के चरित्रों के आधार पर होने वाले वर्गीकरण पर प्रकाश डाला गया है।

3.5.1 सामाजिक चरित्र

सामाजिक पात्र वे हैं जिनमें सामाजिकता का तत्व ज्यादा हो। उदाहरण के लिए होरी या सूरदास या बाणभट्ट सामाजिक चरित्र हैं क्योंकि ये निजता से ज्यादा सामाजिकता को ज्यादा महत्व देते हैं जबकि 'शेखर : एक जीवनी' का शेखर, 'सुनीता' की सुनीता, 'नदी के द्वीप' का भुवन आदि सामाजिक पात्र नहीं हैं क्योंकि वे निजता को ज्यादा महत्व देते हैं। स्वयं रचनाकारों ने उनके निजत्व को ज्यादा प्रकाशित किया है। इसका अर्थ यह है कि चरित्र केंद्रित उपन्यास भी सामाजिक हो सकते हैं और शक्तिपरक भी। सामाजिक उपन्यासों के चरित्र किसी-न-किसी सामाजिक प्रकृति के, सामाजिक वर्ग के द्योतक हो सकते हैं। उनके माध्यम से उपन्यासकार सामाजिक समस्याओं को उजागर करता है। होरी एक निम्नवर्गीय किसान है जिसके माध्यम से प्रेमचंद ने किसानों की ऋण समस्या और शोषण के विराट चक्र को उद्घाटित किया है। यहाँ यह बात खासतौर पर ध्यान देने की है कि यदि उपन्यास का केंद्रीय पात्र अपनी सामाजिकता का प्रतिनिधित्व करता है तो अन्य पात्र भी सामाजिकता का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

3.5.2 वैयक्तिक चरित्र

वैयक्तिक पात्रों से तात्पर्य ऐसे पात्रों से हैं जिनका चित्रण करते हुए उपन्यासकार उनकी निजी विशिष्टताओं को ज्यादा उजागर करता है। ये पात्र आमतौर पर शहरी, शिक्षित और मध्यवर्गीय होते हैं और उपन्यासकार के निजी व्यक्तित्व का प्रतिबिंबन उनमें होता है। ऐसे उपन्यास व्यक्ति-प्रधान या चरित्र-प्रधान उपन्यास कहलाते हैं। पात्रों की निजता का दावा दरअसल लेखकीय दृष्टि का परिणाम होता है। कोई भी निजता ऐसी नहीं होती जिसका सामाजिक आधार न होता हो। लेकिन जहाँ उपन्यासकार पात्र सोचे-समझे ढंग से पात्रों की सामाजिकता को नज़रअंदाज करता है, ऐसे उपन्यास व्यक्ति प्रधान उपन्यास या व्यक्तिवादी उपन्यास कहलाते हैं। अज्ञेय, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी, के उपन्यासों पर इस व्यक्तिवाद का गहरा असर देख सकते हैं। व्यक्तिपरक उपन्यासों की दूसरी विशेषता यह होती है कि उनके चरित्र यौन भावनाओं के प्रति अधिक सजग और आग्रही होते हैं। ऐसे उपन्यासों में स्त्री-पुरुष भावनाओं और संबंधों को खासतौर पर महत्व दिया जाता है। जैनेंद्र के उपन्यास 'सुनीता अज्ञेय के 'नदी के द्वीप', निर्मल वर्मा के 'वे दिन', मोहन राकेश के 'अँधेरे बंद कमरे श्रीकांत वर्मा के 'दूसरी बार' में स्त्री-पुरुष संबंधों को ही कथा के केंद्र में रखा गया है।

3.5.3 प्रातिनिधिक चरित्र

प्रातिनिधिक चरित्र का तात्पर्य ऐसे पात्रों से हैं, जो किसी प्रवृत्ति या वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हो। आमतौर पर सामाजिकता पर बल देने वाले उपन्यासकार अपने उपन्यासों में ऐसे ही चरित्र गढ़ते हैं जो टाइप्ड होते हैं। प्रातिनिधिक चरित्रों का सृजन औपन्यासिक रचनात्मकता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। यदि होरी के चरित्र से पाठकों को भारतीय किसान की झलक मिलती है, तो यह उपन्यासकार की बहुत बड़ी कामयाबी है। उपन्यासों में प्रातिनिधिक चरित्रों के सृजन से हमें विभिन्न वर्गों और समुदायों के लोगों के साथ तादात्म्य का अवसर मिलता है। 'निर्मला' की पीड़ा उन जैसी हजारों-लाखों स्त्रियों की पीड़ा का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन यदि शेखर का दुख सिर्फ शेखर का दुख है, तो पाठक की न तो उससे सहानुभूति होगी और न वह उस चरित्र से अपना तादात्म्य कर पाएगा। लेकिन इसके साथ यह भी आवश्यक है कि चरित्र इतना अधिक टाइप्ड न हो जाए कि वह यांत्रिक और उपन्यासकार की कठपुतली मात्र लगे। प्रातिनिधिक चरित्रों में प्रातिनिधिकता के साथ-साथ अपनी निजता भी होनी चाहिए। उसमें वर्गीय चेतना के साथ-साथ व्यक्ति-चेतना का भी पर्याप्त अंश होना चाहिए। ऐसा होकर ही प्रातिनिधिक चरित्रों वाले उपन्यास अपने समाज और समय का रूपक बनने की क्षमता हासिल कर पाते हैं।

3.5.4 प्रतीकात्मक चरित्र

प्रतीकात्मक चरित्र बनने के लिए प्रतिनिधकता का गुण पात्रों में होना आवश्यक है। वैसे तो प्रत्येक चरित्र लेखकीय विचारों और भावनाओं का प्रतिनिधित्व किसी न किसी रूप में करता

है, लेकिन वह प्रतीकात्मकता का उत्कर्ष तभी हासिल कर पाता है जब उसमें एक तरह का अमरत्व का तत्व समाहित हो जाता है। यदि उपन्यासकार रचना के आरंभ में ही यह सोचकर चरित्र की रचना करता है कि उसे वह इस या उस धारणा, प्रवृत्ति, भाव, विचार के प्रतीक के रूप में निर्मित करेंगा तो इस बात का निर्वाह करने के लिए उसे चरित्रों के स्वाभाविक विकास को अवरुद्ध करना पड़ेगा। इसका असर उपन्यास की कथावस्तु के विकास पर पड़ेगा और बहुत मुमकिन है कि वह उपन्यास प्रभावशाली न बन पाए। ज्यादा बेहतर स्थिति वह होती है जब उपन्यास पाठकों के हाथ में पहुँचने के बाद, पाठकों को यह महसूस हो कि इस उपन्यास के चरित्र अपनी स्वाभाविक देशकाल की सीमाओं को लांघकर प्रतीकात्मकता की हद में पहुँच रहे हैं। प्रतीकात्मकता दरअसल काव्य का गुण है और उपन्यास जैसी महाकाव्यात्मक विधा में प्रतीकात्मकता को रचने की कोशिश आमतौर पर कामयाब नहीं हो पाती। नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' जैसे उपन्यास कम है जहाँ बट का वृक्ष परंपरा का प्रतीक बन उपन्यास में चरित्र के रूप में मौजूद होता है।

3.5.5 मिथकीय चरित्र

मिथकीय चरित्र आसानी से प्रतीकात्मक हो जाते हैं। मिथकीय कथाओं को लेकर रचे गए उपन्यास की प्रासंगिकता उन चरित्रों की प्रतीकातमकता में ही निहित होती है। ययाति एक पौराणिक चरित्र के रूप में प्रासंगिक नहीं है और उस कथा की प्रासंगिकता तो बिलकुल भी नहीं है जो अविश्वसनीय बातों पर टिकी हो। लेकिन वही कथा और चरित्र अपने प्रतीकात्मक अर्थ में प्रासंगिक भी हो जाते हैं और महत्वपूर्ण भी।

पौराणिक कथाएँ और चरित्र सिर्फ उपन्यास विधा में ही नहीं कविता, नाटक और कहानी के लिए भी रचनात्मक ऊर्जा के स्रोत रहे हैं। लेकिन कई बार मिथकीय कथाओं और चरित्रों पर आधुनिक युग को इस तरह थोप दिया जाता है कि वह बहुत विश्वसनीय नहीं लगता। नरेंद्र कोहली के उपन्यासों की सबसे बड़ी सीमा यही है। यही बात भगवान सिंह के उपन्यास 'अपने अपने राम' पर भी कुछ हद तक लागू होती है। रामकथा की अपनी व्याख्या को थोपने के चक्कर में एक ऐसे षड्यंत्रकारी कथा का रूप उसमें दे दिया गया है जो उस युग के यथार्थ से बिलकुल मेल नहीं खाता। इसके विपरीत हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' अधिक विश्वसनीय ढंग से पौराणिकता की सीमाओं को लांघकर वर्तमान में प्रासंगिक बनकर उपस्थित होते हैं।

3.6 शैली के आधार पर

उपन्यासों का वर्गीकरण रचना-शैलियों के आधार पर भी किया जा सकता है। उपन्यास लिखने की कोई एक शैली नहीं है। जब से उपन्यास लिखे जाने आरंभ हुए तब से उपन्यास की विभिन्न शैलियों का विकास भी होता आया है। आगे आने वाले समय में उपन्यास और भी नई शैलियों में लिखे जाएँगे, इसकी संभावना इस विधा में मौजूद है। कुछ रचनाकार और आलोचक यद्यपि उपन्यास की मृत्यु की घोषणा कर चुके हैं, लेकिन आज भी साहित्य की जिस विधा में सबसे जीवंत और सबसे ऊर्जावान लेखन हो रहा है तो वह उपन्यास विधा में ही। हाँ, यह ज़रूर है कि लंबे समय तक उपन्यास सृजन का केंद्र यूरोप और अमरीका रहा, लेकिन अब तीसरी दुनिया के देशों, दक्षिण अमरीका, अफ्रीका और एशिया के देशों में उत्कृष्ट कोटि के उपन्यास लिखे जा रहे हैं और उनमें नए-नए प्रयोग भी किए जा रहे हैं।

गद्य की समस्त विधाओं का प्रयोग उपन्यास लेखन में किया जा सकता है। एक ही उपन्यास में कई शैलियों का भी प्रयोग उपन्यास लेखन में किया जाता रहा है। लेकिन शैली की सफलता उसकी नवीनता या उसकी प्रयोगशीलता में नहीं वरन् कथावस्तु के साथ उसके सामंजस्य में निहित है। क्या 'गोदान', 'शेखर : एक जीवनी' की शैली में लिखा जा सकता था और क्या 'वे दिन' की शैली में 'तमस' प्रभावशाली बन पाता। किस तरह की कथावस्तु

के लिए कौन-सी शैली उपयुक्त है, यह उपन्यासकार ही तय करता है। लेकिन वह यह भी तय करता है कि एक रचनाकार के रूप में उसके लिए कौन-सी शैली में लिखना ज्यादा सहज और संगतिपूर्ण है।

3.6.1 वर्णनात्मक शैली

उपन्यास लेखन की यह शैली सर्वाधिक प्रचलित है। आमतौर पर घटना प्रधान उपन्यास इसी शैली में लिखे जाते हैं। वर्णन की शैली में लिखे गए उपन्यास में यह सुविधा रहती है कि लेखक घटनाओं, स्थितियों, चरित्रों और देशकाल का वर्णन अपने मन-माफिक कर सकता है। इस शैली में लेखक जहाँ चाहे स्वयं प्रवेश कर सकता है और अपनी तरफ से टिप्पणी दे सकता है। यह शैली इतनी अधिक प्रचलित है कि इसका सर्जनात्मक उपयोग करना आसान नहीं है। इसमें सामान्य स्तर का उपन्यास भी लिखा जा सकता है और 'गोदान', 'झूठा सच' जैसे श्रेष्ठ उपन्यास भी लिखे जा सकते हैं। वर्णनात्मक शैली में भी कई तरह के प्रयोग किए जा सकते हैं जिससे इसमें शैलीगत नवीनता बनी रहती है।

3.6.2 व्यंग्यात्मक शैली

व्यंग्यात्मक शैली में उपन्यास लेखन अधिक चुनौती भरा और दुष्कर कार्य है। इस शैली का प्रयोग करने वाला लेखक पात्रों का चित्रण व्यंग्यात्मक ढंग से करता है। स्थितियों और घटनाओं में भी व्यंग्य की प्रधानता रहती है। व्यंग्य का मुख्य औजार तो भाषा रहती है लेकिन स्थितियों और घटनाओं का संयोजन कुल इस तरह किया जाता है कि व्यंग्य थोपा हुआ नहीं लगता। व्यंग्य का प्रयोग लेखक हास्य पैदा करने के लिए नहीं करता बल्कि सामाजिक अंतर्विरोधों और स्थितियों में निहित विडंबनाओं को उजागर करने के लिए करता है। हिंदी में व्यंग्य प्रधान उपन्यास लिखने की कोई सुदृढ़ परंपरा नहीं है लेकिन श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'राग दरबारी' इस श्रेणी की क्लासिक रचना मानी जा सकती है। हरिशंकर परसाई का लघु उपन्यास 'रानी नागफनी की कहानी' भी व्यंग्य प्रधान उपन्यास का उत्कृष्ट उदहारण है। इंशाअल्ला खाँ की प्रसिद्ध कहानी 'रानी केतकी की कहानी' की शैली का प्रयोग इस उपन्यास में व्यंग्य पैदा करने के लिए किया गया है। व्यंग्य का प्रयोग संपूर्ण रचना में हो यह आवश्यक नहीं है लेखक आवश्यकतानुसार भी रचना में व्यंग्य का प्रयोग कर सकता है। 'गोदान' में व्यंग्य के ऐसे कई प्रसंग सामाजिक अंतर्विरोधों को उजागर करने के लिए लाए गए हैं।

3.6.3 आत्मकथात्मक शैली

वर्णन शैली में लिखे गए उपन्यासों के बाद आत्मकथात्मक शैली उपन्यास लेखन की लोकप्रिय शैली है। आत्मकथात्मक शैली का तात्पर्य है कि उपन्यास का केंद्रीय पात्र अपनी कहानी खुद कहता है। इस शैली में लेखक एक व्यक्ति की नज़र से उपन्यास में वर्णित क्रियाकलापों और अन्य चरित्रों का अवलोकन करता है। इस तरह के उपन्यास चरित्र प्रधान होते हैं। आत्मकथात्मक शैली के उपन्यास पाठक के साथ अधिक आत्मीयता स्थापित कर पाते हैं। आत्मकथात्मक उपन्यास की यह सीमा होती है कि उसमें 'मैं' के अनुभव के बाहर जो कुछ भी घटित होता है, वह उपन्यास के भी बाहर ही रह जाता है। लेकिन किसी पात्र के कथन द्वारा या किसी ऐसी विधि से जो यथार्थपरक हो उनका संदर्भ तो आ सकता है। आत्मकथात्मक उपन्यास की सीमा ही उसकी शक्ति है क्योंकि इससे अन्य पात्रों और अन्य स्थितियों के बारे में तब तक कोई जानकारी नहीं मिलती जब तक कि उपन्यास के नैरेटर के सामने नहीं आती। इससे उपन्यास में रहस्य और रोचकता का तत्व समाहित हो जाता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में बाणभट्ट भट्टिनी और निउनिया के बारे में क्या सोचता है, यह तो पाठक को बराबर मालूम पड़ता रहता है लेकिन भट्टिनी बाणभट्ट के बारे में क्या सोचती है, यह बाण कल्पना ही करता रहता है। इससे बाण की बेचैनी, उलझन और भट्टिनी के प्रति उसके गहरे अनुराग का पता लगता है। आत्मकथात्मक उपन्यास पूर्वदीप्ति शैली में भी लिखे

जाते हैं, जिसमें नैरेटर अतीत को याद करते हुए पाठकों के सम्मुख एक-एक कर अपनी जीवन गाथा के पन्ने खोलता जाता है।

3.6.4 जीवनीपरक शैली

जीवनीपरक उपन्यास शैली आत्मकथात्मक उपन्यास से लगभग मिलती-जुलती शैली है। यहाँ कथावाचक अपनी कथा के केंद्र में एक ही पात्र को रखता है और उसी की जीवनगाथा को प्रस्तुत करता है। जीवनीपरक उपन्यास में उपन्यासकार को यह छूट मिली होती है कि वह अपने कथानायक के अलावा अन्य पात्रों, अन्य स्थितियों और अन्य क्रियाकलापों का वर्णन स्वतंत्र रूप से कर सकता है। लेकिन इन सबका मकसद कथानायक के जीवन से संबंधित किसी पहलू को उजागर करना होता है। 'शेखर : एक जीवनी' में अज्ञेय जब भी कथा को शेखर से दूर ले जाते हैं तो इसीलिए ताकि शेखर के जीवन के कुछ अनजाने पहलू उजागर हो सकें। जीवनीपरक शैली में यह सुविधा भी रहती है कि लेखक नायक के बहाने उसके आसपास के परिवेश और पात्रों के विश्लेषण को प्रस्तुत कर सके। जीवनीपरक उपन्यास में कथा का विस्तार मुख्य चरित्र के बचपन से लेकर प्रायः जीवन के अंत तक रहता है। ऐसे उपन्यासों में कथा में एक सूत्रबद्धता आवश्यक नहीं है बल्कि सारे कथासूत्र मुख्य नायक के जीवन की डोर में बंधे होते हैं। लेखक को इस बात का ध्यान रखना होता है कि कथा मुख्य चरित्र के जीवन के बाहर ऐसे क्षेत्रों में न चली जाए जिनका मुख्य चरित्र से कोई संबंध ही न हो।

3.6.5 रूपक प्रधान शैली

श्रेष्ठ उपन्यास एक तरह की एलिगरी में परिवर्तित हो जाते हैं। जब 'गोदान' को किसान जीवन का महाकाव्य कहा जाता है तो इसका तात्पर्य यही है कि वह एलिगरी में बदल गया है। एक ऐसे रूपक में जो किसी एक किसान की नहीं, किस एक क्षेत्र के किसान की नहीं बल्कि उस दौर के भारतीय किसान की गाथा बन जाता है। उपन्यास विधा में यह क्षमता अंतर्निहित है कि वह अपने को राष्ट्रीय रूपक में रूपांतरित कर ले। 'मैला आँचल', 'राग दरबारी', 'महाभोज' जैसे कई उपन्यास अपनी अर्थव्याप्ति में राष्ट्रीय रूपक होने का आभास देने लगते हैं। उपन्यासकार सोचकर रूपक तैयार नहीं करता। यह तो उपन्यास की आंतरिक क्षमता होती है कि वह अपने को रूपक के रूप में मनवा लेता है। राष्ट्रीय रूपक होने के लिए उपन्यास की कथावस्तु का फलक व्यापक, चरित्र उदार और संघर्षधर्मी, दृष्टि मानवतावादी होना ज़रूरी है। रवींद्रनाथ ठाकुर के उपन्यास 'गोरा' नवजागरण युग का राष्ट्रीय रूपक इन्हीं विशेषताओं के कारण माना जाता है। कई बार तो कुछ उपन्यास एलिगरी में अपने पूरे समय का प्रतिनिधित्व करने लगता है। अल्बेयर कामू का उपन्यास 'प्लेग' या लेव तॉल्सतॉय का उपन्यास 'युद्ध और शांति' या मक्सीम गोर्की का उपन्यास 'मदर', या अर्नेस्ट हेमिंग्वे का उपन्यास 'ओल्डमेन एंड द सी' इसी तरह के उपन्यास हैं जो अपने समाज और समय की सीमाओं को लांघकर संपूर्ण मानव जाति के लिए मूल्यवान रूपक बन गए हैं।

उपन्यास लेखन की अन्य कई विधियाँ हो सकती हैं जिसके आधार पर उपन्यास का वर्गीकरण किया जा सकता है। यात्रा वृत्तांत के रूप में जैसे रॉबिन्सन क्रूसो, डायरी के रूप में जैसे डॉ. देवराज का प्रसिद्ध उपन्यास 'अजय की डायरी', आदि में क्रमशः यात्रा वृत्तांत और डायरी शैली का प्रयोग किया गया है।

3.7 जीवन दृष्टि के आधार पर

उपन्यास लेखन पर उपन्यासकार की जीवन दृष्टि का गहरा प्रभाव रहता है। जीवन दृष्टि में कला दृष्टि भी शामिल होती है। इसलिए इस आधार पर उपन्यासों के वर्गीकरण पर विचार करते हुए उनकी कला-दृष्टि पर भी टिप्पणी की गई है। जीवन-दृष्टि से तात्पर्य लेखक की वैचारिक दृष्टि से है। प्रेमचंद के युग में आदर्शवाद और यथार्थवाद की बहस चल रही थी।

प्रगतिवाद के समय में यथार्थवाद को सर्वस्वीकृति मिल गई लेकिन यथार्थवाद के कई रूपों को लेकर बहस चलती रही--आलोचनात्मक यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद के बीच की बहस ने उपन्यासों के सृजन को ही नहीं आलोचना को भी दूर तक प्रभावित किया। स्वातंत्र्योत्तर दौर में आधुनिकतावादी जीवन दृष्टि का प्रभाव नए उभरते लेखकों पर देखा गया। कई लेखक अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन के प्रभाव में आए। अस्सी के बाद के दशक में आधुनिकता का स्थान उत्तर आधुनिकता ने ले लिया। आजकल कई लेखकों की रचनाओं के संदर्भ में उत्तर आधुनिकता की चर्चा की जाने लगी है। जीवन-दृष्टि के इस प्रभाव पर हम विस्तृत उल्लेख इसी खंड की चौथी इकाई में करेंगे यहाँ सिर्फ वर्गीकरण की दृष्टि से इन पर संक्षिप्त टिप्पणी की गई है।

3.7.1 भाववादी-आदर्शवादी दृष्टि

अंग्रेजी के शब्द आइडयालिज्म का अनुवाद हिंदी में भाववाद ओर आदर्शवाद दोनों रूपों में किया जाता है। प्रेमचंद इसका अर्थ आदर्शवाद के रूप में लेते हैं। आदर्शवाद से तात्पर्य उच्च जीवन मूल्यों के अनुसार जीवनयापन करना है। आदर्शवाद की व्याख्या करते हुए प्रेमचंद कहते हैं, 'Idealism हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है, जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ और वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं। यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार कुशल नहीं होते। उनकी सरलता उन्हें व्यावहारिक विषयों में धोखा देती है, लेकिन काइयांपन से ऊबे हुए प्राणियों को ऐसे सरल, ऐसे व्यावहारिक ज्ञानविहीन चरित्रों के दर्शन से एक विशेष आनंद होता है।' आदर्शवाद और यथार्थवाद की तुलना करते हुए वे लिखते हैं, 'Realism यदि हमारी आँखे खोल देता है, तो Idealism हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है।' स्वयं प्रेमचंद अपने लिए न आदर्शवाद को उपयुक्त मानते हैं न यथार्थवाद को। उनकी दृष्टि में वे ही उपन्यास उच्चकोटि के हैं 'जहाँ Realism और Idealism का समन्वय हो गया हो, उसे आप Idalistic Realism कह सकते हैं। Idea को सजीव बनाने के लिए Realism का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है।' प्रेमचंद के आरंभिक उपन्यासों पर आदर्शवाद का ज्यादा असर है जबकि 'गोदान' तक आते-आते वे आदर्शवादी प्रभाव से काफी हद तक मुक्त हो जाते हैं। हिंदी लेखकों पर गांधीवादी जीवन-दृष्टि का भी गहरा असर रहा है जा एक आदर्शवादी जीवन दृष्टि है। प्रेमचंद के अलावा बाद में जैनेंद्र कुमार, विष्णु प्रभाकर, फणीश्वरनाथ रेणु आदि पर इसका असर देख सकते हैं।

3.7.2 यथार्थवादी दृष्टि

यथार्थवाद को कई बार प्रकृतवाद से एकमेक कार दिया जाता है। प्रकृतिवादी जीवन जैसा है, उसे ठीक उसी रूप में चित्रित करता है। प्रेमचंद ने यथार्थवाद की जो विशेषताएँ बताई हैं वह दरअसल प्रकृतिवाद की विशेषताएँ हैं। वे लिखते हैं, 'Realist रित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ, नग्न रूप में रख देता है, उसे इससे कुछ परिणाम नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है, या कुचरित्रता का परिणम अच्छा, उसके चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते हैं और चूंकि संसार में सदैव नेकी का फल नेक और बदी का फल बद नहीं होता बल्कि इसके विपरीत हुआ करता है, नेक आदमी धक्के खाते हैं, यातनाएँ सहते हैं, मुसीबतें झेलते हैं, अपमानित होते हैं, उनकी नेकी का फल उलटा मिलता है, बुरे आदमी चैन करते हैं, नामवर होते हैं, यशस्वी बनते हैं, उनकी बदी का फल उलटा मिलता है।' प्रेमचंद की उक्त व्याख्या से ही स्पष्ट है कि वे यथार्थवाद को प्रकृतवाद के रूप में समझ रहे हैं। यथार्थवाद में आदर्शों का निषेध नहीं है बल्कि भाववाद का निषेध है। भाववाद का निषेध प्रेमचंद में भी है। आदर्श और यथार्थ में संघर्ष नहीं है वरन् प्रश्न यह है कि किस तरह के आदर्श समाज के लिए उपयुक्त हैं। गांधीवादी आदर्शवाद व्यक्ति के हृदय परिवर्तन पर बल देता है जबकि मार्क्सवादी आदर्शों से प्रेरित रचनाकार समाज के आमूल-चूल परिवर्तन पर बल देता है। यथार्थवादी रचनाकार समाज के यथार्थ पर ही दृष्टि नहीं रखता बल्कि अपनी रचना में यथार्थ को वर्गीय दृष्टि से देखता है, और समाज में चल रहे वर्ग संघर्ष को अपनी रचना का आधार बनाता है। यथार्थ को वर्गीय दृष्टि से देखने और

वर्ग संघर्ष को कथा का आधार बनाने का अर्थ यह नहीं है कि यथार्थवादी रचनाकार समाज के अन्य अंतर्विरोधों की अनदेखी करता है बल्कि उसकी वर्गीय दृष्टि अन्य अंतर्विरोधों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने में सहायक होती है।

यथार्थवाद ने उपन्यास की संरचना पर कई तरह से प्रभाव डाला है। अपने आरंभिक रूप में यथार्थवाद के प्रभाव में उपन्यासकारों ने उपन्यासों में समाज के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि को ज्यादा तरज़ीह दी, उन्होंने सामाजिक परिवर्तन पर तो जोर दिया, लेकिन वे इस बारे में स्पष्ट नहीं थे कि परिवर्तन के बाद समाज का स्वरूप क्या होगा। ऐसी कृतियों को आलोचनात्मक यथार्थवाद के अंतर्गत परिगणित किया गया। लेकिन सोवियत संघ में समाजवाद की स्थापना के बाद समाजवाद एक स्वप्न नहीं सच्चाई बन गया था। इसलिए रचनाकारों के एक हिस्से ने समाजवादी आदर्शों से अनुप्रेरित रचनाओं को ही अपना आदर्श घोषित किया। ऐसी रचनाओं को समाजवादी यथार्थवाद के अंतर्गत माना गया। आज जब सोवियत संघ का विघटन हो गया है। समाजवाद का स्वप्न अब लेखकों के आदर्श के रूप में इस तरह लोकप्रिय नहीं रहा, फिर भी यथार्थवाद का प्रभाव साहित्य रचना में कम नहीं हुआ। ऐसे जटिल दौर में, जब बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों के लिए राष्ट्रों के हितों को, अपार जनसमूह के हितों को कुरबान किया जा रहा है, जब साम्राज्यवाद का सिंहनाद चारों ओर गूंज रहा है, यथार्थवाद भी नए रूप में सामने आ रहा है। जादूई यथार्थवाद यथार्थवाद का नवीनतम संस्करण है जो तीसरी दुनिया के रचनाकारों के बीच लोकप्रिय है।

3.7.3 आधुनिकतावादी और उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टि

यथार्थवादी लेखक प्रायः मार्क्सवाद के प्रभाव में थे लेकिन जो लेखक मार्क्सवाद को अपनी रचनाशीलता के लिए उपयुक्त नहीं मानते थे, उनमें से ज्यादातर आधुनिकतावाद के प्रभाव में थे। आधुनिकतावाद प्रतिगामी विचारधारा नहीं है। वह समाज को एक आधुनिक, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष स्वरूप देने की पक्षधर विचारधारा है यद्यपि इसका मार्क्सवाद से विरोध है। वह व्यक्ति-स्वातंत्र्य का समर्थन करता है जबकि समाजवादी समाजों में व्यक्ति-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर किए गए हमलों को आधुनिकतावादी लेखकों ने अपनी आलोचना का आधार बनाया। हिंदी में अज्ञेय, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, मोहन राकेश, उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी, कृष्णबलदेव वैद आदि लेखकों पर आधुनिकतावादी दृष्टि का प्रभाव है। इन लेखकों ने मुख्य रूप से महानगरीय, बाहरी और कस्बाई मध्यवर्ग के जीवन को आधार बनाकर लेखन किया। इनके उपन्यासों में नगरीय जीवन से उत्पन्न भावनाओं का विशेष रूप से चित्रण मिलता है। व्यक्तिवादी नज़रिए के कारण अकेलापन, संत्रास, अजनबीपन, घुटन, जैसे भावों का ही प्राबल्य इनके लेखन में मिलता है। स्त्री-पुरुष संबंधों के विभिन्न रूप और स्तर भी इनके उपन्यासों का प्रमुख विषय रहा है।

आधुनिकतावाद के बाद हिंदी लेखकों के एक समूह पर आजकल उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टि का प्रभाव देखा जा सकता है। यह आधुनिकता और प्रगतिशीलता का द्योतक भी है। यद्यपि हिंदी लेखकों में यह प्रकृति बहुत अधिक प्रभावी नहीं है फिर भी मनोहरश्याम जोशी, कृष्ण बलदेव वैद, विनोदकुमार शुक्ल आदि कि उपन्यासों के संदर्भ में उत्तर आधुनिकता की चर्चा होने लगी है। उत्तर आधुनिकता के इस दौर की एक और पहचान यह है कि इसमे हाशिए के लोगों वर्गों, समूहों, समुदायों खासकर दलित, स्त्री और अल्पसंख्यक समुदाय के जीवन को उपन्यासों का विषय बनाना शामिल है। यह उत्तर आधुनिक दौर का सकारात्मक पहलू है।

3.8 सारांश

उपन्यास के सैद्धांतिक पक्ष के विवेचन का महत्वपूर्ण पहलू उपन्यासों का वर्गीकरण है। उपन्यासों के वर्गीकरण का आधार उपन्यास की रचना के उद्देश्य, कथावस्तु के स्वरूप,

चरित्रों के प्रकार, शैली की विविधता और जीवन-दृष्टि के अंतर के आधार पर किया जा सकता है।

उपन्यास लेखन का उद्देश्य राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक हो सकता है। इस कारण उपन्यास का वर्गीकरण राजनीतिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, सांस्कृतिक उपन्यास और साहित्यिक उपन्यास के रूप में किया जा सकता है।

उपन्यास का वर्गीकरण कथावस्तु की भिन्नता के आधार पर भी किया जा सकता है। कथावस्तु घटना प्रधान, सामाजिक, आँचलिक ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, विज्ञानपरक आदि हो सकती है। इसके आधार पर उपन्यास का वर्गीकरण जासूसी, तिलस्मी, सामाजिक, आँचलिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और विज्ञानपरक किया जा सकता है।

उपन्यास का वर्गीकरण चरित्रों के आधार पर भी किया जाता है। उपन्यास के पात्र सामाजिक, व्यक्तिवादी, प्रातिनिधिक, प्रतीकात्मक और मिथकीय हो सकते हैं इसके आधार पर उपन्यास सामाजिक, व्यक्तिवादी, प्रातिनिधिक, मिथकीय और प्रतीकवादी कहे जा सकते हैं।

उपन्यास विभिन्न शैलियों में लिखे जा सकते हैं जिसके आधार पर उन्हें वर्णनात्मक, व्यंग्य प्रधान, आत्मकथात्मक, जीवनीपरक, रूपक प्रधान कहा जा सकता है।

जीवन-दृष्टि और कला-दृष्टि के आधार पर उपन्यास को आदर्शवादी, भाववादी, यथार्थवादी, आधुनिकतावादी, प्रगतिवादी, उत्तर आधुनिकतावादी, अस्तित्ववादी आदि कहे जा सकते हैं।

अभ्यास

1. उपन्यासों के वर्गीकरण के विभिन्न आधारों का उल्लेख कीजिए।
2. कथावस्तु के आधार पर उपन्यास के विभिन्न प्रकारों का विवेचन कीजिए।
3. उपन्यासों की विभिन्न शैलियों का उल्लेख करते हुए उपन्यास का वर्गीकरण कीजिए।

इकाई 4 : उपन्यास की आलोचना दृष्टियाँ

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 उपन्यास की आलोचना का वैचारिक आधार
 4.2.1 सामंतवाद का पतन और पूंजीवाद का उदय
 4.2.2 ज्ञानोदय की अवधारणा
 4.2.3 यथार्थवाद का विकास
 4.2.4 आधुनिकतावाद-अस्तित्ववाद
 4.2.5 उत्तर आधुनिकता
4.3 उपन्यास की आलोचना : प्रमुख मुद्दे
4.4 उपन्यास और यथार्थवाद
 4.4.1 आलोचनात्मक यथार्थवाद
 4.4.2 समाजवादी यथार्थवाद
 4.4.3 जादुई यथार्थवाद
4.5 उपन्यास और प्रकृतवाद
4.6 उपन्यास की समाजशास्त्रीय आलोचना
4.7 सारांश
 खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

एम एच डी-13 पाठ्यक्रम के दूसरे खंड, 'उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-2' की चौथी और अंतिम इकाई 'उपन्यास की आलोचना दृष्टियाँ' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई का उद्देश्य उपन्यास की आलोचना के विकास पर विचार करना है। उपन्यास की आलोचना साहित्य की अन्य विधाओं की आलोचना का अंग भी है और उससे अलग और विशिष्ट भी। उपन्यास के विकास के साथ-साथ आलोचना का भी विकास हुआ है। उपन्यास की आलोचना के वैचारिक आधार पर भी इस इकाई में विचार किया गया है। साथ ही उपन्यास की आलोचना से संबद्ध प्रमुख सिद्धांतों विशेषतः यथार्थवाद, प्रकृतवाद, आधुनिकतावाद और उत्तर आधुनिकतावाद पर भी इकाई में प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में उपन्यास की आलोचना से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर भी प्रकाश डाला गया है जिनमें यथार्थ, नायकत्व, शैली और भाषागत प्रयोग शामिल हैं। ये ऐसे मुद्दे हैं जो उपन्यास संबंधी आलोचना में बार-बार आते हैं। इस इकाई के अध्ययन से आप उपन्यास की आलोचना संबंधी विभिन्न दृष्टियों को समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

'उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप-2' की इस अंतिम इकाई में आप उपन्यास की आलोचना पर विचार करने जा रहे हैं। इससे पहले की तीन इकाइयों में आपने उपन्यास के वस्तु और शिल्प, उपन्यास की भाषिक संरचना और उपन्यास के विभिन्न वर्गीकरणों के बारे में अध्ययन किया है। पहले खंड और दूसरे खंड की तीन इकाइयों को पढ़ लेने के बाद आप अपने अध्ययन के ऐसे मुकाम पर पहुँच गए हैं, जहाँ उपन्यास की आलोचना के सैद्धांतिक पक्ष को जान लेना आवश्यक है।

उपन्यास साहित्य की नवीन विधा है जिसका उदय पूंजीवाद के साथ हुआ। उपन्यास के उदय को गद्य के विकास के साथ जोड़कर देखा जाता रहा है। उपन्यास संभव ही इसलिए हुआ

क्योंकि गद्य में भी अब महाकाव्यात्मक रचना करना संभव था। प्रेस के आगमन के कारण गद्य रचनाओं को मन चाहा विस्तार देकर उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया जा सकता है। उपन्यास में आधुनिक युग की जटिलताओं को पूरी गहराई और विस्तार के साथ अभिव्यक्त करना मुमकिन है जबकि यह इससे पहले इस तरह और इस सीमा तक संभव नहीं था।

उपन्यास का संबंध यथार्थवाद के साथ भी जोड़कर देखा जाता है और आधुनिकतावाद से भी। ये दोनों अवधारणाएँ एक दूसरे की विरोधी समझी जाती है लेकिन इन दोनों का उदय और विकास इसी आधुनिक पूंजीवादी समाज में हुआ है। उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति एक अनिवार्य शर्त की तरह है। लेकिन क्या यथार्थ को यथार्थ की तरह प्रस्तुत किया जाना उपन्यास की रचनात्मकता के लिए हितकर है? इसी से उस द्वंद्व की शुरुआत होती है जिसकी वजह से रचनाकार उपन्यास में यथार्थ को भिन्न-भिन्न ढंग से व्यक्त करता है। यथार्थ को व्यक्त करने के इन अलग-अलग तरीकों का कारण यथार्थ के प्रति लेखक के दृष्टिकोण में निहित होता है। उपन्यास को समझने के लिए इस दृष्टिकोण को समझने की ज़रूरत है। दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि यथार्थ निरंतर बदलता रहता है और इस बदले हुए यथार्थ को उपन्यास के परंपरागत ढाँचे में प्रस्तुत करना रचनाकार को उपयुक्त नहीं लगता और वह उपन्यास के लिए नए शिल्प की तलाश करता है। यह तलाश किस हद तक सफ़ल हुई है और इसने उपन्यास की समग्र रचना पर क्या प्रभाव छोड़ा है, इसे समझना ज़रूरी हो जाता है। उपन्यास की आलोचना पर विचार करते हुए इस महत्वपूर्ण पहलू की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

उपन्यास का उदय यदि पूंजीवादी युग में हुआ है तो उसकी विशेषताओं और सीमाओं के प्रभाव से उपन्यास बच नहीं सकता। यदि अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी के यूरोप में ज्ञानोदय के वैचारिक प्रभाव के बिना उपन्यास को नहीं समझा जा सकता तो उपन्यास के संदर्भ में इस पर भी विचार करना ज़रूरी है। आधुनिकता की परियोजना का संबंध ज्ञानोदय से है तो उत्तर आधनिकता ज्ञानोदय और आधुनिकता को नकारकर ही आगे आ रही है। उपन्यास रचना पर उत्तर आधुनिकता के प्रभाव को समकालीन उपन्यासों पर साफ तौर पर देखा जा सकता है। इस प्रकार इस इकाई में उपन्यास के उदय और विकास के साथ उभरे इन सभी महत्वपूर्ण मुद्दों और सवालों को इस इकाई में विचार का विषय बनाया गया है, जिसके अध्ययन से उपन्यास की आलोचना से जुड़े सिद्धांतों को समझने में मदद मिलेगी।

4.2 उपन्यास की आलोचना का वैचारिक आधार

उपन्यास का जन्म आधुनिक यूरोप में हुआ। सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में यूरोप सामंतवाद की जकड़न से मुक्त होकर पूंजीवाद की ओर कदम बढ़ा रहा था। पूंजीवाद का विकास उत्पादन के साधनों में होने वाले परिवर्तनों और उन साधनों पर नियंत्रण रखने वाले नए वर्ग के उदय के साथ हुआ। यह नया वर्ग पूंजीपति वर्ग था जिसे कभी ढीले-ढाले ढंग से बुर्जुआ वर्ग भी कह दिया जाता है। बुर्जुआ वर्ग में प्रायः निम्न पूंजीपति वर्ग को भी शामिल कर लिया जाता है जबकि कई बार इसे पेटी बुर्जुआ वर्ग भी कहा जाता है। तात्पर्य यही है कि पूंजीवाद के विकास के साथ दो मुख्य वर्ग पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग (प्रोलेतेरियत) के साथ-साथ मध्यवर्ग का भी उदय हुआ। इसी मध्य वर्ग का संबंध आधुनिक साहित्य सृजन और सिद्धांत-विवेचन से है। पूंजीवाद के विकास के साथ पूंजीवाद विरोधी विचारधाराओं का भी विकास हुआ, इनमें मार्क्सवाद एक प्रमुख विचारधारा है जिसने समाज के विकास के ऐतिहासिक चरणों की व्याख्या की, वहीं दूसरी ओर प्रत्येक समाज के विभिन्न वर्गों के बीच चलने वाले संघर्षों और उनके परस्पर संबंधों को भी परिभषित किया। यथार्थवाद का उदय इसी मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण हुआ। उपन्यास से संबंधित आलोचना-सिद्धांतों को समझने के लिए आधुनिक युग के इन विभिन्न पहलुओं को समझना आवश्यक है। इस भाग के विभिन्न उपभागों में हम इन पहलुओं पर भी संक्षिप्त प्रकाश डालेंगे।

4.2.1 सामंतवाद का पतन और पूंजीवाद का उदय

उत्पादन के साधनों में परिवर्तन होने के साथ-साथ नए वर्गों का उदय हुआ। ये नए वर्ग थे, पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग। नए उभरते पूंजीपति वर्ग के लिए ज़रूरी था कि वे राजसत्ता को सीधे अपने अधिकार में ले, तभी उत्पादन के साधनों पर उनका वर्चस्व कायम हो सकता था। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में सामंती राज्य व्यवस्थाओं के विरुद्ध होने वाले विभिन्न विद्रोह और क्रांतियों का मकसद सामंती व्यवस्थाओं को खत्म करना या कमजोर करना था। यह काम नए विचारों के साथ ही संभव था। ज्ञानोदय की विचारधारा जिसका आधार स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व था, उसे पूंजीपति वर्ग ने अपने हितों के लिए आगे बढ़ाया जबकि सामंतवाद का आधार न स्वतंत्रता थी और न समानता. सामंतवाद भूस्वामित्व पर टिकी व्यवस्था थी जिसमें धर्म और धार्मिक संस्थाओं (चर्च आदि) की केंद्रीय भूमिका थी जबकि पूंजीवाद पूंजी के वर्चस्व पर टिकी व्यवस्था है। पूंजीवाद के विकास के लिए ज़रूरी था कि भूस्वामित्व पर टिकी राजसत्ता पर सामंतों के वर्चस्व को चुनौती दी जाती। इस व्यवस्था को वैधता प्रदान करने वाले चर्च से भी इस प्रक्रिया में टकराव होना अनिवार्य हो गया था। लेकिन सामंती व्यवस्था को चुनौती पूंजी के समर्थन से नहीं बल्कि ऐसे विचारों द्वारा ही संभव थी, जो अपने मूल मंतव्य में पूंजीवाद के लिए भी चुनौती बन सकते हैं। सामंतवाद से पूंजीवाद में समाज के रूपांतरण पर टिप्पणी करते हुए 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' में मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा था :

"बुर्जुआ वर्ग ने, जहाँ कहीं भी उसकी चल निकली, तमाम सामंती, पितृसत्तात्मक और नैसर्गिक संबंधों का खात्मा कर दिया है। बिना किसी लिहाज के उसने उन चित्र-विचित्र सामंती नातों को तोड़ फेंका है जो मानव को 'उसके सहज बड़ों' से बांधे थे और नंगे स्वार्थ तथा हृदयहीन 'नगद भुगतान' के सिवा मानव और मानव के बीच अन्य कोई बंधन बाकी नहीं छोड़ा है। धार्मिक तन्मयता के परम स्वर्गिक आनंद को, शूरविरों के उत्साह और मूढ़ों के भावुकतापूर्ण आल्हाद को, इसने अहम्वादी मोलभाव के बर्फीले पानी में डुबो दिया है। व्यक्ति की कदर को इसने विनिमय मूल्य में बदल दिया है, और अनगिनत अत्याज्य अधिकृत आजादियों के स्थान पर उन्मुक्त व्यापार की एक अकेली बेलाग आजादी को स्थापित कर दिया है। एक शब्द में, धार्मिक तथा राजनीतिक भ्रमों से ढके शोषण की जगह इसने नंगे, निर्लज्ज, सीधे और बर्बर शोषण को स्थापित कर दिया है।" सामंतवाद से पूंजीवाद की ओर गमन के इस विवेचन का गहरा संबंध उपन्यास की उत्पत्ति और विकास से है।

4.2.2 ज्ञानोदय की अवधारणा

आधुनिकता को आमतौर पर पूंजीवादी विकास से जोड़कर देखा जाता है और पुरातनता से तात्पर्य यह लिया जाता है कि वे मूल्य और विचार जिनका संबंध प्राक्-पूंजीवादी समाजों से है। इस प्रकार पुरातन और आधुनिक दो विपरीत अर्थ-संदर्भों को व्यक्त करते हैं। यह और बात है कि अब आधुनिकता को पूंजीवादी विकास के साथ जोड़कर देखने की चुनौती दी जाने लगी है। एलेन मिक्सिन्स वुड ने अपने प्रसिद्ध लेख 'आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता या पूंजीवाद?' में इस बात पर बल दिया है कि आधुनिकता का संबंध पूंजीवाद से नही बल्कि ज्ञानोदय से है। उनका मानना है कि, "ज्ञानोदय परियोजना के अधिकांश का संबंध स्पष्ट रूप से गैर पूंजीवाद से है, न सिर्फ पूर्व-पूंजीवाद बल्कि गैर पूंजीवादी समाज से।" वे आधुनिकता और ज्ञानोदय के अंतःसंबंधों को स्पष्ट करते हुए लिखती हैं, "ज्ञानोदय अर्थात् विवेकशीलता और विवेकशील नियोजन का जुनून, विश्व के "पूर्णतावादी" दृष्टिकोणों के प्रति लगाव, ज्ञान का मानकीकरण, सार्वभौमिकता-सार्वभौमिक सत्यों और मूल्यों में यकीन, और रैखिक प्रगति, विशेषतः बुद्धि और स्वतंत्रता की प्रगति में विश्वास। इन लक्षणों को पूंजीवादी विकास के साथ जुड़ा माना जाता है, शायद इसलिए कि आरंभिक पूंजीवाद अपने को अनावृत्त करते हुए उनका सृजन कर रहा था या इसलिए कि विवेकीकरण जैसे इन असूलों की प्रगति अपने साथ पूंजीवाद को लेकर भी आई।" उपर्युक्त दृष्टिकोण के अनुसार पूंजीवाद ने दरअसल ज्ञानोदय की कुछ संकल्पनाओं का उस हद तक ही इस्तेमाल किया जहाँ तक वे उनके हित

में थे। लेकिन जब वे उनके मार्ग में बाधक बनकर उपस्थित हो गए तो उन्होंने इनसे अपना पल्ला झाड़ लिया। बहरहाल, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि उपन्यास विधा का संबंध यदि पूंजीवादी समाज बनने की भौतिक अनिवार्यताओं से है तो उसका वैचारिक आधार सिर्फ पूंजीवाद से निःसृत नहीं हुआ है।

4.2.3 यथार्थवाद का विकास

आधुनिक कला सिद्धांतों में यथार्थवाद का केंद्रीय महत्व है। यथार्थवाद का तात्पर्य सिर्फ यह नहीं है कि साहित्य या अन्य कला रूपों में यथार्थ को व्यक्त किया जाए बल्कि साहित्य और अन्य कला रूपों में जो कुछ भी व्यक्त होता है उसका यथार्थ से प्रत्यक्ष और परोक्ष संबंध अवश्य होता है। यथार्थवाद का संबंध इस वस्तुजगत से है, लेकिन वह इस तक सीमित नहीं है। इसी बात को व्याख्यायित करते हुए हिंदी आलोचक डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते हैं, "हमारे कहने का तात्पर्य यहाँ यही है कि कलाकार या रचनाकार का सरोकार मूलतः इस वस्तुजगत और उसके अनंत रूपों से ही होता है। उनके अभाव में सार्थक कला रचना संभव ही नहीं है। यही कारण है कि कला रचना के एकदम प्रारंभिक युगों से उसके अद्यतन विकासित रूप तक उसकी रचना प्रक्रिया का यही स्वरूप रहा है। साहित्य एवं कला के क्षेत्र में एक आंदोलन के रूप में अथवा साहित्य तथा कला रचना के एक सुसंगत दृष्टिकोण के रूप में, यथार्थवाद का उदय अवश्य सामाजिक और बौद्धिक जीवन के विकास के एक खास दौर में हुआ, किंतु कला तथा साहित्य रचना की सहज और अंतर्निहित प्रवृत्ति के रूप में उसकी स्थिति बराबर बनी रही है।" (यथार्थवाद, पृ. 20)

यथार्थवाद को समझने के लिए कला और यथार्थ के पारस्परिक संबंधों को समझना आवश्यक है। कला और वास्तविकता के पारस्परिक संबंधों की व्याख्या करते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते हैं "जिस प्रकार अपने साथ ही स्पष्ट होने वाले अर्थ अथवा विचार से पृथक शब्द का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार सच्ची कला अपने बिंब को उसके वस्तुतत्व से वंचित नहीं कर सकती। अर्थात् वह अपने बिंब का संबंध, जो कुछ प्रकृति के क्षेत्र में अथवा मानवीय विचारों या भावनाओं के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप में स्थित है, उससे काट नहीं सकती, कारण यह सब वास्तविकता के साथ उतने ही अभिन्न रूप में जुड़ा हुआ है, जितना कि वस्तुजगत।"

अठारहवीं सदी में हो रहे परिवर्तनों का असर साहित्य पर भी दिखाई दे रहा था। फ्रांस की राज्यक्रांति (1789 ई.) ने सामंती व्यवस्था को चुनौती दी। ज्ञानोदय के प्रभाव में जिन नए आदर्शों और मूल्यों का प्रसार हुआ उसने साहित्य में एक नए आंदोलन को जन्म दिया जिसे रोमांटिसिज्म या स्वच्छंदतावाद के नाम से जाना जाता है। स्वच्छंदतावाद का प्रभाव सिर्फ क़विता पर नहीं पड़ा बल्कि उपन्यास रचना पर भी पड़ा। रिचर्डसन, डेफो, स्मालेट, फील्डिंग, स्विफ्ट, दिदरो वाल्तेयर आदि की रचनाएँ पूर्णतः यथार्थवादी रचनाएँ नहीं हैं इनमें क़ल्पना और यथार्थ का सामंजस्य देखने को मिलता है। रैल्फ फॉक्स ने अठारहवीं सदी को उपन्यासों का स्वर्ण युग कहा है। वे लिखते हैं, "इस युग के उपन्यासों में सर्वेन्टीज़ और रैबिले जैसी अद्भुत कल्पना की उड़ान तो नहीं थी, जो यह दिखा सके कि कल्पना किस प्रकार वास्तविकता को दानवी शक्ति से बदल सकती है, किंतु वे मानव से डरे नहीं। और बिना किसी रू-रियायत के उन्होंने जीवन के बारे में साहस के साथ खरी बात कही। उनमें व्यंग्य है और हास्य भी, और मानव को यह समझने के लिए वे बाध्य करते हैं कि व्यक्ति का एक आंतरिक जीवन भी होता है और बाह्य जीवन भी। मानव के लिए उन्होंने प्रकृति को खोज निकाला, और फील्डिंग, स्विफ्ट, वाल्तेयर, दिदेरो और रूसो की कृतियों द्वारा उन्होंने मानव में यह चेतना जागृत की कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ इस दुनिया में भी सब कुछ श्रेष्ठ नहीं है।" लेकिन इस सदी के साहित्यकार पूर्णतः यथार्थवादी नहीं थे, शिवकुमार मिश्र के अनुसार वे अनुभूतिवादी थे। "उसमें वह साहित्यिक या कलात्मक उत्कर्ष नहीं है, जो जीवन को उसके समूचे रंगों और तेवरों में उभार सकता। उनमें नायकों के आदर्शीकरण की प्रवृत्ति तथा एक किस्म की नीतिपरक उपदेशवादिता भी है।" स्पष्ट ही अठारहवीं सदी के लेखकों ने सामंती अधोपतन और दस्तक

देते नए युग की आकांक्षाओं और सपनों को वाणी दी, लेकिन यथार्थवाद का पूर्ण विकास तो उन्नीसवीं सदी में ही हुआ।

4.2.4 आधुनिकतावाद-अस्तित्ववाद

आधुनिकता का संबंध यदि ज्ञानोदय से है तो आधुनिकतावाद का संबंध उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के आरंभ की परिस्थितियों से है। उन्नीसवीं सदी के अंत तक आते-आते पूंजीवादी विकास के प्रति मोहभंग होने लगा था। पूंजीवाद के विकास के साथ जो औद्योगिक प्रगति और मशीनीकरण हुआ उसने समाज में नई तरह की समस्याएँ पैदा की। पूंजीवाद के साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों के सार्वभौम स्वीकार के बावजूद बहुत कुछ ऐसा भी हो रहा था, जो अवांछनीय था। उद्योगीकरण के साथ पुराने नैतिक आधार नष्ट होने लगे, आदमी एकाकी होने लगा, जिन संबंधों और मूल्यों को वह अब तक महत्वपूर्ण मान रहा था, वे छिन्न-भिन्न होने लगे थे। आधुनिकतावाद के प्रभाव में रचनाकारों ने जहाँ एक ओर मार्क्सवाद से नाता तोड़ा तो दूसरी ओर वे पूंजीवादी सभ्यता के साथ विकसित तकनीकी सभ्यता की भी तीखी आलोचना करते थे। अस्तित्ववाद इसी आधुनिकतावाद का ही एक जीवन दर्शन है। जर्मन दार्शनिक कार्ल यास्पर्स के अनुसार तकनीकी सभ्यता एक तरह का सामाजिक रोग है। वे विवेकशीलता को भी मनुष्य के लिए हितकर नहीं मानते। अस्तित्ववादी चिंतन को दिशा देने में फ्योदोर दोस्तोव्स्की, फ्रेंज काफ्का, ज्यां पॉल सार्त्र, अल्बेयर कामू जैसे कथाकारों का भी कम योगदान नहीं है। दोस्तोव्स्की ने यूरोप के तत्कालीन मध्यवर्ग के खोखलेपन को उजागर किया तथा इसी से प्रेरित होकर उसने निःशेषवादी पात्रों की सृष्टि की। दोस्तोव्सकी से भिन्न काफ्का का रचना-संसार एक निराश और हताश तथा तनावों से भरे दिशाहारा कलाकार का रचना-संसार है। इसका कारण उसका यह विश्वास था कि कहीं भी अशुभ-शक्तियों का प्रतिरोध नहीं हो रहा है। समाज उसे सिद्धांत-विहीन लगा। काफ्का को मानव-अस्तित्व की अर्थहीनता की बड़ी तीखी अनुभूति हुई थी। यही अर्थहीनता जहाँ उसे एक ओर अकेला और एकाकी बनाता है तो दूसरी ओर 'एब्सर्ड' की सृष्टि भी करता है। काफ्का की ही तरह अल्बअयर कामू के साहित्य में युग की चिंताओं के प्रति जागरूकता भी दिखाई देती है। आरंभ से ही कामू अपने साहित्य में अस्तित्व संबंधी प्रश्नों से जूझता रहा। कामू और काफ्का दोनो ही में जीवन और जगत के प्रति एब्सर्ड धारणा ने अजनबीपन की भावना को बल प्रदान किया। दुनिया में कोई अर्थ नहीं है, आदमी अकेला आया है और अकेला ही चला जाएगा। ऐसे में वह अपने को हर कहीं मिसफिट या आउटसाइडर महसूस करता है।

कामू और काफ्का के इस आत्मनिष्ठ सोच को ही ज्यां पॉल सार्त्र ने दार्शनिक जामा पहनाया। सार्त्र मानते हैं कि हमारे कर्मों को दिशा देने वाला कोई बाह्य मूल्य या आदर्श नहीं है। बल्कि वह हमारी संवेदना ही है जो हमे निर्णय करने को आधार देती है। लेकिन इस संवेदना को मापने का कोई वस्तुगत आधार नहीं होता। उनके अनुसार, हम अपने विवेक के अतिरिक्त किसी व्यक्ति, दल, देश या विचारधारा पर विश्वास नहीं कर सकते। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम निष्क्रियता को प्रोत्साहित कर रहे हैं बल्कि हम उस सच्ची आत्मपरक यथार्थता को प्रस्तुत कर रहे हैं जिसके आधार पर ही हम वर्तमान मे कर्म की ओर प्रवृत्त होते हैं। सार्त्र भविष्य की किसी नियत दिशा में विश्वास नहीं करते क्योंकि उसका मानना है कि कल का मनुष्य अपने युग का निर्माण कैसे करेगा, यह आज नहीं कहा जा सकता।

4.2.5 उत्तर आधुनिकता

समकालीन उपन्यासों के संदर्भ में आजकल उत्तर आधुनिकता की चर्चा होती है। उत्तर आधुनिकता क्या है, इसकी ठीक-ठीक व्याख्या करना आसान नहीं है। उत्तर आधुनिकता आधुनिकतावाद का विरोधी विचार नहीं है और न ही यह आधुनिकता का नया रूप है। दरअसल इसे कभी आधुनिकता के ही एक नए चरण के रूप में देखा जाता है तो कभी इसे मौजूदा दौर के पूंजीवाद से निःसृत विचारधारा मानते हैं। यह भी कह सकते हैं कि यदि आधुनिकता का संबंध ज्ञानोदय से है तो उत्तर आधुनिकता की एक धारा ज्ञानोदय की परंपरा

के विरोध में खड़ी नज़र आती है। उत्तरं आधुनिकता विवेकशीलता का विरोध करती है। वह जीवन में किसी उद्देश्य के होने को अस्वीकार करती है। वह दुनिया के क्रिया व्यापार को उद्देश्य हीन-लक्ष्यहीन क्रीड़ा मात्र समझता है। उसे किसी भी वस्तु या व्यापार में कोई संगति, कोई रूप नज़र नहीं आता बल्कि उसे सभी कुछ विश्रृंखल दिशाहीन और अरूप दिखाई देता है। वह महावृतांतों की बजाए टुच्चे अनुभवों तक अपने को सीमित रखता है। वह साहित्य को भी 'पाठ' और उसके विखंडन में बदल देती है। साहित्य का पाठ भी खेल की तरह है जहाँ अर्थ-संदर्भ पाठक और स्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। उत्तर आधुनिकता में कुछ भी निश्चित नहीं है। वास्तविकता भी न निश्चित है न विवेकपूर्ण। दुनिया में बहुत कुछ ऐसा हो रहा है, जो है तो वास्तविक लेकिन जिसे विवेकपूर्ण नहीं माना जा सकता।

उत्तर आधुनिकता ने भले ही विचारधाराओं, महावृतांतों और सार्वभौमिक लक्ष्यों को अस्वीकार किया हो, लेकिन इसने अल्पसंख्यकों, हाशिए पर धकेल दिए गए समुदायों, नारी विमर्श की ओर एक बार फिर ध्यान आकृष्ट किया है। इसने भूमंडलीकरण के दौर में छूटते जा रहे हाशिए के सवालों को फिर से केंद्र में ला दिया है। उत्तर आधुनिकता के पास किसी प्रश्न का उत्तर भले न हो, लेकिन इसने कई प्रासंगिक और उपेक्षित सवालों को फोकस में ला दिया है।

4.3 उपन्यास की आलोचना : प्रमुख मुद्दे

उपन्यास की आलोचना का आरंभ उपन्यास रचना के साथ-साथ नहीं हुआ। उपन्यास रचना की शुरुआत के समय साहित्य की प्रमुख विधाएँ दो ही थीं, काव्य और नाटक। इसलिए यह बहुत स्वाभाविक था कि उपन्यास संबंधी आलोचना सिद्धांतों का विकास काव्य और नाटक संबंधी आलोचना सिद्धांतों से प्रभावित और प्रेरित हो। इसके बावजूद बहुत से ऐसे पक्ष हैं जो बताते हैं कि उपन्यास के लिए आलोचना के मानदंड कुछ और होने चाहिए। मसलन उपन्यास महाकाव्य की तरह एक बृहदकाय विधा है जिसमें व्यापक कथानक, बहुत से पात्र और जीवन-संघर्ष को व्यापक फलक पर देख सकने की क्षमता होती है। इसके बावजूद उपन्यास और महाकाव्य में अंतर है। उपन्यास आवश्यक नहीं कि नायक केंद्रित हो और न ही यह आवश्यक है कि उपन्यास का नायक धीरोदात्त श्रेणी का हो। प्रेमचंद का उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में नायक नहीं खलनायक केंद्र में है। 'रंगभूमि' का नायक न किसी शाही परिवार से संबद्ध है और न ही राजसी शान शौकत उसमें है, फिर भी वह किसी भी महान् से महान् नायकों से अधिक प्रभावशाली और प्रेरणास्पद है। यही बात होरी के बारे में सही है जिसमें न तो सूरदास जैसा साहस है और न संघर्ष क्षमता उसके बावजूद होरी हिंदी ही नहीं भारतीय उपन्यास साहित्य के अमर नायकों में सिरमौर है।

उपन्यास की आलोचना से जुड़ा दूसरा प्रश्न उसमें अभिव्यक्त जीवन है। उपन्यास लेखन के आरंभिक प्रयासों में ही हम पाते हैं (इस बारे में आप विस्तार से खंड-तीन में पढ़ेंगे) कि उपन्यास में साधारण लोगों की असाधारण कथाओं का वर्णन किया जाता है। 'रॉबिन्सन क्रूसो' का नायक क्रूसो एक मामूली नाविक है जिसकी रोमांचकारी यात्राओं का वृतांत पाठकों को कल्पना के अद्भुत संसार में ले जाता है। यही बात 'डॉन क्विग्जोट' के बारे में लागू होती है जो पूर्व के महाकाव्यों के महानायकों की पैरोडी लगता है। लेकिन उसके ऐसे होने में हीं भविष्य के संकेत मिलने लगते हैं। अठारहवीं सदी के उपन्यासों में ही हमें सामान्य लोगों के सामान्य जीवन की अभिव्यक्ति मिलने लगती है। पहली बार साहित्य में साधारण किसान, मज़दूर, शिक्षक, छोटे व्यापारी, क्लर्क, विद्यार्थी, बेरोज़गार, घरेलू स्त्रियाँ, वेश्याएँ साहित्य में महत्वपूर्ण जगह पाने लगते हैं। इनके जीवन के छोटे-छोटे प्रसंग, इनकी उलझनें, तकलीफें, इनके संघर्ष उपन्यासों में आकर ऐसे आकर्षक और अद्भुत संसार की सृष्टि करते हैं जिसकी इससे पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। शेक्सपियर के त्रासद नाटकों से कहीं पीड़ादायक त्रासदी की रचना 'गोदान' में दिखाई देती है। 'होमर' और 'इलियड' या

'रामायण' और 'महाभारत' से कहीं ज्यादा विराट संघर्ष 'ओल्ड मेन एंड द सी' और 'रंगभूमि' में व्यक्त होता है।

उपन्यास के संदर्भ में तीसरा प्रश्न वास्तविकता की अभिव्यक्ति का है। उपन्यास गद्य में लिखे जाने के कारण वास्तविकता को अभिव्यक्त करने में सबसे ज्यादा सक्षम है। जाहिर है कि वास्तविकता एक-सी नहीं है। उसमें यदि साहस, त्याग, संघर्ष और सच्चाई है तो, स्वार्थ, समझौता, कुत्सित और घिनौने पक्ष भी हैं। वास्तविकता को व्यक्त करने का तात्पर्य कदापि यह नहीं है कि जीवन के सिर्फ नकारात्मक पक्षों को व्यक्त किया जाए और न ही इसका तात्पर्य सिर्फ सकारात्मक पक्षों को प्रस्तुत करना है बल्कि वास्तविकता के प्रति वस्तुपरक दृष्टिकोण आवश्यक है। उपन्यास में जीवन के किसी भी पक्ष को प्रस्तुत किया जा सकता है, लेकिन उपन्यासकार उनमें तार्किकता और सुसंगति की तलाश भी करता है जिसके बिना उपन्यास एक साहित्यिक रचना के रूप में नाकामयाब हो सकता है। उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति से जुड़े अन्य प्रश्नों का विवेचन हम प्रकृतवाद और यथार्थवाद के संदर्भ में करेंगे।

उपन्यास के संदर्भ में चौथा प्रश्न भाषा और शिल्प का है। गद्य रचना होने के साथ-साथ, जीवन की व्यापक और बहुविध तस्वीर पेश करने की क्षमता के कारण उपन्यास में गद्य की अन्य विधाओं जैसे आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, यात्रावृतांत, कहानी ही नहीं निबंध की विशेषताओं का भी प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन इस बात का निर्धारण उपन्यास की कथावस्तु से होता है। उपन्यासकार इन विधाओं का प्रयोग करते हुए कथा कहने के लिए वर्णन, विवरण और विश्लेषण ही नहीं, ज़रूरत पड़ने पर बिंबात्मक, प्रतीकात्मक और मिथकीय पद्धतियों का भी इस्तेमाल करता है। भाषा के स्तर पर भी उपन्यासकार के लिए इतनी संभावनाएँ मौजूद होती हैं कि वह बोलचाल की भाषा से लेकर निबंध की विश्लेषणत्मक भाषा और काव्य भाषा की विशेषताओं का इस्तेमाल कर सकता है। उपन्यास की आलोचना के संदर्भ में इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखना ज़रूरी है। अब, आगे हम उपन्यास संबंधी आलोचना के प्रमुख सिद्धांतों पर विचार करेंगे। इनमें यथार्थवाद और प्रकृतवाद प्रमुख हैं।

4.4 उपन्यास और यथार्थवाद

यथार्थवाद का संबंध दर्शनशास्त्र और कलाशास्त्र दोनों से है। दर्शन के क्षेत्र में यथार्थवाद भौतिकवादी दर्शन से संपृक्त एक प्रणाली है जिसके अनुसार 'बाह्यजगत और बाह्य पदार्थों का अस्तित्व मन से स्वतंत्र और अपनी वस्तुगत सत्ता में यथार्थ है' (यथार्थवाद, पृ.1)। कला और साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद संबंधी धारणा दो अर्थों में प्रयुक्त होती है, दृष्टिकोण के रूप में और शैली या पद्धति के रूप में (वही, पृ. 2)। यथार्थवाद का संबंध उन्नीसवीं सदी के वैज्ञानिक आविष्कारों और विकासवाद जैसे सिद्धांतों से खास तौर पर है। डार्विन का यह विचार कि मनुष्य और पशु में मूलतः कोई अंतर नहीं है और मनुष्य पशुओं से ही विकसित होता हुआ विकास की इस अवस्था तक पहुँचा है, इसने उन भाववादी-आदर्शवादी दार्शनिक मंतव्यों के आगे प्रश्नचिह्न लगा दिया जो मनुष्य को ईश्वरीय वरदान या पापों का फल मानते थे। यथार्थवाद को विज्ञान के क्षेत्र में कुछ अन्य आविष्कारों ने भी प्रभावित किया। उन्नीसवीं सदी में फोटोग्राफी की कला का विकास इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। फोटोग्राफी में एक खास दृश्य को यथावत पुनर्प्रस्तुत किया जा सकता है। बाद में सिनेमा की कला ने यथार्थ की अभिव्यक्ति और अधिक ऊँचाइयाँ प्रदान की।

यथार्थवाद के विकास में दार्शनिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों के साथ उन आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक चिंतनों ने भी प्रभावित किया जिनमें आम आदमी के राजनीतिक- आर्थिक और सामाजिक हितों को सर्वोपरि स्थान देने पर बल दिया जाने लगा था। यूरोपियाई समाजवाद से लेकर मार्क्सवाद तक का विकास यथार्थवाद को एक समग्र कला-चिंतन के रूप में विकसित करने में सहायक बना। यथार्थवाद को प्रभावित करने में

फ्रायड, एडलर, युग जैसे मनोविश्लेषणवादियों का भी बड़ा योगदान है जिन्होंने मनुष्य के अंतर्जगत और मन के विभिन्न स्तरों की व्याख्या की और बताया कि मनुष्य के व्यवहार और कर्म को नियंत्रित और प्रेरित करने में मनुष्य की अंतश्चेतना की बड़ी भूमिका होती है।

यथार्थवाद को परिभाषित करना आसान नहीं है। फ्रेडरिक एंगेल्स ने यथार्थवाद को परिभाषित करते हुए लिखा था है : "मेरे विचार से 'यथार्थवाद' का आशय यह है कि लेखक विवरणों और ब्यौरों के सत्य प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करे।" यथार्थवादी लेखक को वस्तुस्थिति के एक-एक रग-रेशे को अपनी कृति में चित्रित करना चाहिए, वहीं, दूसरी ओर अधिक महत्वपूर्ण बात उन्हें सच्चाई के साथ चित्रित करने की है। ...तीसरी बात जिसकी ओर एंगेल्स ने बल देकर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है, 'प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि पात्रों के चित्रण से संबंध रखती है। कौन-सी परिस्थितियाँ 'प्रतिनिधि' (टिपिकल) हैं और कौन-से पात्र 'प्रतिनिधि' हैं, इसका निर्णय लेखक की सत्यान्वेषी वस्तुमुखी दृष्टि को करना है। 'प्रतिनिधि' रूप पर जोर इसलिए है ताकि वस्तुगत यथार्थ और उसके अंतर्गत सक्रिय मनुष्य के माध्यम से वास्तविकता को उसकी समग्रता में अंकित किया जा सके (यथार्थवाद, पृ. 10)। यथार्थवाद का संबंध प्रातिनिधिकता से होने का तात्पर्य यह नहीं है कि प्रकृतिवादियों की तरह औसत आदमी के जीवन की कुत्सा और क्षुद्रता को ही उपन्यास का आधार बनाया जाए और न ही इसका मतलब यह है कि व्यक्ति मन की ग्रंथियों को ही चित्रित किया जाए जैसा कि मनोविश्लेषणवादी करते हैं बल्कि जैसा कि लुकाच के हवाले से शिवकुमार मिश्र का कहना है, "सच्चे तथा महान् यथार्थवाद का लक्ष्य समाज, जीवन तथा मनुष्य के जीवन के यत्र-तत्र बिखरे स्फुट अंशों को ही परखने और मूर्त करने का नहीं होता, वरन् उनकी दृष्टि इनके संपूर्ण रूप को उभारने की ओर रहती है। वह उन्हें इनकी 'संपूर्णता' में ही देखने पर बल देता है।" (यथार्थवाद, पृ. 12)।

यथार्थवाद में महत्वपूर्ण जीवन प्रसंग नहीं होते बल्कि लेखकीय दृष्टि और लेखकीय अभिव्यक्ति के पाठकों पर पड़ने वाले प्रभाव का महत्व होता है। यथार्थवादी लेखक किसी भी तरह की सच्चाई पर पर्दा नहीं डालता बल्कि वह उन्हें इस ढंग से उजागर करता है ताकि जीवन का यथार्थ पाठकों को सामूहिक रूप से संघर्ष करने और कुत्सित और विरूप को नष्ट कर एक सुंदर, सुखकर और स्वस्थ दुनिया का निर्माण किया जा सके। उन्नीसवीं सदी में 'यथार्थवाद' का उदय हुआ, लेकिन यथार्थवाद के कई रूपों को लेकर विद्वानों में जबर्दस्त बहस चली जिसने आलोचनात्मक यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद, जादुई यथार्थवाद आदि धारणाओं को प्रस्तुत किया। आगे के पृष्ठों पर हम इन पर विचार करेंगे।

4.4.1 आलोचनात्मक यथार्थवाद

1917 में हुई बोल्शेविक क्रांति के बाद सोवियत संघ में समाजवाद की स्थापना के लिए जो सामूहिक प्रयत्न हुए उसे अभिव्यक्त करने के लिए मक्सिम गोर्की ने 'समाजवादी यथार्थवाद' पद का प्रयोग किया था। यथार्थवाद के इस नए रूप से परंपरागत यथार्थवाद को अलगाने के लिए मार्क्सवादी साहित्य चिंतकों ने एक नए पद का प्रयोग किया और इस यथार्थवाद को 'ओलाचनात्मक यथार्थवाद' कहा। आलोचनात्मक यथार्थवाद में यथार्थवाद की सभी विशेषताओं का समावेश होता है। मुख्य अंतर इस वास्तविकता में होता है कि यहाँ लेखक का अग्रह समाजवादी दृष्टि के प्रति नहीं होता वरन् यथार्थ को वस्तुनिष्ठ और समग्रता से प्रस्तुत करते हुए भी उसके प्रति आलोचनात्मक रवैये में होता है। इस तरह कह सकते हैं कि आलोचनात्मक यथार्थवाद का संबंध बुर्जुआ समाज से है जहाँ लेखक पूंजीवादी समाज के प्रति अपने असंतोष और अस्वीकार को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है। ऐसे लेखक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह समाजवादी नज़रिए को अपनाए या इसी नज़रिए से यथार्थ का विवेचन-मूल्यांकन करे।

आलोचनात्मक यथार्थवाद को इस दृष्टि से स्वीकार करने पर इसकी परिधि में वे सभी लेखक आ जाते हैं जिन्होंने बुर्जुआ समाज की वास्तविकता को गहरी तल्खी के साथ उजागर किया था। बाल्ज़ाक, फ्लाबेयर, तॉल्सतॉय, मोपांसा, टॉमस मान, दोस्तोव्स्की और भारत में प्रेमचंद, शरतचंद्र आदि का नाम लिया जा सकता है। इन लेखकों के साहित्य में भले ही वैचारिक सुसंगति नज़र न आती हो, और भले ही इनमें से बहुत से लेखक समाजवादी विचारधारा को संदेह की दृष्टि से देखते हों, लेकिन पूंजीवादी समाज के यथार्थ को, उसके कुत्सित और अमानवीय रूप को, उसकी असंगतियों और अंतर्विरोधों को, जिस सूक्ष्म अंतःदृष्टि, मार्मिक विश्लेषण, मानवीयनिष्ठा और लेखकीय ईमानदारी के साथ इन महान् रचनाकारों ने अपने उपन्यासो के माध्यम से प्रस्तुत किया है, उसी का नतीजा है कि इन्होंने ऐसे कालजयी उपन्यास दिए हैं जो संपूर्ण मानवजाति की अमूल्य धरोहर कहे जा सकते हैं।

4.4.2 समाजवादी यथार्थवाद

समाजवादी यथार्थवाद की विवेचना करते हुए डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते हैं, "'समाजवादी यथार्थवाद' यथार्थवादी कला आंदोलन के विकास की नव्यतम मंजिल है।

पूंजीवादी समाजव्यवस्था की विरूपता से आक्रांत, उसका निर्मम उद्घाटन करने तथा उसे अंतर्मन से धिक्कारने के बावजूद भविष्य की उन रचनात्मक शक्तियों को देख पाने की आलोचनात्मक यथार्थवादियों की दृष्टि असमर्थता के कारण ही, जो पूंजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त करते हुए एक नए और मंगल भविष्य को उजागर कर सकें समाजवादी समाज की स्थापना के साथ ही, एक नए प्रकार की यथार्थ दृष्टि के उपस्थापन की आवश्यकता महसूस की गई। इस नई यथार्थ दृष्टि को प्रस्तुत करते हुए उसके पुरस्कर्ताओं ने दावा किया कि वह न केवल आलोचनात्मक यथार्थवादियों के एकांगी तथा अपूर्ण यथार्थ दृष्टि की तुलना में मनुष्य, समाज, जीवन तथा उसके यथार्थ को उनकी संपूर्णता में देखने और प्रस्तुत करने वाली है, वरन् वह एक रचनात्मक दृष्टि भी है जिसमें भविष्य के नए और यथार्थवादी कला सृजन की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ भी संलग्न हैं।" (यथार्थवाद, पृ. 52)

समाजवादी यथार्थवाद की मुख्य विशेषता उसके नज़रिए में निहित है। वह मार्क्सवाद को अपने विचारधारात्मक आधार के रूप में स्वीकार करता है और यथार्थ का विश्लेषण इसी नज़रिए से करता है। कई बार समाजवादी यथार्थवाद को समाजवादी समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाली साहित्यिक और कला दृष्टि के रूप में ग्रहण किया जाता है। ज़ाहिर है कि अब जबकि समाजवादी समाज अधिकांश देशों में विघटित हो चुके हैं, इसके बावजूद समाजवादी यथार्थवाद की प्रासंगिकता और महत्व खत्म नहीं हुआ है।

समाजवादी यथार्थवादी लेखक समाज के क्रांतिकारी रूपांतरण में यकीन रखता है। वह यथार्थ को ऐतिहासिक और द्वंद्वात्मक रूप में चित्रित करता है। यथार्थ चाहे जैसा भी है, उसका जीवन के प्रति आशावादी नज़रिया होता है। वह नियतिवाद और नैराश्य को अस्वीकार करता है। वह यथार्थ को समग्रता में व्यक्त करता है और समाज में चल रहे वर्ग-संघर्ष की उपेक्षा नहीं करता। उसकी वैचारिक और भावात्मक सहानुभूति सर्वहारा वर्ग के साथ होती है। समाजवादी यथार्थवाद से अनुप्रेरित उपन्यासों के नायक 'सक्रिय नायक' होते हैं। वे आदर्शों के 'निष्प्राण पुतले' नहीं होते वरन जीवन संग्राम के सिपाही होते हैं। एक नया समाज बनाने की अंतः प्रेरणा से संचालित वे उत्साह और उमंग से भरे होते हैं यद्यपि उनके जीवन में भी ऐसे क्षण आते हैं जब निराशा उन्हें घेर लेती है, दुख और दैन्य उनको पराजित करते हुए नज़र आते हैं, लेकिन वे हार नहीं मानते और इन कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। ज़ाहिर है कि समाजवादी यथार्थवाद की सरलीकृत व्याख्या और मार्क्सवाद का आरोपण समाजवादी यथार्थवाद नहीं है। ऐसी रचनाएँ दावा चाहे जो भी करे, साहित्य नहीं बन पाती, समाजवादी यथार्थवाद से प्रेरित रचना बनना तो बाद की बात है। यह दावा करना तो बहुत कठिन है कि ऐसे उपन्यासकार और ऐसी रचनाएँ कौन-सी हैं, जिन्हें समाजवादी यथार्थवाद

के अंतर्गत शामिल किया जा सकता है। फिर भी, गोर्की आस्त्रोव्स्की, शोलोखोव आदि का नाम इनके पुरस्कर्ता के रूप में लिया जाता है।

4.4.3 जादुई यथार्थवाद

सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों के विघटन ने समाजवाद के प्रति मध्यवर्ग में मोहभंग पैदा किया। दरअसल यह समाजवाद की पराजय नहीं थी बल्कि समाजवादी देशों की राज्य व्यवस्थाओं की पराजय थी। इस विघटन से काफी पहले यह प्रक्रिया आरंभ हो गई थी। इसलिए साहित्य के क्षेत्र में समाजवादी यथार्थवाद की बजाए यथार्थवाद के नए रूप की आवश्यकता महसूस की जाने लगी थी। दूसरी ओर, पूंजीवाद भी एक नए दौर में प्रवेश कर रहा था। बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से पूंजी का वर्चस्व पहली बार दुनिंया के हर कोने पर स्थापित हो गया था। तीसरी दुनिया के विकासशील देश अमरीकी साम्राज्यवाद के हाथ के खिलौने बन गए थे जहाँ करोड़ों लोगों की ज़िंदगी पूंजीवाद की नकली चमक-दमक और समृद्धि के विराट कुचक्र में ऐसी उलझती जा रही थी, जिससे बाहर निकलने का रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। जादुई यथार्थवाद इसी दौर का यथार्थवाद है जो तीसरी दुनिया के यथार्थ से उत्पन्न हुआ है। जादुई यथार्थवाद में यथार्थवाद का निषेध नहीं है न ही यथार्थ को वस्तुगत रूप में प्रस्तुत करने या समग्रता से प्रस्तुत करने का भी निषेध नहीं है। दरअसल, यथार्थ का जो जटिल रूप आज दिखाई दे रहा है, उसे व्यक्त करने के लिए उपन्यास लेखन की वर्तमान पद्धतियाँ अपर्याप्त महसूस हो रही थी। इसी अपर्याप्तता ने उपन्यासकारों को लेखन की एक नई पद्धति खोजने के लिए प्रेरित किया और यही नई पद्धति या शैली जादुई यथार्थवाद के नाम से जानी जाती है। लेखक ऐसी रचनाओं में यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रायः ऐसी अयथार्थवादी पद्धतियों का इस्तेमाल करता है जो अलौकिक और अमानवीय भी प्रतीत हो सकती है जहाँ घटनाओं, स्थितियों और भावनाओं के बीच सतही तौर पर कोई तर्कसंगति और समंजस्य नज़र नहीं आता। इसके बावजूद रचना की आंतरिक अर्थवत्ता न केवल यथार्थवाद से अनुप्रेरित होती है बल्कि उसकी आंतरिक शक्ति यथार्थवाद ही होती है। लैटिन अमरीकी कथाकार मारखेज के विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'दि हंड्रेड इयर्स ऑफ सॉलिट्युड' इस जादुई यथार्थवाद की सर्वोत्तम रचना है। इस उपन्यास के महत्व को जादुई यथार्थवाद के द्वारा ही समझा जा सकता है।

4.5 उपन्यास और प्रकृतवाद

कई बार यथार्थवाद और प्रकृतवाद (नेचुरलिज्म) को एक समझ लिया जाता है जबकि प्रकृतवाद यथार्थवाद से बिल्कुल भिन्न साहित्य दृष्टि है। कई बार प्रकृतवाद को प्रकृतिवाद के अर्थ में भी ग्रहण किया जाता है जिसके अनुसार ऐसी साहित्यिक रचनाएँ जिनमें "प्रकृति अथवा प्रकृति सौंदर्य के प्रति एक विशिष्ट और स्पष्ट लगाव, आत्मीयता या अनुरक्ति देख पड़ती है।" (यथार्थवाद, पृ. 72) लेकिन यहाँ प्रकृतवाद "एमिल जोला, जार्ज मूर, थियोडोर ड्रीजर जैसे लेखकों की ऐसी रचनाओं से संबंध रखता है, जिनमें मनुष्य के संबंध में मानवीय (मानवतावादी) या धार्मिक धारणा के विपरीत प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृतिवादी धारणा की अभिव्यक्ति की गई है अर्थात् जिनमें मनुष्य के दैहिक (शरीर विज्ञान संबंधी), पक्ष पर बल दिया गया है, पशुओं के साथ उसकी सगोत्रता या निकटता स्थापित की गई है,उसकी अहंप्रेरित तथा विवेकशून्य चिंताधारा की आधार पीठिका स्पष्ट करते हुए उसके आदर्शों तथा विचारों की क्षणजीविता तथा निरर्थकता का प्रतिपादन किया गया है और जिनमें इन लेखकों ने अपनी इस प्रकार की विषयवस्तु का निर्वाह भी बड़े ही भद्दे, विरूप, विडंबनापूर्ण, अवसादमय तथा जुगुप्स तरीके से किया है।" (यथार्थवाद, पृ. 72)

डॉ. शिवकुमार मिश्र प्रकृतवाद की विशेषताएँ बताते हुए लिखते हैं, "प्रकृतिवादी (यहाँ प्रकृतवादी कहना ज्यादा समीचीन है) लेखक का जीवन के प्रति दृष्टिकोण मूलतः भौतिकवादी होने के साथ-साथ निराशाजनक और नियतिवादी भी होता है। जिंदगी उसके लिए एक हारी

हुई लड़ाई के समान है। उसके अनुसार प्रकृति तथा समाज की बाहरी शक्तियाँ न केवल मनुष्य के स्वातंत्र्य के समक्ष अवरोध बनकर प्रस्तुत होती हैं, वे उसकी संकल्प शक्ति को भी सीमित करती हैं। मनुष्य में इन शक्तियों का अतिक्रमण करके अपना रास्ता बनाने की सामर्थ्य नहीं है। इन बाहरी शक्तियों के समक्ष तो वह पराजित और समर्पित है ही, स्वतः अपने भीतर निहित ऐसी तमाम अचेतन शक्तियों तथा आनुवंशिक तत्वों के समक्ष भी वह नत है जो एक स्तर पर उसके मानवीय विवेक को सीमित करते हुए, समाज के प्रति एक जीवशास्त्रीय (बाइलाजिकल) दृष्टिकोण अपनाने के कारण ही प्रकृतिवादी लेखक के लिए मनुष्य को स्वतंत्र इच्छा-जैसी किसी बात का कोई महत्व नहीं रह जाता' (यथार्थवाद, पृ. 72)। स्पष्ट ही ऐसे दृष्टिकोण के साथ लिखी गई रचनाएँ कितनी ही यथार्थ क्यों न प्रतीत होती हों और उनमें क्षणिक आकर्षण भी मौजूद हो सकता है, लेकिन ऐसी रचनाएँ उच्चकोटि की साहित्यिक मूल्यवत्ता से वंचित रह जाती हैं।

4.6 उपन्यास की समाजशास्त्रीय आलोचना

उपन्यास में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति अधिक व्यापक रूप में होती है इसलिए उपन्यास में व्यक्त जीवन की समाजशास्त्रीय आलोचना अध्ययन का विषय बनना स्वाभाविक है। उपन्यास के समाजशास्त्र पर विचार करते हुए एलेन स्विंगवुड ने कहा है, 'जो पहली समस्या सामने आनी चाहिए वह यह है कि स्वयं उपन्यास विधा और जिस सामाजिक वातावरण में वह विकसित होती है उसकी संरचना के बीच क्या संबंध है? दूसरे शब्दों में इसे हम एक साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास तथा व्यक्तिवादी आधुनिक समाज के बीच संबंध की समस्या कह सकते हैं।' उपन्यास को परिभाषित करते हुए उनका मानना है कि 'उपन्यास विधा बाजार उत्पादन से निर्मित व्यक्तिवादी समाज में दैनिक जीवन का साहित्यिक धरातल पर रूपांतरण है।' इस दृष्टि से विचार करने पर उपन्यास पूंजीवादी समाज के आंतरिक नियमों से संचालित होने वाली साहित्यिक विधा है। उपन्यास में जो कुछ घटित होता हुआ प्रतीत होता है, उसमें न तो असाधारणता होती है और न ही अयथार्थता। दूसरे शब्दों में उपन्यास में व्यक्त जीवन रोज़मर्रा के अनुभवों का ही हिस्सा होता है। इसके बावजूद दोनों में एक अंतर्विरोध भी पाया जाता है। उसी अनुभव को व्यक्त करते हुए भी उपन्यास की संरचना सामाजिक संरचना के प्रतिपक्ष में खड़ी होती है। वह उन जीवन मूल्यों के लिए चुनौती बनती है जो जीवन मूल्य संपूर्ण समाज को संचालित करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि उपन्यास को सामाजिक संरचना के बरक्स रखकर नहीं समझा जा सकता बल्कि सामाजिक संरचना ही वह आधार है जिसके संदर्भ में उपन्यास की व्याख्या की जा सकती है। समाजशास्त्रीयता की सीमा यह होती है कि वह न सिर्फ उपन्यास को एक कलाकृति के रूप में देखने से रोकती है बल्कि वह उसे 'समग्रता' के परिप्रेक्ष्य में देखने से भी रोकती है, समाजशास्त्रीयता उसका एक अंग भर है।

उपन्यास की आलोचना के क्षेत्र में अन्य कई दृष्टियों को जानना भी ज़रूरी है। इनमें आधुनिकतावादी आलोचना दृष्टि मनोविश्लेषणवादी आलोचना दृष्टि, उत्तर आधुनिकतावादी आलोचना दृष्टि, संरचनावादी आलोचना दृष्टि आदि खासतौर पर उल्लेखनीय है। आधुनिकतावाद का उल्लेख पहले किया जा चुका है जिसमें आधुनिक पूंजीवादी समाज दृष्टि को केंद्रीय महत्व प्राप्त होता है। जिसमें व्यक्ति स्वातंत्र्य समाज के बरक्स व्यक्ति और उद्योगीकरण, मशीनीकरण से उत्पन्न एकाकीपन, अविच्छिन्नता के चित्रण पर बल दिया जाता है। मनोविश्लेषणवादी आलोचना में उपन्यास को व्यक्ति के अंतर्जगत के विभिन्न स्तरों के विश्लेषण-विवेचन पर बल दिया जाता है। जबकि उत्तर आधुनिकतावादी आलोचना में यदि एक ओर यथार्थवाद का निषेध होता है तो दूसरी ओर आधुनिकता का भी अस्वीकार होता है। उत्तर आधुनिकता महावृतांतों, महापरिवर्तनों, सार्वभौमिक सत्यों और लक्ष्यों के नकार पर बल देते हुए स्थानीय, क्षणिक और उपेक्षित समुदायों और लोगों पर अपने को केंद्रित करती है।

उत्तर आधुनिकता उपन्यास की अंतर्वस्तु को नहीं बल्कि उसके 'पाठ' को और उसकी संरचना को, उसके विखंडन को अपनी आलोचना का आधार बनाती है।

उपन्यास की आलोचना
दृष्टियाँ

4.7 सारांश

एम एच डी-13 के खंड दो की चौथी इकाई का अध्ययन आपने कर लिया है। इस इकाई में आपने उपन्यास की विभिन्न आलोचना दृष्टियों के बारे में जानकारी प्राप्त की है। उपन्यास विधा का उदय सामंतवादी समाज के ह्रास और पूंजीवादी समाज के उदय के साथ हुआ था। पूंजीवादी समाज व्यवस्था को वैचारिक शक्ति ज्ञानोदय से प्राप्त हुई जिसके स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व आधारित मूल्यों ने एक नए युग का सूत्रपात किया। साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में यथार्थवाद का विकास इस नए युग का परिणाम था जिसने साहित्य ही नहीं कलाओं को देखने-परखने की एक नई दृष्टि दी। ज्ञानोदय और पूंजीवाद के संयोग से जिस नए युग का आग़ाज हुआ उसे आधुनिकता के नाम से भी जाना गया। आधुनिक युग में कई नई विचारधाराओं का उदय हुआ। यदि इसने मार्क्सवाद जैसे लोकोन्मुखी जीवन दर्शन को प्रस्तुत किया तो डार्विन का विकासवाद और फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद ने भी उपन्यास की आलोचना दृष्टियों को निर्मित करने में अहम भूमिका निभाई।

उपन्यास एक यथार्थवादी साहित्यिक विधा है। यथार्थवाद यथार्थ की यथावत अभिव्यक्ति का नाम नहीं है। यथार्थ की वस्तुपरक दृष्टि से देखने और समग्रता से प्रस्तुत करने का नाम यथार्थवाद है। यथार्थवाद को आलोचनात्मक यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद, जादुई यथार्थवाद आदि में वर्गीकृत किया गया है।

उपन्यास की आलोचना सिर्फ यथार्थवाद की दृष्टि से ही नहीं की जाती। प्रकृतवाद, समाजशास्त्रीयता, मनोविश्लेषणवाद, उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टियों का भी उल्लेख आवश्यक है। इस प्रकार आपने इस इकाई के अध्ययन के साथ उपन्यास के सिद्धांत और स्वरूप के महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन पूरा कर लिया है।

अभ्यास

1. उपन्यास की आलोचना का संबंध यथार्थवाद से किस प्रकार का है, स्पष्ट कीजिए।
2. समाजवादी यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।
3. पूंजीवाद के उदय ने उपन्यास की आलोचना को किस प्रकार प्रभावित किया है, व्याख्यायित कीजिए।

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. रैल्फ फॉक्स : उपन्यास और लोकजीवन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि., नई दिल्ली।
2. जार्ज लुकाच : उपन्यास का सिद्धांत, मैकमिलन इंडिया लि., नई दिल्ली।
3. शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद, मैकमिलन इंडिया लि., नई दिल्ली।
4. शिवकुमार मिश्र : मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
5. देवीशंकर अवस्थी (सं.) : साहित्य विधाओं की प्रकृति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. डॉ. हरिमोहन : साहित्यिक विधाएँ : पुनर्विचार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

MAHI-104 (I)

आधुनिक गद्य

I - उपन्यास : स्वरूप और विकास

खंड

3

विश्व साहित्य में उपन्यास

इकाई-1	
विश्व साहित्य में उपन्यास का उदय	**5**
इकाई-2	
उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय उपन्यास-I	**16**
इकाई-3	
उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय उपन्यास-II	**25**
इकाई-4	
बीसवीं सदी के उपन्यास	**35**

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. असगर वजाहत जामिया मिलिया इस्लामिया नई दिल्ली	प्रो. मैनेजर पाण्डेय जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली	**संकाय सदस्य** प्रो. वी.रा. जगन्नाथन (कार्यक्रम संयोजक)
प्रो. गोपाल राय एच-2, यमुना, इग्नो आवासीय परिसर, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	प्रो. ललिताम्बा देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर, मध्य प्रदेश	प्रो. जवरीमल्ल पारख प्रो. रीता रानी पालीवाल डॉ. सत्यकाम डॉ. राकेश वत्स
प्रो. नित्यानंद तिवारी दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली	प्रो. सत्यप्रकाश मिश्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद	डॉ. शत्रुघ्न कुमार डॉ. विमल खांडेकर सुश्री स्मिता चतुर्वेदी
प्रो. निर्मला जैन ए-20/17, कुतुब एन्क्लेव, फ़ेज-1, गुड़गाँव, हरियाणा		

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	**इकाई संख्या**	**संपादक**
डॉ. आनंद प्रकाश दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली	1 से 4	प्रो. जवरीमल्ल पारख **पाठ्यक्रम संयोजक** प्रो. जवरीमल्ल पारख प्रोफेसर, हिंदी संकाय इं.गां.रा.मु.वि.

सामग्री निर्माण सहयोग

मुद्रण	**कैमरा रेड्डी कॉपी निर्माण**	**आवरण सज्जा**
श्री कुलवंत सिंह अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन) मानिवकी विद्यापीठ इं.गां.रा.मु.वि.	श्री नरेश कुमार निजी सहायक मानविकी विद्यापीठ इं.गां.रा.मु.वि.	सुश्री पन्ने कुँवर बच्छावत

फरवरी, 2004 (पुनः मुद्रित)

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2002

ISBN - 81-266- 0625 - 8

सर्वाधिकार सुरक्षित! इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खंड 3 का परिचय

एम एच डी-13 पाठ्यक्रम 'उपन्यास : स्वरूप और विकास' का यह तीसरा खंड है। इस खंड में आप विश्व उपन्यास साहित्य का अध्ययन करेंगे। विश्व उपन्यास साहित्य के बारे में चार इकाइयों में बताना आसान काम नहीं है। उपन्यास उन्नीसवीं और बीसवीं सदी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा है जबकि अठारहवीं सदी में भी यूरोप में उन्लेखनीय उपन्यास लिखे गए थे, जिनके बारे में विचार किए बिना हम उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के उपन्यासों के महत्व को नहीं समझ सकते। उपन्यास के उदय के बारे में विचार करते हुए पहले दो खंडों में यह बताया जा चुका है कि उपन्यास का संबंध पूंजीवादी विकास से बहुत गहरा है। इस तरह देखें तो उपन्यास का संबंध साम्राज्यवाद, औपनिवेशीकरण, समाजवाद के उदय से भी जोड़ा जा सकता है। यदि यूरोप में पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के विस्तार को देखा जा सकता है, तो, रूस, चीन आदि देशों में लिखे गए उपन्यास साहित्य को समझने के लिए वहाँ संपन्न हुई समाजवादी क्रांतियों को भी समझना होगा। यही बात तीसरी दुनिया के संदर्भ में भी सही है जहाँ औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध संघर्ष और कालान्तर में साम्राज्यवादी दबावों के विरुद्ध जन संघर्षों को वहाँ के लेखकों ने उपन्यास का विषय बनाया।

विचारधारात्मक दृष्टि से विश्व उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद के प्रभाव पर भी इस खंड में विचार किया गया है। यथार्थवाद के अलावा प्रकृतवाद, आधुनिकतावाद, अस्तित्ववाद के प्रभाव का भी लेखा-जोखा लिया गया है। उपन्यास के संदर्भ में इन पर खंड दो में प्रकाश डाला जा चुका है।

विश्व उपन्यास साहित्य के बारे में जानने के लिए सिर्फ इन इकाइयों को पढ़ना ही पर्याप्त नहीं है। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के कई महान् उपन्यासों के अनुवाद हिंदी में भी उपलब्ध हैं जिन्हें आपको अवश्य पढ़ना चाहिए। इनके अध्ययन से आपको इकाइयों को समझने में मदद मिलेगी।

इस खंड की इकाइयों में कुछ परिवर्तन किया गया है। हमारा इरादा यह था कि आपको पहली दो इकाइयों में उन्नीसवीं सदी तक के उपन्यासों, तीसरी इकाई में बीसवीं सदी के उपन्यासों और चौथी इकाई में तीसरी दुनिया के उपन्यासों का परिचय दिया जाएगा लेकिन अब पहली तीन इकाइयों तक उन्नीसवीं सदी के उपन्यासों का परिचय समेटा गया है और अंतिम इकाई में बीसवीं सदी के उपन्यासों के साथ-साथ तीसरी दुनिया के उपन्यासों का भी उल्लेख किया गया है। अंतिम इकाई में दिया गया विवरण बहुत कम है। इसलिए यह ज़रूरी है कि आप समकालीन विश्व उपन्यास साहित्य पर उपलब्ध होने वाली सामग्री जहाँ से भी प्राप्त हो, उसे अवश्य पढ़ें।

विश्व उपन्यास साहित्य का यह संक्षिप्त परिचय भी आपको विश्व उपन्यास साहित्य को समझने की पृष्ठभूमि प्रदान करेगा, ऐसी आशा है।

शुभकामनाओं के साथ!

इकाई 1 विश्व साहित्य में उपन्यास का उदय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 विश्व में उपन्यास के उदय की प्रक्रिया
1.3 पूँजी और उपन्यास का अंतःसंबंध
1.4 प्रारंभिक उपन्यास और यात्रा की बहुस्तरीयता
1.5 इंगलैंड का लोकतांत्रिक उभार और उपन्यास
1.6 एक नए ढंग की गद्यकृति : पिलग्रिम्स प्रोग्रेस
1.7 रॉबिन्सन क्रूसो : यात्रा विवरण की औपन्यासिक अर्थवत्ता
1.8 अंग्रेजी उपन्यास और अठारहवीं सदी
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली

1.0 उद्देश्य

आप एम.एच.डी.-13 (उपन्यास : स्वरूप और विकास) का तीसरा खंड पढ़ने जा रहे हैं। इस खंड में आप विश्व उपन्यास साहित्य की जानकारी प्राप्त करेंगे। आप एम.ए. अर्थात् स्नातकोत्तर कक्षा के छात्र हैं इसलिए मैं जानता हूँ कि आपने न केवल उपन्यास पढ़े हैं बल्कि कुछ उपन्यासों का गंभीर अध्ययन भी किया है, उन पर परीक्षा में प्रश्न लिखे हैं। मैं सोच सकता हूँ कि आपको कुछ जानकारी उपन्यास की पृष्ठभूमि की भी है और उन सामान्य तत्वों की भी जिनका उपन्यास से जुड़ाव है। पाठ्यक्रम के इस खंड में मैं आपका विस्तृत परिचय उन कई पक्षों से कराऊँगा जिनको जानकर आप न केवल विभिन्न औपन्यासिक कृतियों को दूर तक समझ सकते हैं, बल्कि उपन्यास के विधागत स्वरूप को भी विश्व सामाजिक विकास के संदर्भ में समझ सकते हैं। इस पूरे खंड का मूल उद्देश्य भी यही है कि मानव इतिहास के संदर्भ में आपको उपन्यास के विकास की जानकारी मिल सके। इस इकाई में आप विश्व में उपन्यास के उदय की प्रक्रिया, पूँजी और उपन्यास का पारस्परिक संबंध तथा यूरोप में लिखे जाने वाले आरंभिक उपन्यासों का अध्ययन करेंगे।

1.1 प्रस्तावना

यह एम एच डी-13 के तीसरे खंड की पहली इकाई है। इस इकाई में आप विश्व साहित्य में उपन्यास के उदय के बारे में जानेंगे। इससे पहले के खंडों में आप उपन्यास नामक विधा के उदय और उसके स्वरूप ग्रहण करने के बारे में विस्तार से पढ़ चुके हैं। उपन्यास ने कैसे स्वरूप ग्रहण किया और उसके विभिन्न तत्वों की क्या विशेषताएँ हैं। इसके बारे में आप जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

इस इकाई में आप उपन्यास के उदय से संबंधित उन कारकों की जानकारी प्राप्त करेंगे जिसने इस विधा को खास स्वरूप और दिशा प्रदान की। उपन्यास के उदय में और एक लोकप्रिय विधा के रूप में उसके स्थापित होने में पूँजीवादी विकास का बहुत बड़ा योगदान है। पूँजी के विस्तार और उसकी बढ़ती ताकत ने उपन्यास के विकास को लगातार प्रभावित किया है। इस मुद्दे पर इकाई में विचार किया गया है।

यदि उपन्यास के उदय का संबंध पूँजीवाद से है तो आरंभिक औपन्यासिक रचनाओं में उन यात्राओं का भी बड़ा योगदान है जो पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में यूरोप के लोगों ने की।

आरंभिक उपन्यासों में ऐसी यात्राओं का रोचक वर्णन है। नए स्थानों की खोज, नए लोगों, उनके रहन-सहन, रीति-रिवाजों से परिचय हासिल करना और इन सब बातों का वर्णन करना। एक रोचक और रचनात्मक काम था। उपन्यास के उदय में इन यात्राओं के योगदान का विवेचन इस इकाई में किया गया है।

इस इकाई में यूरोप में लिखी उन आरंभिक रचनाओं का भी उल्लेख किया गया है जिन्होंने आगे लिखे जाने वाले उपन्यासों की आधार भूमि तैयार की है। इनमें जिन दो उपन्यासों की खासतौर पर चर्चा की गई है, वे हैं जॉन बनयन द्वारा लिखी गई रचना 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' और डेनियल डिफो की रचना 'रॉबिन्सन क्रूसो'। जॉन बनयन की रचना 1678 ई. में प्रकाशित हुई थी जबकि रॉबिन्सन क्रूसो, लगभग 1720 ई. में लिखा गया था। इन दोनों रचनाओं का उपन्यास के उदय में महत्वपूर्ण योगदान है। लेकिन इस इकाई में सत्रहवीं सदी की एक स्त्री रचनाकार एफ्रा बेन का उल्लेख भी पाठ लेखक ने किया है जिन्होंने 'रॉबिन्सन क्रूसो' लिखे जाने से बाईस साल पहले 'ओरुनोको' नामक उपन्यास लिखा था। इस लेखिका की अंग्रेज़ी साहित्य में क्यों उपेक्षा हुई इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

इकाई के अंत में पाठ लेखक ने अठारहवीं सदी के अंग्रेज़ी उपन्यास की चर्चा की है। इनमें हेनरी फील्डिंग और रिचर्डसन के उपन्यासों की चर्चा पर विशेष बल है। इस तरह इस इकाई के अध्ययन से आपको विश्व साहित्य में उपन्यास के उदय की एक झलक मिल सकेगी।

1.2 विश्व में उपन्यास के उदय की प्रक्रिया

मैं अपनी बात इस बिंदु से शुरू करता हूँ कि विश्व साहित्य में उपन्यास सबसे कम उम्र की विधा है। मसलन, साहित्य में कविता इतनी पुरानी विधा है कि यह कोई भी निश्चित तौर पर नहीं बतला सकता कि पहली कविता कब लिखी गई। इस अर्थ में कविता प्राचीनतम विधा है। इस तरह नाटक का इतिहास भी कम-से-कम तीन हजार वर्ष पुराना है जब मनुष्यों ने समूह में बैठकर अभिनेताओं को स्टेज पर किसी घटना का मंचन करते देखा। नाटक का एक उद्देश्य मनोरंजन था ही। कहानी, आख्यायिका, आख्यान, आदि भी बहुत पहले से लिखे जाते रहे हैं, और उनका उपयोग शिक्षा तथा नीति-व्याख्या के लिए होता आया है। आप जानते हैं कि प्रारंभिक कहानी किसी शिक्षा-सूत्र से जुड़ी होती है और पाठक या श्रोता को यह बतलाती है कि जीवन में क्या सही है और क्या गलत, अथवा हमें अपने व्यवहार में किन सामाजिक नियमों का ध्यान रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त वैचारिक लेखन, दार्शनिक विमर्श, खंडन-मंडन और बहस-मुबाहिसों की भी शुरूआत बहुत पहले हो गई थी, यह सब जानते हैं। सामाजिक स्थितियों और व्यवहारगत विकास की दृष्टि से यह आवश्यक था कि सुधी जन और विद्वान लोग एक विषय पर अपना सामाजिक मंतव्य प्रकट करें और जहाँ तक संभव हो मिलकर एक सर्वसामान्य नियम का निरूपण करें। दर्शन के केंद्र में यही चीज़ सक्रिय रहती थी। धर्म, व्यवहार, नीति और सामाजिक विधि-विधान के ग्रंथ भी उतने ही पुराने हैं जितना मनुष्य-समाज। रोचक चीज़ यह भी है कि मनुष्य की ये सब क्रियाएँ साहित्य के अंतर्गत आती थीं।

और उपन्यास? जिस अर्थ में हम उपन्यास को जानते हैं वह मुश्किल से चार-सौ वर्ष पुराना है। यह तथ्य पूरे विश्व के संदर्भ में है। तात्पर्य यह कि दुनिया के किसी भी हिस्से में चार-सौ साल पहले उपन्यास की उपस्थिति नही थी।

दूसरी दिलचस्प चीज़ यह है कि उपन्यास का उदय यूरोप में हुआ, भारत या व्यापक तौर पर एशियाई या किसी अन्य द्वीप में नहीं। और वह भी लगभग सत्रहवीं शताब्दी के अंत में। उससे पहले गद्य रचनाएँ थीं, कहानी अर्थात् घटना-प्रधान विवरण थे, लेकिन उपन्यास नहीं। संभव है कुछ लोग यह न सोचते हों और मेरी प्रस्तुत मान्यता से असहमत हों। यदि ऐसा है तो

इसकी पड़ताल होनी चाहिए। लेकिन साथ ही यदि वास्तव में उपन्यास का उदय यूरोप में हुआ माना जाए तो मेरी राय में यह हमारे देश या फिर एशियाई महाद्वीप की हेठी नहीं है। मानव समाजों में अनेक चीज़ें कहीं विशेष स्थिति या देश-प्रदेश में होती हैं और फिर बाद में उन्हें अन्य समाजों में आवश्यकता के अनुसार अपना लिया जाता है। अंततः किसी भी व्यक्ति या समाज की उपलब्धि विश्व के पूरे मानव समाज की धरोहर होती है। आप जानते होंगे कि अनेकानेक चीज़ों का आविष्कार पूर्वी दुनिया के समाजों में हुआ और फिर उनका विधिवत और उपयोगी विकास पश्चिमी दुनिया के लोगों ने किया। अर्थात् ज्ञान या उत्पादन पद्धति का चरित्र सामाजिक, बल्कि उससे भी आगे मानवीय होता है और उसे स्थानीयता से जोड़ना हमें गलत निष्कर्षों की तरफ ले जा सकता है।

भारत के संदर्भ में हम उपन्यास विधा के सूत्रपात और विकास का तथ्य ही लें। हम देखेंगे कि जिस अर्थ में हम आज उपन्यास को जानते हैं वह भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारतीय भाषाओं के विकास के साथ पैदा हुआ और शीघ्र ही अर्थात् बीसवीं सदी के आते-आते उसने वह रूप अख्तियार किया जिसकी उन्नीसवीं सदी में कल्पना नहीं हो सकती थी। यहाँ भाषा के विकास को अधिक महत्व न दें क्योंकि भाषिक विकास अपने आप में किन्हीं दूसरी घटनाओं पर निर्भर करता है। साहित्यिक विधा सामाजिक प्रक्रिया के बीच घटित होती है और बहुत जटिल क्रिया व्यापार को इंगित करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें पहले से कुछ सोच कर चलने के स्थान पर एक वास्तविक क्रिया व्यापार या घटनाक्रम को स्वीकार करना चाहिए और तब उसके सामाजिक-ऐतिहासिक कारणों में जाना चाहिए। उपन्यास के बारे में बात करते हुए यह सोचना ज़रूरी है।

अब विश्व के उस भूखंड की तरफ लौटें जहाँ उपन्यास विधा का जन्म हुआ। यूरोपीय समाजों में और विशेषकर इंगलैंड में वे कौन से कारण थे जिन्होंने उपन्यास विधा को संभव बनाया? मेरी राय में इसका सबसे बड़ा कारण पूँजी का जमा और विकसित होना था। हिंदी साहित्य का छात्र होने के नाते संभवतः आपका पूँजी के चरित्र से पर्याप्त परिचय नहीं है। यह भी दिलचस्प चीज़ है कि जिस रूप में हम आज पूँजी को समझते हैं वह मानव इतिहास में बहुत पहले विद्यमान नहीं थी। पूँजी के उदय से पूर्व लोग श्रम अवश्य करते थे लेकिन मात्र अपनी खाने-पहनने की ज़रूरतों का उत्पादन करने के लिए। तत्कालीन व्यवस्था या सरकार श्रमिक जनता पर कर लगाती थी लेकिन वह धन भी खाने-पीने और रहने की सुविधाओं के लिए ही इस्तेमाल होता था। कर का एक बड़ा भाग सरकार चलाने और सैन्य कार्यवाही पर खर्च होता था। बस। व्यापार भी तब होता था और उसका विस्तार इतना अधिक था कि आदान-प्रदान की इस क्रिया का तंतुजाल पूरे विश्व भर में देखा जा सकता था। लेकिन यह व्यापार उत्पादित वस्तुओं के वितरण को संबोधित था। पहले उत्पादन, फिर उसका वितरण – व्यापार का अर्थ केवल यह था।

1.3 पूँजी और उपन्यास का अंतःसंबंध

मध्य काल तक के मानव इतिहास की सामाजिक क्रिया के बीच पूँजी कहीं न थी जो अपने ढंग से उत्पादन की योजना बनाए और नए नियमों के अधीन न केवल जीवन को प्रभावित करे, बल्कि नई समाज व्यवस्था का सूत्रपात करे। सत्रहवीं शताब्दी के यूरोप में इस तरह की पूँजी ने अपना रंग दिखलाना आरंभ किया और लोगों ने इसके परिणामस्वरूप देखा कि समाज में नई ताकतें पैदा हो रही हैं। आज इन ताकतों को समझना बहुत सरल है लेकिन सत्रहवीं सदी के यूरोप में इन्हें अनैतिक, लगभग शैतानी शक्ल में देखा गया। कल्पना कीजिए कि एक राजा, उसके सभासद और उच्च सामंती वंशों के सदस्य – उस समय ये सब मिलकर शासक वर्ग कहलाते थे – किसी ऐसे व्यक्ति के मुहताज हो जाएँ जिसका जन्म तो मामूली परिवार में हुआ है लेकिन जिसके पास बहुत धन है। सत्रहवीं सदी में यही होने लगा

था। इस नयी श्रेणी का व्यक्ति राजा को धन तो देता था लेकिन वह अपेक्षा करता था कि राजा उससे पूछ कर, उसकी सहमति से अपनी नीतियाँ तय करे। और इस व्यक्ति की ताकत थी, उसकी पूँजी। पूँजी ऐसा अतिरिक्त धन थी जिसका उत्पादन के नियोजन हेतु और उसकी सहायता से लाभ अर्जित करने के लिए प्रयोग होता था। पूँजी का प्रसार और लाभ की मात्रा में वृद्धि सत्रहवीं सदी के यूरोपीय जीवन के मूल मंत्र बन गए थे।

हमारे संदर्भ में 'जीवन के मूल मंत्र' का विशेष महत्व है। मसलन, कहा जा सकता है कि व्यापार एक चीज़ है और जीवन बिल्कुल दूसरी। इस तरह व्यापार और जीवन को किस भाँति मिलाकर बात की जा सकती है? मेरा मानना है कि व्यापार के नियम केवल बाजार में ही सक्रिय नहीं होते, बल्कि उनका व्यापक प्रतिफलन देखा जा सकता है। ऊपर हमने राजा और व्यापारी के बीच नए संबंधों और समीकरणों की चर्चा की हैं जिसके परिणामस्वरूप राजा को अपनी नीतियों और व्यापारिक आवश्यकताओं के बीच तालमेल बिठाना पड़ा। इसका अर्थ यह हुआ कि नई स्थिति में पूँजी और व्यापार देश की राजनीति मे प्रवेश कर गए। इस राजनीति का स्वरूप बहुत विकट था, चूँकि न राजा और उसकी व्यवस्था के शासकीय हिस्से व्यापारी वर्ग को बहुत प्रोत्साहन देना चाहते थे और न वह बहुत दूर तक व्यापारी वर्ग को, उसके व्यवहार को नियंत्रित या अनुशासित कर सकता था। कारण, कि पूँजी से जुड़े नए वर्ग को निरंतर व्यापक सामान्य समाज का समर्थन मिल रहा था। इसी अनुपात में राजा अपनी प्रजा के भीतर समर्थन खो रहे थे।

प्रजा के समर्थन की बात बहुत महत्वपूर्ण है। यही वह वस्तु है जो हमें तर्क के स्तर पर 'जीवन के मूल मंत्र' से जोड़ती है। व्यापक प्रजा यूं ही किसी एक का समर्थन और दूसरे का विरोध नहीं करती। इसके ठोस सामाजिक कारण होते हैं। वरना कौन नहीं जानता कि प्रजा सामान्य तौर पर राजा को भगवान का रूप समझती है और भगवान की तरह ही उसकी पूजा करती है। इसका यह अर्थ भी है कि समाज के धर्म केंद्र निरंतर राजा के समर्थन में व्यस्त रहते हैं और सामान्य जनता में राजा के हितों की पुष्टि के लिए प्रचार करते हैं। सत्रहवीं सदी के यूरोप की पूँजी ने जरूर ही सामाजिक जीवन को इतना प्रभावित किया होगा कि उस समय राजनीति, दर्शन और धर्म की परिभाषाओं में भी पूर्ण परिवर्तन हो गया होगा। उपन्यास के संदर्भ में पूँजी के इस चरित्र को समझना आवश्यक है।

वस्तुओं के उत्पादन के नए-नए तरीकों का आविष्कार हो रहा था और उनकी मदद से बनी वस्तुओं का व्यापार पहले की अपेक्षा बहुत अधिक होने लगा था। कल्पना कीजिए कि इंगलैंड की वस्तुएँ देश के सीमांत के बाहर न केवल यूरोपीय देशों में जा रही हैं बल्कि उन अन्य स्थानों पर ले जायी जा रही है जहाँ तब तक न कोई गया था और न ही किसी ने उन स्थानों का नाम सुना था। व्यापार की प्रक्रिया उतनी सरल नहीं होती जितनी वह सतह पर नज़र आती है। उसके अंतर्गत कुछ लोग तो शुद्ध रूप से अर्थलाभ के कारण बाहर जाने और घूमने की सोचते हैं और अनेक ऐसे लोग होते हैं जो धनस्वामियों की रुचि को देखकर वैसे ही उत्साहित हो जाते हैं और दुनिया घूमने, अनदेखे स्थानों को देखने की योजना बनाते हैं। इससे प्रभावित होकर अपने देश में रह रहे असंख्य सामान्य लोगों की जिज्ञासा उन जीवन स्थितियों, संस्कृतियों और व्यवहार-पद्धतियों में होने लगती हैं जो बाहर के देशों या समाजों में विद्यमान हैं। मैं यह कल्पना उन कृतियों को दिमाग में रख कर रहा हूँ जो सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दियों में इंगलैंड में, स्पेन में, इटली में, फ्रांस में लिखी गईं और जिन्होंने अपने समाजों में आशातीत जिज्ञासा का संचार किया। बहुत से लोगों ने अपने देश की भाषा को सीखने का कष्ट भी यह जानने के लिए उठाया होगा कि दूसरे देशों के बारे में छपने वाले इन यात्रा-वृत्तांतों जैसे वर्णनों में क्या है।

1.4 प्रारंभिक उपन्यास और यात्रा की बहुस्तरीयता

दूसरे स्थान या देश की यात्रा करना बहुत सुखद प्रसंग होता है। यात्रा के दौरान हर दिन, बल्कि कहें कि हर घंटे में एक कहानी तैयार होती है। कहानी अर्थात् घटना। जो एक समय हुआ उसमें न केवल कई लोग शामिल होते हैं बल्कि उसका एक बना-बनाया ढाँचा होता है। साथ ही उसका एक आरंभ और अंत तो होता ही है, एक सीख, एक उपदेश भी उसमें छुपा होता है। अपने देश में लौटने पर विदेश यात्री की बड़ी धूम रहती है। सभी उससे कुछ जानना-समझना चाहते हैं। बाद में चलकर इस श्रोता-सुलभ उत्सुकता का दबाव भी यात्री पर बढ़ता है, जिसके चलते यात्री अनजाने लोगों के व्यवहार और उनके स्थानों पर टिप्पणी करने लगता है। ऐसी टिप्पणियों को ध्यान से सुना जाए तो पता चलेगा कि वृत्तांत को रोचक बनाने के लिए कल्पना की भी सहायता ली जा रही है।

अब देखिए, यह सब बताने के बावजूद मैंने यह नहीं कहा कि यात्रा वर्णन का माध्यम गद्य होता है। यह बहुत महत्वपूर्ण चीज़ है। गद्य अर्थात् लोगों की सरल-सामान्य भाषा। गद्य के कारण न केवल बात आसानी से समझ में आती है, बल्कि गद्य बहुत शीघ्र आपको अपनी दुनिया, अपने परिवेश के निकट ले आता है। गद्य के कारण आप उन चीज़ों में रस लेने लगते हैं जो दैनिक व्यवहार की हैं, जो गद्य की अनुपस्थिति में महत्वहीन नज़र आतीं। गद्य श्रोताओं और पाठकों में आत्मविश्वास का संचार भी करता है, उन्हें बतलाता है कि वे एक बड़े उपक्रम का, मसलन साहित्य का विषय हैं। गद्य के कारण ही, अधिकांश लोक कथाओं के केंद्र में साधारण मनुष्य हैं, या कम-अज-कम उनकी मामूली चिंताएँ हैं। यानी वहाँ यदि राजा-रानी और राजकुमार-राजकुमारियाँ हैं भी तो भी वे आप और हम लोगों की तरह जिंदगी के दैनंदिन सरोकारों में उलझे हैं। यह बात आपको सदा याद रखनी होगी चूँकि गद्य के बिना उपन्यास की कल्पना नहीं की जा सकती। इस बात के कुछ अपवाद हो सकते हैं।

हम फिर पूँजी के प्रसार और यात्रा वर्णनों की ओर लौटें। हमें यह याद रखना होगा कि जिस रूप में हम पूँजी को जानते हैं, उसका प्रसार यूरोप में सोलहवीं सदी में हुआ। यह वह समय था जब गाँव और कस्बे में उत्पादन में इतनी वृद्धि हुई कि बिल्कुल नए ढंग से वस्तुओं का व्यापार शुरू हुआ, न केवल एक देश के भीतर विभिन्न शहरों और इलाकों के बीच बल्कि विभिन्न देशों के बीच भी। इसी समय एक निश्चित भौगोलिक इकाई के रूप में देश विकसित हुए और सामंतवाद से बाहर, बल्कि उसके विरोध में नयी राजनीतिक व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। यहाँ सामंतवाद को नए राजाओं द्वारा शासित प्रणाली से अलग करके देखना होगा क्योंकि जिस रूप में विशेषकर इंगलैंड के भीतर राजाओं ने सत्ता की बागडोर संभाली वह बहुत दूर तक नयी पूँजी और उसके कर्णधारों की सामाजिक सहभागिता पर टिकी थी। ये राजा अपनी नीतियाँ यह देखकर बनाते थे कि उत्पादकों-व्यापारियों के हित क्या हैं। उधर उत्पादकों-व्यापारियों की बन आई थी। उत्पादन में हुई उन्नति ने उन्हें अत्यधिक विकासशील, उत्साहित और कल्पनाप्रवण बना दिया थ। इसी उत्साह के कारण अनेकानेक सामान्य जन जीवन की कठिनाइयों के बावजूद मन और मस्तिष्क की जिंदगी जीते थे, वे ख्यालों की दुनिया मे खोए रहते थे। ख्यालों की दुनिया में खोए रहने वाले को आजकल नाकारा कहा जाता है। उन दिनों यह व्यवहार का वह पक्ष था जो मनुष्य को अन्वेषक बनाता है। लगता है यूरोपीय समाज का एक पूरा तबका इस व्यवहारगत विशेषता के कारण अत्यधिक कल्पनाशील हो गया था जो एक हद तक धरती की कठोरता को, उससे जुड़े यथार्थ को पहचानता ही न था। सत्रहवीं सदी के शुरू में लिखी गई एक स्पैनिश कृति से मदद लेकर व्यवहार की इस खासियत को हम 'क्विकज़ोटिक' या 'केहोटिक' कह सकते हैं, पूरी तरह रूमानी और काल्पनिक। इस कृति का नाम था डान क्विकज़ोट, और इसका लेखक था सर्वेंटीज़। उपन्यास-जैसी और एक कल्पनाशील व्यक्ति को पात्रता देने वाली इस पुस्तक ने आगे चलकर यूरोप की पूरी उपन्यास-परंपरा को प्रभावित किया – आगे चलकर यानी सौ-

सवा सौ वर्ष बाद। सन 1612 में इसका अंग्रेजी अनुवाद छप गया था और इसी से इसकी लोकप्रियता का अनुमान हो सकता है। लेकिन जैसा मैंने कहा, यह कल्पनाशीलता समाज की उस ठोस प्रवृत्ति की ओर इंगित करती थी जो पूँजी के प्रसार के कारण यूरोपीय देशों में उभरी थी। औपन्यासिक संभावनाओं के लिए इतने फैलाव वाली कृति कई दशकों तक, लगभग सात दशकों तक इंगलैंड जैसे प्रगतिशील देश में भी नहीं देखी गई।

1.5 इंगलैंड का लोकतांत्रिक उभार और उपन्यास

सत्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में उक्त पूँजी के प्रसार के परिणामस्वरूप, उसी से प्रेरणा पाकर इंगलैंड में राजनीतिक क्रांति हुई और उसने पुरानी व्यवस्था को पूरी तरह तहस-नहस करके एक नयी विवेकवान और मनुष्य केंद्रित व्यवस्था की नींव डाली। इस क्रांति को क्रामवैल की क्रांति कहा जाता है। इस क्रांति का संबंध उपन्यास के उदय से बहुत अधिक है, और इसी के संदर्भ में उपन्यास के विकास को सही ढंग से व्याख्यायित किया जा सकता है। यह क्रांति 1642 में शुरू हुई थी और 1648 में इसका सफल समापन हुआ था। हुआ यह था कि इंगलैंड के राजा और व्यापारी वर्ग के बीच धीरे-धीरे इतना मनमुटाव और विरोध बढ़ गया था कि खुली लड़ाई के सिवा काई चारा न बचा था। क्रांति के दौरान पूरा इंगलैंड दो भागों में बँट गया था, एक तरफ राजा चार्ल्स प्रथम और उसकी फौज़ें थीं और दूसरी तरफ आलिवर क्रामवैल की देखरेख में उसकी फौजें और आम जनता थी। चार्ल्स को परंपरागत सोच से प्रभवित जनता का समर्थन मिला था और क्रामवैल को व्यापारी वर्ग और आधुनिक तथा वैज्ञानिक सोच से लैस जनता का। कल्पना कीजिए कि गाँव-गाँव में नए ईसाई धर्म के प्रचारक घूमते थे और सामान्य जन तथा ईश्वर की निकटता का संदेश फैलाते थे। यह आम जनता पूरी तरह अंग्रेजी क्रांति के साथ थी। इंगलैंड का महान् कवि मिल्टन इस क्रांति में पूरी भागीदारी के साथ, लगभग प्रचारक की हैसियत से शामिल था। क्रांति के दौरान नित-नए तर्कशील विचारों का विकास हो रहा था और इन सबसे इंगलैंड की जनता में उत्साह और संघर्षशीलता का संचार हो रहा था। आप प्रेमचंद की रचनाओं में से वह लेख निकाल कर पढ़िए जहाँ उन्होंने क्रामवैल की भूमिका का ऐतिहासिक महत्व हिंदी के पाठक को समझाया है। प्रेमचंद को भी लगा था कि हमारा पाठक आलिवर क्रामवैल की सोच और गतिविधि से बहुत कुछ सीख सकता है। वैसे तो यह क्रांति या सिविल वार छह साल चली लेकिन इसकी प्रक्रिया को हम 1642 से बीस वर्ष और पीछे तथा दस-प्रंद्रह वर्ष आगे ले जा सकते हैं, जिस दौरान विचारों, मूल्यों, तर्कों और दृष्टियों का अनोखा टकराव देखने को मिला। मेरे विचार से अप्रत्यक्ष रूप से यूरोपीय उन्यास की और प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी उपन्यास की आधारशिला यही क्रांति है। कारण यह है कि इस क्रांति का नायक इंगलैंड का सामान्य व्यक्ति था, न कि कोई ऊँचे वंश में पैदा हुआ राजकुमार अथवा सामंत। यही सामान्य व्यक्ति उस समूचे उपन्यास-रूप का भी नायक बना जिसकी हम बात करते हैं और जिसके व्यवहार को लेकर आने वाले कथा लेखन का पूरे विश्व भर में फैलाव भी देखने को मिलता है।

1.6 एक नए ढंग की गद्यकृति : पिलग्रिम्स प्रोग्रेस

इंगलैंड की क्रांति के दौरान पुरी तरह सक्रिय एक लेखक-विचारक-प्रचारक का यहाँ ध्यान हो आता है। इस व्यक्ति का नाम था जॉन बनयन। इस लेखक की गद्य में लिखी पुस्तक 'पिलग्रिम्स प्राग्रेस' को पढ़ने से उपन्यास का-सा आनंद मिलता है, यद्यपि वह शुद्ध साहित्य रचना के उद्देश्य से नहीं लिखी गई थी। 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' में इंगलैंड का ग्रामीण समाज वर्णित है। वहाँ गाँव की पगडंडियाँ हैं, कच्चे घर हैं, मेले हैं, नाचते-गाते लोग हैं और जीवन की बेहद सादगी भी है। दुनियावी आकर्षणों और सादगी के माहौल के बीच घिरा नायक मुक्तिकामी यात्रा के लिए निकला है और बनयन उसका पूरे उत्साह से वर्णन करते हैं। उसकी यात्रा में कई तरह की बाधाएँ आती हैं, कई लोग उसको धोखा देने और बरगलाने

क़ी कोशिश करते हैं। बनयन इन लोगों का भी बहुत सुंदर खाका खींचते हैं। गद्य में खींची गई मानव व्यवहार की इन तस्वीरों से इंगलैंड का पूरा परिवेश एक-साथ जीवित हो उठता है। इस पुस्तक का लेखक बनयन स्वयं एक धार्मिक व्यक्ति था और अपनी समझ से वह गहरे नीतिवादी दर्शन का प्रचार कर रहा था। वह समझा था कि नीतिवादी दर्शन उच्चवर्गीय सामंती सोच और परंपरागत विचार पद्धति को टक्कर दे सकता है। बनयन यह भी जानता था कि समाज की असली शक्ति देश की सामान्य जनता के व्यवहार में निहित है और उसे साथ लेकर ही किसी बड़े परिवर्तन की कल्पना की जा सकती है। इससे भी बड़ी बात यह है कि बनयन ने यह पुस्तक तब यानी 1678 में लिखी जब क्रांति समाप्त ही नहीं हो गई थी बल्कि जब क्रांति के दर्शन पर स्वयं व्यापारियों और नए धन्नासेठों तथा उन्हीं की मदद से नवस्थापित राजा द्वारा प्रहार हो रहा था। इस पुस्तक को लिखते समय पचास बरस की उम्र का बनयन जेल में था। लेकिन एक रोचक और गतिशील पुस्तक लिखकर बनयन अपनी ओर से सामान्य जनता से जुड़े महत्वपूर्ण काम को अंजाम दे रहा था। क्या हम नहीं कह सकते हैं कि इस तरह की पुस्तकों से आगे चल कर उस कथाधारा का निर्माण हुआ जिसे हम उपन्यास कहते हैं?

1.7 रॉबिन्सन क्रूसो : यात्रा विवरण की औपन्यासिक अर्थवत्ता

फिर डेनियल डिफो का उदाहरण लीजिए। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक का नाम है रॉबिन्सन क्रूसो। यह पुस्तक तो उपन्यास ही है, यद्यपि डिफो ने इसे उपन्यास लिखने के उद्देश्य से न लिखा था। डिफो का जन्म 1660 में हुआ था, क्रांति समाप्त होने से बारह साल बाद। डिफो भी एक साधारण परिवार में जन्मा था। मेहनत के बल पर पढ़ने वाले डिफो ने दूकानदारी की, छोटा-मोटा व्यापार किया, परितर्वनकारियों और परंपरावादियों दोनों की नौकरी की, सरकारी जासूस की तरह काम किया और कई अन्य तरह के पापड़ बेले। जीवन में बहुत आगे जाकर 1720 ई. के आसपास जब वह साठ वर्ष का था रॉबिन्सन क्रूसो लिखा। तब तक उसने बहुत अनुभव अर्जित कर लिए थे। इस पुस्तक का पूरा नाम था 'दी लाइफ एंड स्ट्रेंज सरप्राइजिंग एडवेंचर्स ऑफ रॉबिन्सन क्रूसो, ऑफ योर्क, मेरीनर'। नाम पर ध्यान दें तो यह कृति कथा न होकर जीवनी है। जीवनी भी एक अजीबोगरीब व्यक्ति की है जो अनोखे साहसिक अनुभवों से गुजरा है, जो योर्क का निवासी है और नाविक रहा है। उन दिनों देश-विदेश घूमने वाले व्यक्ति के लिए नाविक होना बहुत आवश्यक था। दूसरी चीज़ यह है कि डिफो पुस्तक को वास्तविकता का जामा पहनाना चाहता था ताकि पाठक सोचें कि पुस्तक एक वास्तविक मनुष्य के सच्चे अनुभवों को प्रस्तुत कर रही है। हमारी दृष्टि से महत्वपूर्ण बात यह भी है कि यह वास्तविक व्यक्ति एक सामान्य नाविक था, कोई राजघराने में पला-बढ़ा संभ्रांत पुरुष नहीं। अठारहवीं सदी के अंग्रेजी पाठक में इस पुस्तक के लिए रुचि भी इसी कारण हुई होगी।

रॉबिन्सन क्रूसो में एक ऐसे निर्जन द्वीप का वर्णन है जहाँ क्रूसो नाम का यह नाविक पहुँचता है। धीरे-धीरे क्रूसो को इस स्थान की जानकारी होती है। वहाँ वह बसने की भी योजना बनाता है। नए स्थान में बसने की प्रक्रिया उसके लिए बहुत चुनौतीपूर्ण और उत्साहकारी बन जाती है। कुछ समय बाद उसकी मुलाकात एक अन्य व्यक्ति से होती है। पुस्तक में क्रूसो और इस दूसरे व्यक्ति के पारस्परिक संबंध का विस्तार से वर्णन है। एक व्यक्ति का प्रेरणा-बिंदु नयी नयी चीज़ों को जानना और उन्हें अपनी व्यापक जानकारी का हिस्सा बनाना है जबकि दूसरे व्यक्ति का एकमात्र मकसद अपने स्वामी और निर्देशक की योजना में हाथ बँटाना है। लेकिन कृति का मूल उद्देश्य यह दिखलाना है कि दुनिया बहुत बड़ी और रहस्यपूर्ण है और उसके प्रत्येक भाग का भूगोल और जीवन अलग है। आज हम जो भी सोचें, लेकिन सत्रहवी-अठारहवीं सदी में इस तरह की साहसिक यात्राओं के विवरण बहुत प्रेरणादायी रहे होंगे। इन विवरणों ने यह भी दर्शाया होगा कि मनुष्य अपनी सामान्यता में रहकर भी बहुत कूछ कर सकता है और उसके लिए अपने सीमित समाज की व्यवस्था पहले की भाँति प्रबल और भयकारी नहीं है। क्रूसो ने अपने प्रारंभिक पाठकों को अपने इस गुण से ही आकर्षित

किया होगा। साथ ही यह भी सही है कि 'क्रूसो' का रूप अब तक की कृतियों से गुणात्मक अर्थ में अलग था। वह न तो किसी सीमित दरबारी पाठक वर्ग की उत्सुकता का विषय थी और न ही स्थापित और परंपरागत अभिनय-केंद्र में रुचि रखने वाले लोगों को अपनी ओर खींच सकती थी। इसके विपरीत वह देश के किसी हिस्से में पढ़ी या सुनी जा सकती थी।

देखने की चीज़ यह भी है कि इस कृति में क्रूसो और उसके साथी की नज़र में परिवेश को लेकर मूलभूत अंतर है। मसलन, क्रूसो यह जानता है कि वह साहसी और निर्भीक है तथा अनजान जगह पर भ्रमण के लिए निकला है। इस रचना में निहित अर्थ का दूसरा स्तर यह है कि मुक्त भ्रमण क्रूसो नामक किसी एक व्यक्ति का न होकर एक पूरे वर्ग का बन जाता है जिसे व्यापक दुनिया की जानकारी चाहिए और साथ ही जो प्रसार में रुचि रखता है। उस समय यह विचार नया था। स्थायित्व, परंपरा और सीमित अनुभव के युग में जोखिम को प्रेरणा-बिंदु बनाना ऐसे समाज में ही संभव था जिसे अपने लिए नयी आर्थिक और राजनीतिक आधारभूमि तैयार करनी थी। एक तरह से यह पूँजी की दृष्टि थी जो शीघ्र ही अपने सीमित समाज की अपेक्षाओं से मुक्त होकर अनंत विस्तार के लिए प्रवृत्त होती है। तभी उपन्यास के आधुनिक विद्वानों ने 'क्रूसो' की दृष्टि पर बहुत गहराई से विचार करते हुए कहा है कि वह बीज रूप में एक विकासशील और खोजी बूर्ज्वा व्यक्ति की दृष्टि है। जो भी हो, यह निश्चित है कि 'क्रूसो' तक आते-आते पश्चिमी समाजों में उपन्यास लेखन की पहचान बनने लगती है। इस साहित्य रूप की आगामी समय में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही। उन्नीसवीं सदी तक आते-आते उपन्यास ने साहित्य की अन्य सभी विधाओं को उनके प्रभावपूर्ण स्थान से हटाकर अपनी महत्ता स्थापित की। लेकिन इससे पूर्व हम अठारहवीं सदी के इंगलैंड में दिखने वाले औपन्यासिक उभार को देखें।

अंग्रेजी साहित्य से एक उदाहरण और लें। यह एक अनजाने या कहें कि अल्पज्ञात तथ्य का उदाहरण है। डेनियल डिफो से भी बहुत पहले एक गुमनाम स्थान और परिवार की स्त्री ने गद्य में ही आरंभिक किस्म की कथा रचनाएँ लिखीं। इस स्त्री का नाम था एफ्रा बेन। अचंभे की बात यह है कि एफ्रा बेन को अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के कथा अध्ययनों में और साहित्यिक बहसों में उल्लेख नहीं मिला, जबकि अपने समय में वह साहित्यिक गतिविधि, मसलन नाटक में बहुचर्चित और लगभग शीर्ष पर थी। बेन का 'ओरूनोको' शीर्षक उपन्यास 1688 ई. में छपा, 'रॉबिन्सन क्रूसो' से बाइस वर्ष पूर्व और यह अपनी यथार्थपरकता के लिए ध्यान में रखने योग्य है। इसमें भी एक दूर देश की पृष्ठभूमि है और विषय की दृष्टि से यह अपने समय से बहुत आगे का उपन्यास है। इसका नायक एक काले रंग का स्थानीय दास है जो गोरे रंग के भूस्वामियों के विरुद्ध विद्रोह करता है। शायद इस कारण साहित्य के अंग्रेजी विद्वानों ने बेन पर बात करना जरूरी न समझा हो। यह भी संभव है कि उन्होंने बेन की दो अन्य अयोग्यताओं को दिमाग में रखकर, मसलन वह सामान्य परिवार से थी और स्त्री थी, उसकी उपेक्षा की हो। बेन नाम की इस स्त्री ने एक सामंत के प्रेम संबंधों को लेकर भी उपन्यास लिखा जिसका शीर्षक था 'लव लैटर्स बिटवीन ए नोबलमैन एंड हिज़ सिस्टर'। ऐसी दबंग और बेबाक महिला के लेखन से अंग्रेजी समाज को जो परेशानी होती उसी के कारण आज भी उसे अभिजन संदर्भ से बाहर रखा जाता है। हमारी दृष्टि से बेन का नाम इसलिए महत्वपूर्ण है कि वहाँ हमें फिर से इंगलैंड से बाहर की दुनिया नज़र आती है और साथ ही यह कि वहाँ विषय सामान्य लोगों की जिंदगी का है या फिर एक सामान्य व्यक्ति की तरफ से अपने समाज पर आलोचनात्मक टिप्पणी मिलती है। ये दोनों ही चीज़ें उपन्यास विधा का प्राण है।

मैं जान-बूझ कर प्रारंभिक उपन्यास के उदाहरण अंग्रेजी साहित्य से ले रहा हूँ। फ्रेंच, इतालवी और स्पानी साहित्यों का मेरा ज्ञान अत्यंत सीमित है। फिर भी मैं कहने की स्थिति में हूँ कि संभवत इंगलैंड में हुई आलिवर की क्रांति के कारण गद्य के माध्यम से सामान्य जीवन पर लिखने की प्रेरण लेखकों को अंग्रेजी में अधिक मिली। दूसरी ओर जहाँ फ्रांस में अठारहवीं

सदी तक विधा की दृष्टि से अविकसित उपन्यास ही देखने को मिलता है, वहाँ अंग्रेजी में उपन्यास का असाधारण विकास दिखलाई पड़ता है। शीघ्र ही अंग्रेजी उपन्यास अपनी सूचनात्मकता और वर्णनधर्मिता से आगे जाकर विश्लेषण और तीखी टिप्पणी देने लगता है और कुछ कृतियों को सामने रखें तो पाठक को पात्रों की मानसिकता में भी प्रवेश कराने लगता है। उधर फ्रांस में जहाँ अठारहवीं सदी की गद्य रचना में मुख्य रूप से रूमानी किस्से-कहानियों का दौर चल रहा था, वहाँ भी समाज पर तीखी व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ आने लगती हैं। वाल्तेयर का 'कांदीद' शीर्षक उपन्यास इस तरह के नए लेखन का उदाहरण है। और जिस तरह दूसरे देश को आश्चर्य और जिज्ञासा से देखने की बात है वह भी देर-सवेर फ्रांसीसी उपन्यास में उभरती जान पड़ती है। इस संदर्भ में बर्नार्दिन द सेंट-पीयरे का उपन्यास पाल एंड वर्जीनी' लिया जा सकता है जहां आज के मारिशस का वातावरण दिया गया है। इस उपन्यास में न केवल मारिशस की प्रकृति अपनी पूरी भव्यता में प्रस्तुत है, बल्कि प्रारंभिक उपनिवेशीकरण का पक्ष और उसकी प्रक्रिया भी विद्यमान है।

1.8 अंग्रेजी उपन्यास और अठारहवीं सदी

अंग्रेज़ी उपन्यास के इतिहास में सबसे प्रथम और महत्वपूर्ण नाम हैनरी फील्डिंग का है। फील्डिंग पेशे से मैजिस्ट्रेट थे और कानून तथा सामाजिक व्यवहार की जटिलताएँ समझते थे। उनका नैतिक पक्षों का ज्ञान भी गहरा था। फील्डिंग की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे बिल्कुल अलग ढंग के विचारक थे और समाज के साथ-साथ राजनीति के भी तीखे आलोचक थे। इन सब चीज़ों के मिलेजुले प्रभाव ने फील्डिंग को लेखन के लिए प्रेरित किया। प्रश्न यह था कि अपनी प्रतिक्रियाओं और टिप्पणियों के लिए वे किस विधा को चुनें। उन दिनों अंग्रेज़ी में निबंध लेखन की शुरुआत हो चुकी थी। नाटक भी किसी न किसी रूप में मौजूद था। उनके दिमाग में जरूर यह आया होगा कि निबंध में बहुत बड़ी बात नहीं कही जा सकती। उधर, नाटक नगर तक सीमित था, उसके मंचन की सुविधा व्यापक दर्शक-श्रोता-पाठक के लिए उपलब्ध न थी। यद्यपि फील्डिंग ने निबंध और नाटक लिखे, लेकिन इनसे उन्हें संतोष न हुआ। फील्डिंग के भीतर बैठे रचनाकार को ऐसी विधा की ज़रूरत थी जो पाठक को झकझोरती और उसके दृष्टिकोण को बदलती। लेकिन कौन-सा या किस वर्ग का पाठक? यह सवाल फील्डिंग के लिए बहुत महत्व रखता था। फील्डिंग ने इस प्रश्न पर गहराई से सोचा और यह फैसला किया कि उसका पाठक सामान्य जनता का विवेकवान और नैतिक सदस्य होगा।

सिद्धांत की दृष्टि से देखें तो लेखक द्वारा किए गए पाठक के इस चुनाव में उपन्यास की क्रांतिकारी भूमिका छुपी है। अर्थात् उपन्यास का वैचारिक आधार बना सामान्य जनता के दर्शन का विकास। फील्डिंग ने महसूस किया कि उपन्यास को न केवल सामान्य जनता की मानसिकता का प्रतिनिधि होना चाहिए, बल्कि उसे सामान्य मनुष्य की साहसिकता और गरिमा का प्रतिबिंबन भी करना चाहिए। फील्डिंग ने यह भी सोचा कि इस तरह के लेखन को प्रेरणा के लिए प्राचीन महाकाव्यों की ओर देखना चाहिए, चूँकि वे महाकाव्य समाज की संपूर्णता को समर्पित थे और मनुष्य के साहस और उसकी निर्भीकता की कहानी कहते थे।

इस संदर्भ में उपन्यास के सिद्धांत की बात रोचक है क्योंकि फील्डिंग ने उपन्यास की बड़ी ही अजीबोगरीब परिभाषा दी। उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास 'जोसफ एंड्रयूस' की भूमिका में लिखा कि उपन्यास असल में हास्य महाकाव्य की कविता का गद्य में लेखन है। पाश्चात्य उपन्यास आलोचना में इस उद्धरण का बहुत प्रयोग होता है। हमें भी इस उद्धरण से उपन्यास के मूल चरित्र को, उसकी आत्मा को समझने में काफी मदद मिल सकती है। आप पाएँगे कि बाद के उपन्यासों में विश्वव्यापी फलक पर कहीं न कहीं इस परिभाषा का महत्व प्रतिच्छवित होता है। मैं इस परिभाषा पर किंचित विस्तार से दूसरी इकाई में चर्चा करूँगा। यहाँ यह बतलाना पर्याप्त होगा कि फील्डिंग ने मुख्य रूप से अपने 'टाम जोन्स' शीर्षक विश्व प्रसिद्ध

उपन्यास में इंगलैंड के सामंत वर्ग को तीखी आलोचना का लक्ष्य बनाया और साथ ही धर्म, नैतिकता, समाज, संस्कृति, आदि के क्षेत्रों में फैली विकृति को पूरी तीव्रता से चित्रित किया। यह करते समय उन्होंने प्रेम, नैतिकता और साहसिकता की भी नयी परिभाषा प्रदान की। इस उपन्यास का सबसे क्रांतिकारी पक्ष यह था कि इसमें फील्डिंग ने ऐसा नायक प्रस्तुत किया जिसका परिवार और कुल अज्ञात है और जिसे उत्पन्न होते ही उसकी माँ लोकलाज के कारण एक संपन्न घर की दहलीज पर छोड़ कर चली गई। इंगलैंड के समाज में कई सदियों से इस तरह के युवक मिल रहे थे। उन्हें निरंतर अपमान का सामना करना पड़ता था और बिना किसी कसूर के प्रतारणा सहनी पड़ती थी। फील्डिंग से लगभग डेढ़-सौ वर्ष पूर्व शेक्सपीयर ने अपने कई नाटकों में इस तरह के युवक को खलनायक बना कर यह दिखलाया था कि उनके व्यवहार की विकृति को सामाजिक पृष्ठभूमि में समझना ज़रूरी है। फील्डिंग ने एक कदम आगे बढ़कर यह कहा कि असल में यह अज्ञात कुलशील युवक और अवैध संतान अपनी सामूहिकता में और कोई न होकर इंगलैंड की सामान्य जनता है जिसका कोई स्वीकृत और मान्य इतिहास नहीं है और जिसे लगातार अपमान सहना पड़ता है। इस तरह से देखें तो कहना होगा कि फीलिंग ने सही अर्थों में उपन्यास को सामान्य जनता का महाकाव्य बनाया।

सवाल उठता है कि कला की दृष्टि से फीलिंग के इस महान् उपन्यास 'टाम जोन्स' को कहाँ रखा जाए? क्या यह कृति उपन्यास विधा का प्रारंभिक रूप है जिसे आगे चलकर एक समृद्ध आकार ग्रहण करना है? मेरा उत्तर है : नहीं। यही अंग्रेजी आलोचना के एक बड़े हिस्से का भी उत्तर है। कारण कि फील्डिंग ने इस कृति को कला के उच्चतम शिखर तक पहुँचाने में सफलता पाई। शैली के रूप में लेखक ने महाकाव्य लेखन की अनेक परंपराओं का इस्तेमाल किया और कथा को इस भाँति प्रस्तुत किया मानो कोई महान गायक-कवि ऐतिहासिक वृत्तांत सुना रहा हो। इस कृति में एक वस्तु लेखक ने विशेष रूप से जोड़ी। वह थी हास्य और व्यंग्य से भरी टिप्पणी जो पूरे उपन्यास में व्याप्त है और अपने स्वर में आज भी बेजोड़ मानी जाती है। तो यह था अठारहवीं सदी के अंग्रेज़ी उपन्यास का स्वरूप।

अठारहवीं सदी में फील्डिंग के समकालीन रिचर्डसन नामक एक अन्य लेखक को भी उपन्यास लेखन में अत्यधिक सफलता मिली। बल्कि अनेक बार फील्डिंग ने अपने उपन्यासों में रिचर्डसन की शैली को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया और इस तरह उनका महत्व स्वीकार किया। जहाँ फीलिंग एक दबंग, नैतिक और आदर्शशील लेखक थे, वहाँ रिचर्डसन मनुष्य के व्यवहार में छिपी मनोवैज्ञानिक सच्चाई को दिखलाने में विश्वास करते थे। उनकी प्रमुख कृति का नाम है 'क्लैरिसा'। इस कृति ने बाद में चलकर उपन्यास के भीतर एक पूरी परंपरा की नींव डाली।

1.9 सारांश

आपने एम एच डी-13 के तीसरे खंड की पहली इकाई 'विश्व साहित्य में उपन्यास का उदय' का अध्ययन किया है।

इस इकाई में उन कारणों की चर्चा की गई है जिन्होंने साहित्य की इस नयी विधा को इतिहास में संभव बनाया। इसमें यह भी दिखलाया गया है कि उपन्यास का गहरा संबंध उत्तर मध्यकालीन यूरोप में विकसित पूँजीवाद से है। पूँजीवादी उभार के कारण तत्कालीन यूरोपीय समाजों में उथल-पुथल हुई और इसके परिणामस्वरूप उपन्यास सरीखी लोकतांत्रिक विधा का जन्म हुआ। यह तर्क भी किसी सीमा तक प्रस्तुत किया गया है कि अठारहवीं सदी का अंग्रेजी उपन्यास अपनी आंतरिक शक्ति और साहस के बल पर एक क्रांतिकारी साहित्यिक उभार के रूप में सामने आता है। यह भी कहा गया है कि अंग्रेज़ी उपन्यासकार हैनरी फील्डिंग इस उभार के सर्वाधिक प्रामाणिक स्वर के रूप में याद किए जा सकते हैं।

1.10 शब्दावली

बूर्ज्वा : अठारहवीं सदी यूरोप में इसका अर्थ था व्यापारी समूह जो असल में मध्य वर्ग के रूप में उभरा था। उन्नीसवीं सदी तक आते-आते बूर्ज्वा को पूँजीपति का समानार्थक माना जाने लगा। आज इस शब्द का प्रयोग मध्य वर्ग और पूँजीपति दोनों अर्थों में होता है।

विधा : साहित्य रचना की वह श्रेणी जिसका एक स्थापित आकार-प्रकार होता है। इस तरह उपन्यास, नाटक, कहानी, कविता, आदि को विधा कहा जाता है।

रूप : यह विधा से अलग तथा अधिक व्यापक वस्तु है। उदाहरण के लिए उपन्यास की अंतर्वस्तु नाटकीय हो सकती है। इस अर्थ में उपन्यास कृति के भीतर नाटकीय रूप मुखर माना जाएगा। विधा से अलग उपन्यास-रूप की खासियत यह होगी कि उसमें सामान्य समाज का विस्तृत दर्शन प्रस्तुत होगा। उपन्यास-रूप में कसाव कम होता है, तथा फैलाव और ढीलापन अधिक।

अभ्यास

1. किन कारणों से उपन्यास को साहित्य की नवीनतम विधा कहा जा सकता है?
2. उपन्यास लोकतांत्रिक अपेक्षाओं और आदर्शों को उजागर करता है। क्या आप इससे सहमत हैं? अपने उत्तर को तर्कों से पुष्ट करें।
3. यूरोपीय साहित्य में उपन्यास लेखन के आरंभिक प्रयासों का विवेचन कीजिए।

इकाई 2 उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय उपन्यास-I

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 फ्रांसीसी उपन्यास : पृष्ठभूमि और प्रारंभिक रूप
  2.2.1 स्तैंधाल और उपन्यास
  2.2.2 बाल्ज़ाक और यथार्थवादी उपन्यास का स्वरूप
  2.2.3 उपन्यास में प्रतिनिधि चरित्र और बाल्ज़ाक
  2.2.4 उपन्यास में यथार्थवाद की प्रकृति
2.3 फ्रांसीसी कथा के अन्य लेखक : प्रकृतवाद और फ्लाबेयर
2.4 यथार्थवाद और प्रकृतवाद के बीच अंतर
2.5 प्रकृतवाद और ज़ोला
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली

2.0 उद्देश्य

एम एच डी-13 (उपन्यास : स्वरूप और विकास) के तीसरे खंड 'विश्व साहित्य में उपन्यास' की दूसरी इकाई में द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व के उपन्यासों पर विचार करेंगे। दरअसल उपन्यास के विकास की दृष्टि से उन्नीसवीं सदी का अंत और बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध अत्यंत महत्वपूर्ण है! इस इकाई में हम संक्षिप्त भूमिका सहित फ्रांसीसी उपन्यास के माध्यम से यूरोपीय उपन्यास का व्यापक परिचय प्राप्त करेंगे। फ्रांसीसी उपन्यास हमारे लिए सार्थक उदाहरण का भी काम करेगा। यहाँ तथा आगामी इकाई में यूरोपीय उपन्यास के अंतर्गत फ्रांसीसी, जर्मन, और रूसी उपन्यास की चर्चा होगी। हम यह भी देखेंगे कि इन देशों में पनपने वाले उपन्यास की अंग्रेज़ी उपन्यास से क्या समानताएँ तथा असमानताएँ थीं। इन पक्षों पर विचार करने के बाद हम किंचित विस्तार से उन्नीसवीं सदी के उपन्यास की पड़ताल करेंगे। इस इकाई का उद्देश्य आपको यूरोपीय उपन्यास के भीतर विकसित हुए यथार्थवाद से परिचित कराना है। उन्नीसवीं सदी को गहरे रूप से यथार्थवाद के साथ जोड़ा जाता है। दूसरी ओर, जैसा मैंने प्रथम इकाई में कहा है, उपन्यास का अर्थ ही है यथार्थवादी नज़रिए से आख्यान के अंतर्गत जीवन की सच्चाई का चित्रण। इस प्रकार, विश्व स्तर पर उपन्यास की विविधता और उसके महत्व को उन्नीसवीं सदी के उपन्यास के उदाहरणों से ही समझा जा सकता है।

2.1 प्रस्तावना

यूरोप में होने वाले उपन्यास के उदय को हम एक सीमा तक इस खंड की प्रथम इकाई में चर्चा का विषय बना चुके हैं। वहाँ हमने पूँजी के विकास और उपन्यास के उदय के बीच रिश्ते को रेखांकित करके यह कहा था कि जिस भाँति पूंजी ने सामान्य मनुष्य की उत्पादनशीलता का प्रयोग करते हुए उसे समाज के केंद्र में लाने का काम किया था, उसी तरह उपन्यास ने भी सामान्य मनुष्य को अपनी रुचि का विषय बनाया था। लेकिन क्या इसका अर्थ यह हुआ कि पूरे यूरोप में जहाँ पूंजी का प्राथमिक विकास देखने को मिला, वहाँ उपन्यास समान शक्ल और रूप में उभरा? इस प्रश्न का मेरा जवाब यह है कि साहित्य सामज के मात्र किसी एक पक्ष से प्रभावित नहीं होता, चाहे वह पक्ष कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो। साहित्य की प्रकृति यह होती है कि वह समाज के विविध प्रश्नों और मसलों को

अपने दायरे में लेता है, अनेक व्यवहार-नियमों और दृष्टियों का जायजा लेता है तथा विशिष्टता और प्रयोगधर्मिता बनाए रखकर यथार्थ का इस भाँति चित्रण करता है कि साहित्य की धारा अनूठी और नई जान पड़ती है। इस नाते हम विश्वास से कह सकते हैं कि सामान्यतः पूंजी के विकास से प्रभावित उपन्यासों ने यूरोप के विभिन्न समाजों में असाधारण विशिष्टता और गहनता का परिचय दिया।

2.2 फ्रांसीसी उपन्यास : पृष्ठभूमि और प्रारंभिक रूप

पहले हम फ्रांसीसी उपन्यास के प्रारंभिक रूप पर बात करें। अठारहवीं सदी में फ्रांस के भीतर काल्पनिक किस्सों और प्रेमाख्यानों का बोलबाला था। समाज के ज्यादातर लोग अशिक्षित थे और विशेषकर कस्बों और नगरों में जो व्यक्ति अक्षर ज्ञान रखते थे उनमें परिवेश को लेकर अधिक चिंताएँ न थीं। वे साहित्य को मनोरंजन की वस्तु मानते थे। जाहिर है, मनोरंजन के लिए रहस्य, उत्सुकता, आश्चर्य, आदि का बाकी चीज़ों से अधिक महत्व होता है। साथ ही प्रेमाख्यानों में कल्पना के प्रयोग की बहुत गुंजाइश रहती है। उन्हें पढ़कर आप जीवन की कठिनाइयों को नज़रअदांज करने में सफल होते हैं और अलग तरह के वातावरण का आनंद उठाते हैं। लेकिन इन किस्सों के बावजूद साहित्य के अंतर्गत आने वाली नाटक विधा में तीखा व्यंग्य आने लगा था, मानो लेखक अपने समाज की असंगतियों को अपने असंतोष का सीधा लक्ष्य बनाना चाहते हों। यह व्यंग्य उन व्यक्तियों के क्रोध को सामने लाता था जो नैतिक नियमों के बखान और वास्तविक व्यवहार के बीच विद्यमान खाई को स्पष्ट देखते थे। ऐसे संवेदनशील लोगों का एक पूरा तबका ही फ्रांस के सांस्कृतिक फलक पर अस्तित्व में आ चुका था। अठारहवीं सदी के प्रसिद्ध फ्रांसीसी नाटककार मोलियर की कृतियों में सामाजिक विसंगतियों को आलोचना का अच्छा निशाना बनाया गया है। इस तरह के लेखक जब राजसी दरबार तथा उस तरह के स्थानों से हटकर सामान्य जीवन की तरफ देखते थे तो उन्हें उक्त विसंगतियाँ और भी विकट रूप में नज़र आती थीं। लेखकों को यह भी महसूस होने लगा था कि जीवन की सामान्य कठिनाइयों और समस्याओं पर गद्य में अधिक प्रभावी ढंग से लिखा जा सकता है। इस तरह किस्से-कहानियों की दुनिया को गद्य लेखन से बाहर करके वास्तविक सवालों और नज़रियों पर बल देने की ज़रूरत महसूस हुई। इस ज़रूरत ने वोल्तेयर जैसे उपन्यासकार की उपस्थिति को संभव बनाया। यह भी दिमाग में रखना ज़रूरी है कि जिस तरह मोलियार की तरह के नाटककारों का एक पूरा समूह सांस्कृतिक फलक पर उभरा था, उसी तरह वोल्तेयर (1713-1784) सरीखे गद्यकारों-कथाकारों का भी एक समूह सामने आ रहा था।

अठारहवीं सदी के दौरान इंगलैंड से अलग फ्रांस के भीतर वैचारिक परंपरा में सामाजिक प्रवृत्तियों का प्रतिबिंबन कम देखने को मिलता था। लेकिन यह भी था कि फ्रांस में तर्कशीलता का उभार हो रहा था। मसलन, वोल्तेयर न केवल कवि, नाटककार और इतिहासकार थे, बल्कि दार्शनिक भी थे। उनकी कृतियों में समाज पर टिप्पणी तो मिलती ही थी, प्रश्नों का वेश्लेषण और समाधान भी संकेतित होता था। उनके प्रसिद्ध उपन्यास का शीर्षक है 'कांदीद'। वोल्तेयर से पूर्व मेरी मेडेलीन (1634-1693) नाम से एक उच्चवर्गीय महिला ने अनेक कथाकृतियाँ दीं जिनमें 1678 में छपा उनका उपन्यास 'दी प्रिंसेस ऑफ क्लीव्ज़' आज भी प्रसिद्ध है। इसी तरह वोल्तेयर के समकालीन देनिस दिदरो (1713-1784) थे। वे यूरोपीय दर्शन के इतिहास और अध्ययन में पूरे बल और महत्व से उद्धृत होते हैं। लेकिन दिदरों ने एक अत्यंत सार्थक उपन्यास 'जैक्स दी फेटेलिस्ट' नाम से लिखा, जिसका मुख्य मकसद था पाठकों को नए विचारों से अवगत कराना। इसी तरह चार्ल्स नोदीर (1780-1844) नाम के एक अन्य कथाकार ने बेहद काल्पनिक और रहस्यमय रचनाएँ लिखीं। इन सभी लेखकों की कृतियों में पाठक का अपने परिवेश की सचाई से सामना कराया जाता था।

लेकिन यह काफी नहीं था। अठारहवीं सदी के फ्रांस में उपन्यास की वैसी प्रतिष्ठा नहीं हुई जैसी इंगलैंड में हो गई थी। इसका एक कारण था। फ्रांस में सामाजिक परिवर्तन का आधार बहुत धीमे विकसित हो रहा था। चिंतन में ज़रूर बदलाव था, लेकिन ज्ञान-विज्ञान में इंगलैंड के समकक्ष विकास न था। फिर भी, अठारहवीं सदी के अंत में जैसे ही महान् फ्रांसीसी क्रांति हुई, सन् 1789 में, वैसे ही फ्रांस की मेधा और प्रतिभा पूरे विस्फोट की शक्ल में सामने आई। क्रांति के प्रभाव के अधीन उपन्यासकारों की तो एक पूरी पीढ़ी ही खड़ी हो गई। इन उपन्यासकारों ने उन्नीसवीं सदी में एकाएक फ्रांसीसी उपन्यास को यूरोप की सर्वश्रेष्ठ रचनाशीलता के उदाहरण के रूप में प्रतिष्ठित किया। हमें इस औपन्यासिक रचनाशीलता के बारे में किंचित विस्तार से जानने की ज़रूरत है।

2.2.1 स्तैंधाल और उपन्यास

स्तैंधाल (1783-1842) और बाल्ज़ाक (1799-1850) की गणना यूरोप के महानतम उपन्यासकारों में होती है। दोनों ने अपने विशिष्ट ढंग से फ्रांसीसी जीवन के यथार्थ को चित्रित किया। उनके उपन्यासों में मानो तत्कालीन समाज अपने जीवंत रूप में प्रस्तुत हो गया। स्तैंधाल ने हास्य के भीतर प्रयोगधर्मिता को अपूर्व ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया। यह रचनाकार अपने वास्तविक अर्थ में रचयिता और अन्वेषक था। वह पात्रों के तेवर कुछ इस तरह पकड़ता था कि वे अपने समाज की किसी खास व्यवहारगत प्रवृत्ति का मूर्त उदाहरण बन जाते थे। स्तैंधाल के उपन्यासों में इन विभिन्न तेवरों की टकराहट से तत्कालीन समाज की ऐसी नाटकीय तस्वीर बनती थी मानो पाठक को अचानक तीव्र वर्गीय सच्चाई उपलब्ध हो गई हो। स्तैंधाल की कृतियों में सर्वप्रसिद्ध उपन्यास का नाम है 'दी रैड एंड दी ब्लैक'। यह उपन्यास 1830 के आसपास लिखा गया था, जबकि इसका प्रकाशन लेखक की मृत्यु के उपरांत सन् 1853 में हुआ। उनके दूसरे चर्चित उपन्यास का नाम है 'दी चार्टर हाउस ऑफ पारमा'। अपने लेखन में स्तैंधाल बालसुलभ मासूमियत और आश्चर्य के कायल थे। इन्हीं चीज़ों को वे वास्तविक जीवन में पाना चाहते थे। चूँकि तत्कालीन फ्रांस में यह संभव न था, इसलिए वे विद्रूप से भर उठते थे और अपने उपन्यासों में चुटकियाँ लेते हुए जीवन के भीतर गरिमा की अनुपस्थिति को रेखांकित करते थे। यहाँ उनकी विचारधारा भी दर्शनीय थी जो मानव इतिहास में पीछे छूटे विश्वास और आश्चर्यलोक से अनुप्राणित होती थी और उनसे मदद पाकर अपने आसपास उपस्थित विसंगतियों पर चोट करती थी। इस अर्थ में वे अपने समय के बहुत सुंदर चितेरे थे।

2.2.2 बाल्ज़ाक और यथार्थवादी उपन्यास का स्वरूप

बाल्ज़ाक के औपन्यासिक चित्रण की कथा-आलोचना में बहुत प्रशंसा होती है। यह फ्रांसीसी समाज के यथार्थ के चित्रण है। यथार्थ से अभिप्राय वह वस्तु नहीं है जो हमें अपने आसपास आँखों से दिखती है, अर्थात् जिसे आँख-देखी कहा जाता है। आँख को जो दिखता है, वह भी कितना दिखता है। जो दिखता है उसके पीछे कितनी ही अनदिखी प्रक्रियाएँ चला करती हैं। उन प्रक्रियाओं का ताल्लुक दिखने वाली चीज़ से भी होता है और उस बीते हुए कल की चीज़ों से भी जो असल में वर्तमान का हिस्सा है। बीते हुए कल को जिसका दायरा मात्र दर्शक ही नहीं होते, बल्कि शताब्दियाँ भी होती है, बाल्ज़ाक ने इतिहास की संज्ञा दी। इससे भी आगे, उन्होंने स्वयं को इतिहासकार कहा - कथा के माध्यम के भीतर सक्रिय इतिहासकार। बाल्ज़ाक की कामना थी कि वह पूरे फ्रांस का इतिहास लिखे। इस इतिहास में बाल्ज़ाक के मुताबिक अपने देश के अलग-अलग पक्ष, क्षेत्र वर्ग-उपवर्ग, व्यवसाय, आदि होने थे। इस योजना में डेढ़ सौ-दो सौ कृतियाँ होनी थीं जिनके यद्यपि अलग-अलग शीर्षक होने थे लेकिन जिन्हें बाल्ज़ाक मुख्यतः केवल एक नाम देना चाहते थे। वह नाम था मानव कामेडी। इस मुख्य शीर्षक के अंतर्गत ही उनके उपन्यासों के नाम केवल उपशीर्षक थे। कारण, कि बाल्ज़ाक अपने समाज के इतिहास लिखना चाहते थे जो एकीकृत और अटूट है।

2.2.3 उपन्यास में प्रतिनिधि चरित्र और बाल्ज़ाक

यथार्थ चित्रण के लिए बाल्ज़ाक ने प्रतिनिधि चरित्रों का सहारा लिया। बाल्ज़ाक की राय में ये चरित्र समाज की किन्हीं खास प्रवृत्तियों के वाहक थे और पाठक उनके भीतर अपने व्यवहार की छाया देख सकता था। अथवा उनमें पाठक किन्हीं ऐसे अन्य लोगों को पहचान सकता था जिनसे उसका कभी वास्ता हुआ था। ये पाठक समाज के वास्तविक सदस्य जो थे। जाहिर है ऐसे चरित्र यदि समाज में विद्यमान होंगे तो उनकी सक्रियता का रूप भी पाठक को नज़र आएगा। इस तर्क को आगे बढ़ाएँ तो उपन्यास के चरित्र की यह व्यवहारगत सक्रियता आसपास के बाकी चरित्रों से जुड़ती है। इसके साथ ही, यह सक्रियता उन कारकों की तरफ भी संकेत करती है जिन्होंने उसे संभव बनाया। इस तरह प्रतिनिधि पात्र अपनी विविधता में समूचे समाज या उसके बहुलांश को चित्रित करने में सफल हो सकते थे।

अपने उपन्यास में किसी चरित्र के व्यवहार का हूबहू चित्रण बाल्ज़ाक को पसंद न था। यह वैसा ही होता जैसा मनुष्य की आँख देखती है। बाल्ज़ाक इसमें अपनी कल्पनाशीलता और प्रयोगधर्मिता मिश्रित करते थे और चरित्र को बहुआयामी बनाने में सफल होते थे। अनेक बार बाल्ज़ाक के चरित्र-चित्रण में समाज का एक पूरा तबका नज़र आने लगता है। उदाहरण के लिए, बूढ़ा गोरियो ' शीर्षक उपन्यास में वात्रिन नाम का अपराधी एक कुख्यात आयोजक और हत्यारा तो है ही, लेकिन इसके साथ ही वह बेहद आकर्षक और जीवंत व्यक्ति भी है। उसकी ऊर्जा में, उसकी कल्पनाशीलता और स्वप्नदर्शी प्रकृति में हमें तत्कालीन फ्रांसीसी समाज का व्यापारी वर्ग नज़र आता है। एक ही चरित्र में इतनी सघनता उत्पन्न करके बाल्ज़ाक यह दिखलाने में सफल हुए कि समाज का नया शासक वर्ग प्रेरणादायी तर्क सफलताधर्मी दृष्टिकोण और अपराध का मिलाजुला रूप होने जा रहा है। यह हुआ भी। यह वह चीज़ थी जिसे बाल्ज़ाक इतिहास के भीतर रखकर ही दिखला सकते थे।

लेकिन प्रतिनिधि चरित्र के भीतर बाल्ज़ाक व्यक्ति को भी पकड़ते थे -- एक ऐसे हाड़-माँस के व्यक्ति को जो अपने परिवेश की गतिविधि में हिस्सा लेकर बाकी लोगों से प्रभाव ग्रहण करता तथा उनसे प्रभावित हेता है। इससे भी आगे, बाल्ज़ाक इस चरित्र को बाकी चरित्रों से सामना करते हुए, उनसे उलझते-झगड़ते हुए दिखलाते थे। यह वैचारिक-सामाजिक स्तर पर दो वर्गों के नज़रिए का टकराव बन जाता था। इससे उपन्यास में अद्भुत नाटकीयता पैदा हो जाती थी। अपनी वैचारिकता और मूर्तता में बाल्ज़ाक के उपन्यास इतने रोचक हैं कि वे एक साथ पाठक को उत्तेजित भी करते हैं और प्रसन्न भी। यह तभी संभव हो पाया जब बाल्ज़ाक ने अपना उपर्युक्त अनूठा यथार्थवादी तरीका विकसित किया।

2.2.4 उपन्यास में यथार्थवाद की प्रकृति

बाल्ज़ाक के यथार्थवादी तरीके में उनकी लेखकीय ईमानदारी की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी। आज यह जगजाहिर है कि अपने सामाजिक जीवन में बाल्ज़ाक कुछ-कुछ परंपरावादी थे और तथाकथित आधुनिक किस्म के लोग उन्हें पसंद न थे। लेकिन इस विचार ने कभी उनके लेखन में बाधा न पैदा की। बाल्ज़ाक जब लिखने बैठते थे तो अपने निजी विचार और आग्रह भूल जाते थे। तब वे वही लिखते थे जो उन्हें वास्तविक लगता है, फिर चाहे वह वास्तविक कितना ही अप्रिय अथवा अस्वीकार्य क्यों न हो। मसलन, यह रोचक है कि परंपरावादी होने और जीवन में सामती लोगों को समर्थन देने के बावजूद बाल्ज़ाक की रचनाओं में सामंती चरित्र बहुत निकृष्ट और पतित रूप में दिखलाई पड़ते हैं। कारण, कि बाल्ज़ाक में बैठा यथार्थवादी लेखक यह जानता था कि सामंतवाद का युग बीत गया है और नयी स्थिति में वह गतिहीन, घृणित और त्याज्य हो चुका है। बाल्ज़ाक की निजी और लेखकीय दृष्टि की इस टकराहट में, जैसा हमने देखा, लेखकीय दृष्टि की विजय हुई चूँकि वह यथार्थवादी दृष्टि थी। इस विजय को उन्नीसवीं सदी के महान् समाजवादी विचारक फ्रेडरिक एंगेल्स ने बहुत ही सुंदर अभिव्यक्ति दी -- 'यथार्थवाद की विजय'। अर्थात् यह किसी व्यक्ति की, किसी लेखक की विजय न होकर यथार्थवाद की विजय थी जो इसलिए संभव हो पाई कि लेखक ने अपने

पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर रचना में सामाजिक सच्चाई को वस्तुपरकता से उभरने की इज़ाजत दी।

2.3 फ्रांसीसी कथा के अन्य लेखक : प्रकृतवाद और फ्लाबेयर

ऊपर मैंने बाल्ज़ाक पर किंचित विस्तार से टिप्पणी की है। इसका कारण यह है कि बाल्ज़ाक के संदर्भ में हम फ्रांसीसी कथा के बदलते रूप, चित्रण-प्रकार और यथार्थ संबंधी प्रयोगों को समझ सकते हैं। इसके साथ ही, हम बाल्ज़ाक से तुलना करके रूसी यथार्थवाद तथा बीसवीं सदी के आधुनिकतावादी कथा लेखन का भी आकलन कर सकते हैं। पहले हम फ्रांसीसी कथा के दो प्रमुख नामों, फ्लाबेयर और ज़ोला की रचनाओं को देखें।

फ्लाबेयर यद्यपि यथार्थवाद के कायल थे, लेकिन आलोचकों ने उनको प्रकृतवादी कहा है। प्रकृतवाद को एक तरह से यथार्थवाद का एक हिस्सा कहा जा सकता है। स्वयं फ्लाबेयर के मस्तिष्क में भी यह रहा होगा कि चूँकि समय के साथ यथार्थ का रूप बदलता है, इसलिए उसे देखने-परखने में ढंग में भी बदलाव आना चाहिए, और यह भी कि उन्नीसवीं सदी के मध्य में उभरने वाले यथार्थ को प्रकृतवादी तरीके से समझा जा सकता था। उन्नीसवीं सदी के मध्य में पूरे यूरोप के भीतर विज्ञान का बोलबाला था। विज्ञान ने विश्वास पर आधारित अध्ययनों को पूरी तरह खारिज़ करके यह कहा था कि केवल उसी वस्तु को स्वीकारना श्रेयस्कर होगा जो परीक्षण पर खरी उतरती हो। परीक्षण पर आधारित अध्ययन की इस नयी रीति ने मनुष्य-ज्ञान के नए आयाम विकसित किए। ज्ञान के विभिन्न भागों-प्रभागों में इससे क्रांति हो गई। अध्ययन में कुछ ऐसे नए क्षेत्र भी उभरे जिनके बारे में पहले कल्पना करना भी असंभव था। इनमें विकासधर्मी जीव विज्ञान और मनोविज्ञान प्रमुख थे। विकासधर्मी जीव विज्ञान ने ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए, बल्कि उसे पूरी तरह अस्वीकृत करके यह कहा कि मनुष्य प्रकृति के भीतर विकासशीलता के लंबे काल के अंतर्गत विभिन्न जीवन-रूपों से गुजरते हुए अपने वर्तमान रूप तक पहुँचा है। कुछ दशकों बाद मनोविज्ञान के माध्यम से ऐसे अनेक सवालों का जवाब दिया जान लगा कि जिन तक इससे पूर्व धर्म या नैतिक चिंतन की पहुँच थी। यह ईश्वरीयता पर इतना तीखा प्रहार था कि अब तक भी धर्म-चिंतन इस मार से उभर नहीं पाया है। तत्कालीन वैज्ञानिक तरीकों पर आधारित इस दृष्टिकोण ने साहित्य और कला में प्रकृतवाद को जन्म दिया जिसके अनुसार वही मान्य था जिसे मनुष्य की इंद्रियाँ ग्रहण कर सकती थीं और जिसे यानी जिसके अस्तित्व को परीक्षण के बल पर सिद्ध किया जा सकता था। प्रकृतवाद की नज़र में यही यथार्थ भी था। यूरोपीय उपन्यास में मनुष्य जीवन को इस तरह की वास्तविकता के आधार पर चित्रित करना फ्लाबेयर के सृजन से जुड़ा है। ज़ाहिर है, यदि हम यह नज़रिया अपनाएँगे तो मानव व्यवहार के हर पक्ष को यथा तथ्य रूप में समझना पसंद करेंगे और उन्हीं चीज़ों को सहमति प्रदान करेंगे जो हमें अपने परिवेश में स्पष्ट दिखती है। तब यदि कुछ व्यवहार नियम या नैतिक मूल्य हमें समाज के भीतर सक्रिय नज़र आते हैं जो उनकी यथार्थपरक पड़ताल करना हमारा उद्देश्य होगा।

इस दृष्टि को केंद्र में रखकर फ्लाबेयर ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'मदाम बोवेरी' की रचना की। इस उपन्यास में एक ऐसी नारी का चित्रण है जो अपने परिवेश को उन कल्पनाओं से भिन्न पाती है जो उसके मस्तिष्क में रोमेंटिक कथाएँ पढ़ते वक्त पैदा हुई। वयःसंधि के समय ऐमा बोवेरी नामक इस चरित्र ने जैसे ही एक गाँव में प्रेक्टिस करने वाले साधारण से डाक्टर को देखा तो वह उसकी तुलना अपने स्वप्न लोक के किसी नायक से करने लगी। इस प्रभाव के अधीन उसने झट से डाक्टर द्वारा किया गया विवाह का प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया। लेकिन विवाह के उपरांत ऐमा ने पाया कि उसका पति एक सामान्य प्राणी है जो प्रारंभ से ही उसकी जिंदगी को नीरस बनाने में जुट गया है। ऐमा का यह मोहभंग उपन्यास में बेहद निराशाजनक स्थिति उत्पन्न करता है। ऐमा सोचती है कि इस स्थिति से निकलने के लिए

उसे कुछ भी करना है। फ्लाबेयर ने इस कथा के माध्यम से फ्रांस के तत्कालीन बूर्ज्वा माहौल पर तीखी चोट की और दिखलाया कि उन्नीसवीं सदी के मध्य का फ्रांस किसी भी तरह आकर्षक या प्रेरणादायी न था। यह वह फ्रांस था जिसमें व्यापारी वर्ग पूरी तत्परता से आत्मोन्नति और प्रसार में लीन था और जिसे किसी नैतिक मूल्य अथवा आदर्श सिद्धांत के लिए मोह न था। इस तरह फ्लाबेयर का समाज पूरी तरह संकुचित और तुच्छ मानसिकता का शिकार हो चुका था।

यद्यपि ऐमा बोवेरी का चरित्र इस उपन्यास के केंद्र में है, लेकिन फ्लाबेयर इसमें अनेकानेक मूल्यविहीन और स्वार्थी लोगों का व्यवहार दिखलाते हैं। उनमें से कुछ तो ऐमा से प्रेम सबंध स्थापित करते हैं और उसका भावनात्मक तथा यौन शोषण करते हैं। स्थापित नैतिकता के विरोध के खड़ी ऐमा यह नहीं जान पाती कि किस भाँति वह अपने मन का खालीपन भरे। न वह पति से लगाव महसूस करती है और न ही उस बच्ची से जिसे उसने जन्म दिया है। फ्रांस के जिस कस्बे में ऐमा रहती है वहाँ एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो उसकी समस्या से परिचित हो अथवा उससे सहानुभूति रखता हो। ऐमा का अपना अनुभव भी इतना कम और अधूरा है कि वह इससे कुछ भी सीखने की स्थिति में नहीं है। इस उपन्यास में फ्लाबेयर अपने परिवेश को उसकी पूरी मूल्यविहीनता और अमानवीयता में पकड़ते हैं। तभी उन्हें इस स्थिति से त्राण हेतु ऐमा के लिए केवल एक मार्ग नज़र आता है – आत्महत्या। ऐमा की आत्महत्या तीखी निराशा और जुगुप्सा पैदा करती है। साथ ही पाठक यह भी देखता है कि इस आत्महत्या ने जो उपन्यास के भीतर अनेक पृष्ठों के विस्तार में फैली है परिवेश के किसी व्यक्ति को परेशान नहीं किया है। ऐमा का पति भी केवल स्तब्ध है। वह यह नहीं जानता कि ऐमा की पीड़ा क्या थी। न ही उसमें यह सोचने की क्षमता है।

पूछा जा सकता है कि क्या फ्रांस में उन्नीसवीं सदी के भीतर कुछ भी ऐसा नहीं था जिसे देखकर पाठक में आशा या उत्साह का संचार हो। फ्लाबेयर का उत्तर यह नज़र आता है कि जो उपस्थित है और दिख रहा है वह बेहद अमानवीय और घृणित है, और यह भी कि तत्कालीन फ्रांस से भविष्य में किसी तरह के सार्थक अथवा निर्माणकारी तत्वों की आशा करना व्यर्थ है।

2.4 यथार्थवाद और प्रकृतवाद के बीच अंतर

फ्लाबेयर में बाल्ज़ाक की कथा से भिन्न तस्वीर है। जहाँ बाल्ज़ाक का यथार्थवाद निषेधात्मक और सकारात्मक तत्वों की आपसी लड़ाई दिखलाकर पाठक को एक ठोस वास्तविकता के मध्य छोड़ देता था और उसे मनुष्य-सुलभ आशावाद के लिए तैयार करता था, वहाँ फ्लाबेयर केवल वर्तमान को दिखलाकार उसके त्रास और बिखराव को दिखलाते हैं। मैंने ऊपर कहा है के बाल्ज़ाक कामेडी के लेखक थे। इसके विपरीत फ्लाबेयर अपने प्रकृतवाद के कारण ट्रेजेडी के लेखक हैं। साथ ही, यह ट्रेजेडी पुराने किस्म की नायकत्व प्रधान ट्रेजेडी न होकर आधुनिक मध्यवर्गीय औरत की ट्रेजेडी है जिसमें न केवल परिवेश का अस्वीकार है, बल्कि स्वयं पात्र को भी सीमित रूप में आंका गया है। कारण स्पष्ट है : फ्लाबेयर केवल उसी का चित्रण करना चाहते हैं जिसे वे अपनी आँखों के सामने घटित होता देख रहे हैं। इस देखने में वह संभावना शांमिल नहीं है जो समाज के किन्हीं तबकों में, उनकी पीड़ा और बेचैनी में मौजूद है। संभावना को पहचानना प्रकृतवाद का ध्येय नहीं। संभावना को आप न स्पष्ट देख सकते हैं, न ही परीक्षण द्वारा उसकी उपस्थिति को सिद्ध कर सकते हैं। संभावना को पहचानने के लिए कल्पनाशीलता चाहिए। प्रकृतवाद कल्पनाशीलता को नकार कर केवल सामने मौजूद तथ्य को प्रस्तुत करता है और उसी को यथार्थ कहने का आग्रह करता है। फिर भी कहें कि फ्लाबेयर फ्रांसीसी उपन्यास की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में आते हैं और हमारे

2.5 प्रकृतवाद और ज़ोला

ज़ोला श्रमशील व्यक्ति थे और विचारधारा की दृष्टि से वे तत्कालीन समाजवाद के काफी निकट थे। इस नाते वे अपने वक्त की संरचनाओं और प्रवृत्तियों के आलोचक थे। इस आलोचकीयता ने ही उन्हें उपन्यास में बेबाक और निर्भीक बनाया। लेकिन अपने वास्तविक दृष्टिकोण में, उस दृष्टिकोण में जो वस्तुपरक ढंग से उनकी कृतियो में उभर कर आया, वे फ्लाबेयर की ही भाँति प्रकृतवादी थे। बल्कि वे फ्लाबेयर से आगे थे और तथ्यों को बहुत महत्व देते थे। उनके उपन्यासों में विवरणों का जमघट देखा जा सकता है। ज़ोला सिर्फ इतना करते हैं कि इन विवरणों को एक खास तरतीब देते हैं और यथार्थ की एक के बाद दूसरी परत उघाड़ते चलते हैं। उनकी रचनाओं में आदर्शशीलता के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि जोला समाज की सच्चाई को विवरणों के स्तर पर देखने के पक्षधर थे। इस कारण कभी-कभी जोला के उपन्यास नीरस और उबाऊ भी होने लगते हैं। लेकिन जिस पाठक को उन्नीसवीं सदी के फ्रांसीसी जीवन की हूबहू तस्वीर से परिचित होना हो, उसके लिए वे अत्यंत उपयोगी सिद्ध होंगे।

यह नहीं कि प्रकृतवादी विवरणों की बहुलता से ज़ोला के औपन्यासिक प्रभाव में कमी आती हो। पहली चीज़ तो यही है कि ज़ोला अपने समय में काफी बिवादास्पद रहे। शक्ति-केंद्रों ने उनका जमकर विरोध किया। कुछ लोगों को ज़ोला के उपन्यासों में यौन-चित्रणों के भीतर अश्लीलता नजर आई और कुछ को तत्कालीन नैतिकता का अनुचित नकार दिखा। असल चीज़ यह थी कि ज़ोला को अपने वक्त की रीति-नीतियाँ संस्थाएँ, राजनीतिक-धार्मिक-वैधानिक प्रणालियाँ, आदि पसंद न थीं। वे सोचते थे कि ये सामाजिक निर्मितियाँ व्यक्ति की चेतना को विकृत करती हैं, उसे अमानवीय बनाती हैं और हिंसा की ओर धकेलती हैं। ज़ोला में अपराध, हत्या झूठ और छल का इतना विशद चित्रण है कि पाठक को उनकी रचनाएँ पढ़कर उस वक्त का फ्रांसीसी जीवन बेहद नकारात्मक और त्याज्य लगने लगता है।

ज़ोला के प्रसिद्ध उपन्यास 'नाना' को ही लें। नाना नाम की स्त्री जो इस उपन्यास की केंद्रीय पात्र है, पेशे से वेश्या है। वह शहर में रहती हुई विभिन्न पुरुषों के संपर्क में आती है और उनके व्यावसायिक, अनैतिक, अमानवीय व्यवहार की निकट साक्षी बनती है। वह स्वयं भी धीरे-धीरे इस माहौल का हिस्सा बनती है। प्रेम उसके लिए महज पुरुष को अपनी ओर लाभ के लिए आकर्षित करने का तरीका है – कारण, कि प्रेम का फ्रांसीसी समाज में व्यवसायीकरण हो चुका है। जोला की राय में कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो प्रेम में विश्वास करके अपने जीवन की अतल गहराइयों से बाहर आना चाहेगा? इसी तरह एक अन्य चर्चित उपन्यास 'थेरेसा रैकिन' में ज़ोला प्रेम, विवाह, और अपराध में कोई अंतर नहीं करते और पात्रों को इस दुनिया में उलझाकर बतलाते हैं कि पूरा का पूरा समाज ही विकृत हो चुका है। यहाँ प्रकृतवाद में एक विडबना नज़र आती है। इस विडंबना का सबंध उन तथ्यों की बहुलता से है जो आलोच्य विषय के इर्द-गिर्द नज़र आते हैं। कथा रचना के भीतर पढ़ते-पढ़ते एक ऐसा बिंदु आता है कि उक्त विवरण आत्यंतिक मानसिकता पैदा कर देते हैं – अनेकानेक निषेधात्मक तथ्य जीवन के हिंसक पक्ष को उभारते हैं और पात्रों की अमानवीयता का प्रतीक बनते हैं। अकस्मात लगता है कि हूबहू चित्रित विवरणों की बहुलता बीच-बीच में विवरणों का विपरीत अर्थात् प्रतीक बनने लगती है। ज़ोला में हिंसक प्रतीकों की भरमार है, क्योंकि रचनाकार द्वारा प्रस्तुत विवरण असल में सामान्य तथ्यों को मात्र गिना नहीं रहे हैं, बल्कि उन्हें पात्रों के व्यवहार में सक्रिय चेतना का संकेतक कह रहे हैं। कल्पना कीजिए कि अनेक विवरण किसी पात्र की अनैतिकता के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं। कुछ पृष्ठों के बाद इस पात्र की

अनैतिकता एक भयावह रूप ले लेगी और तब लेखक हत्या के माध्यम से, बेचैन स्वप्न चित्र के माध्यम से पाठक के *मस्तिष्क को झकझोरने में सफल होगा। अपने-अपने ढंग से* फ्लाबेयर, ज़ोला और मोपासां जैसे अनेक प्रकृतवादियों ने अपनी बेहद प्रभावी कथा-कृतियों के माध्यम से यही किया। उन्नीसवीं सदी के फ्रांस में लिखी इन कृतियों ने एकबारगी साहित्य में अपना वर्चस्व कायम कर लिया। यही नहीं, बाद में बीसवीं सदी की जर्मन कथा पर भी इस प्रकृतवाद का स्पष्ट प्रभाव देखा गया। इसका सशक्त उदाहरण काफ्का की *कथाकृतियाँ हैं।*

आगामी इकाई में हम रूस और इंगलैंड में उन्नीसवीं सदी के मध्य हुए औपन्यासिक विकास और तत्कालीन रचना-संकटों पर विचार करेंगे। उससे हमें पता चलेगा कि बीसवीं सदी में किन कारणों से उपन्यास के सामने कुछ गहरी समस्याएँ खड़ी हुईं।

2.6 सारांश

इस इकाई में हमने यूरोपीय उपन्यास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण धारा से परिचय प्राप्त किया है। यह धारा यथार्थवाद की धारा थी। यहाँ यद्यपि संदर्भ फ्रांसीसी कृतित्व का है लेकिन उसके माध्यम से हमने उपन्यास तथा विचारधारा और रचना से जुड़े कुछ व्यापक पक्षों को भी देखा है। ये पक्ष आगामी इकाइयों के लिए संदर्भ का काम करेंगे। अठारहवीं सदी के इंगलैंड में प्रारंभ होने वाली इस यथार्थवादी धारा का जैसा विकास फ्रांस में देखा गया, वह अद्भुत है। इस धारा से विश्व के अन्य समाजों ने भी बहुत कुछ सीखा और उन समाजों के लेखकों ने इंगलैंड के तथा फ्रांसीसी लेखकों से प्रेरणा ग्रहण करके अपने परिवेश का प्रामाणिक ओर निर्भीक चित्रण प्रस्तुत किया। *साथ ही, इस इकाई में यह भी बतलाया गया है कि प्रकृतवाद* यथार्थवाद के अंतर्गत पनपने वाली ही एक रचना-प्रवृत्ति है। यह दूसरी बात है कि यह यथार्थवाद के जैसी व्यापक नहीं है। इकाई में आपने स्तैंधाल, बाल्ज़ाक और एमिल ज़ोला जैसे महान् फ्रांसीसी उपन्यासकारों के बारे में विस्तार से पढ़ा। इन तीनों उपन्यासकारों ने विश्व उपन्यास साहित्य पर गहरा असर डाला है। आपको चाहिए कि आप इन लेखकों की *कृतियों का आस्वादन करें। इन लेखकों के कई उपन्यास हिंदी में भी उपलब्ध हैं।*

2.7 शब्दावली

यथार्थवाद की विजय : इसका संबंध लेखक की वास्तविक विचारधारा से है, उस द्वारा सचेत रूप से अपनाई गई विचारधारा से नहीं। जब रचनाकार ईमानदारी से अपने समाज को मुखातिब होता है तो वह अपनी निजी विचारधारा के आग्रहों से मुक्त होता है और यथार्थ को उसके गहनतम रूप से देखता है। इस स्थिति में ईमानदारी और बेहद सृजनशील रचनाधर्मिता सामने आती है।

प्रतिनिधि चरित्र : उपन्यास के वे पात्र जो एक साथ *समाज के किन्हीं सामान्य गुणों से भी* लैस होते हैं और साथ ही अपनी स्थिति में मूर्त होते हैं। अर्थात् स्थिति की मूर्तता के कारण वे स्वयं किसी अन्य स्थिति में बदल जाएँगे, यद्यपि उनकी मौलिक सामान्यता कायम रहेगी।

विडंबना : आलोचना में इस शब्द का बहुत प्रयोग होता है। प्रस्तुत इकाई में इसके माध्यम से *यह बतलाया गया है कि अनेक बार लेखक जो करना चाहता है रचना में उसके विपरीत* घटित होता है। विडंबना अनेक बार रचना के ही नहीं, बल्कि उसके भीतर चित्रित समाज की अनेक सीमाओं को भी प्रभावी ढंग से उजागर करती है।

इकाई 3 उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय उपन्यास-II

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 उन्नीसवीं सदी के रूसी उपन्यास
  3.2.1 तुर्गनेव की औपन्यासिक दृष्टि
  3.2.2 दोस्तोव्यस्की के उपन्यासों में विचारधारा
  3.2.3 तोल्सतोय के उपन्यास
  3.2.4 मैक्सिम गोर्की और समाजवादी यथार्थवाद
3.3 जर्मन उपन्यास लेखन
3.4 उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी उपन्यास
  3.4.1 चार्ल्स डिकेंस के उपन्यासों में यथार्थवाद
  3.4.2 जार्ज एलियट और हार्डी का उपन्यास लेखन
3.5 अंग्रेज़ी उपन्यास में नारी अनुभव और चेतना का उभार
3.6 उपन्यास और सामाजिक गतिमयता का अंतःसंबंध
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली

3.0 उद्देश्य

एम एच डी-13 (उपन्यास : स्वरूप और विकास) पाठ्यक्रम के तीसरे खंड की तीसरी इकाई पढ़ने जा रहे हैं। पिछली इकाई में आपने उन्नीसवीं सदी के फ्रांसीसी उपन्यास लेखन के बारे में किंचित विस्तार से पढ़ा है। आपको स्मरण होगा कि वहाँ महत्वपूर्ण सूचनाओं के साथ-साथ अनेक विचार-बिंदु भी दिए गए हैं। वे विचार-बिंदु असल में पूरे यूरोपीय उपन्यास को उसकी रचना-क्रिया के भीतर समझने में सहायक हो सकते हैं। प्रस्तुत इकाई में चूँकि आपका परिचय एक साथ रूसी, जर्मन और उन्नीसवीं सदी के अंग्रेज़ी उपन्यास से कराया जाएगा, इसलिए फ्रांसीसी उपन्यास पर की गई टिप्पणियों को यहाँ ध्यान में रखना उपयोगी होगा।

इस इकाई का उद्देश्य उन्नीसवीं सदी के रूसी, जर्मन और अंग्रेज़ी उपन्यास पर विचार करते हुए यह बतलाना है कि उपन्यास विधा में यूरोपीय संदर्भ के भीतर कई असमानताएँ और विशिष्टताएँ हैं। जाहिर है कि इन विशिष्टताओं का संबंध उस सामाजिक सच्चाई से है जो इन विभिन्न देशों में उन्नीसवीं सदी के बीच विद्यमान थीं। इस तरह देखने पर आपको लगेगा कि उपन्यास बाकी साहित्य-रूपों और विधाओं की अपेक्षा सामान्य जीवन के अधिक निकट होता है।

3.1 प्रस्तावना

इस खंड में आप अब तक दो इकाइयाँ पढ़ चुके हैं। इन इकाइयों को पढ़ने से आपको कुछ हद तक यह बात समझ में आ गई होगी कि उपन्यासों का विकास यूरोप में किस तरह हुआ। उन्नीसवीं सदी यूरोपीय उपन्यास लेखन का स्वर्ण युग है। न सिर्फ अंग्रेजी बल्कि फ्रेंच, रूसी और यूरोप की दूसरी भाषाओं में भी उपन्यास के क्षेत्र में कालजयी रचनाएँ सामने आईं। पिछली इकाई में आपने फ्रांसीसी उपन्यासों का विशेष रूप से परिचय प्राप्त किया था। उपन्यासों के विश्व साहित्य पर हमारी योजना यह थी कि आपको उन्नीसवीं सदी तक के उपन्यासों का परिचय दो इकाइयों में देकर समाप्त करेंगे लेकिन इस दौर के उपन्यासों के महत्व को देखते हुए यह संभव नहीं हो पाया और अब तीसरी इकाई में भी उन्नीसवीं सदी के

उपन्यासों पर ही विचार किया गया है। खंड की अंतिम इकाई में बीसवीं सदी के उपन्यासों और तीसरी दुनिया के उपन्यासों पर चर्चा होगी। हालांकि पूरी एक सदी का उल्लेख एक इकाई में समाविष्ट करना संभव नहीं है और ऐसा करना न्यायपूर्ण भी नहीं है, लेकिन स्थान के अभाव के कारण हमें ऐसा करना पड़ रहा है। हम आपसे अपेक्षा करते हैं कि बीसवीं सदी के उपन्यासों का अध्ययन आप अपने आप भी करेंगे। बीसवीं सदी के उपन्यास आसानी से उपलब्ध भी हो जाते हैं।

इस इकाई में उन्नीसवीं सदी के रूसी उपन्यासकारों पर खास तौर पर ध्यान दिया गया है। तुर्गनेव, दोस्तोव्यस्की, तोल्सतोय, मैक्सिम गोर्की सिर्फ रूसी उपन्यासकार ही नहीं हैं बल्कि विश्व उपन्यासकार हैं। हिंदी के पाठक इनसे भलीभाँति परिचित हैं। इनके कई उपन्यास हिंदी में भी उपलब्ध हैं। रूसी उपन्यासकारों पर विचार करते हुए इस बात को ध्यान में रखा जाना ज़रूरी है कि इन उपन्यासकारों की रचनाओं का असर तत्कालीन रूसी समाज पर अवश्य पड़ा होगा, जिसने 1917 की सोवियत क्रांति को संभव बनाया।

इस इकाई में उन्नीसवीं सदी के अंग्रेज़ी उपन्यासों पर भी विचार किया गया है, विशेष रूप से चार्ल्स डिकेन्स का जो महान् उपन्यासकारों में माने जाते हैं। इनके अलावा जेन आस्टिन, जार्ज एलियट और एमिली ब्रांटे के लेखन पर भी विचार हुआ है जिन्होंने तत्कालीन समाज में नारी चेतना के उभार को वाणी दी है। यद्यपि इकाई में जर्मन उपन्यासों का भी संक्षिप्त उल्लेख किया गया है लेकिन रूसी, फ्रांसीसी और अंग्रेज़ी उपन्यासों की तुलना में जर्मन उपन्यासों का प्रभाव सीमित रहा है। अगली इकाई में बीसवीं सदी के उपन्यासों के साथ-साथ आप तीसरी दुनिया के उपन्यासों का भी परिचय प्राप्त करेंगे।

3.2 उन्नीसवीं सदी के रूसी उपन्यास

उन्नीसवीं सदी की सशक्त फ्रांसीसी कथा धारा से अब हम रूसी कथा-दृश्य की ओर मुड़ें। वहाँ हम पाते हैं कि उन्नीसवीं सदी से पहले जीवंत लोक कथा विद्यमान है जिसका संबंध, जाहिर है, जन जीवन की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं से होता है और जिसका मुहावरा बेहद लचीला और परिवर्तनशील होता है। लेकिन अचानक उन्नीसवीं सदी के रूसी समाज में महत्वपूर्ण बदलावों की प्रक्रिया शुरू हुई। यह बदलाव विशेषकर सामाजिक और धर्म चिंतन के क्षेत्रों में दिखलाई पड़ा। धर्म चिंतन की जकड़ रूसी मानसिकता पर प्रारंभ से ही बहुत मज़बूत थी। लेकिन जैसे-जैसे ज़ार और उसके दरबार तथा सामान्य लोगों के बीच आर्थिक शोषण और सामाजिक दमन के चलते अंतराल बढ़ा तो उन्नीसवीं सदी के संवेदनशील तबके नये ढंग से सोचने को प्रवृत्त हुए। मसलन, उन्होंने पाया कि धर्म चिंतन और ज़ारशाही से जुड़ी ताकतों के बीच अद्भुत गठजोड़ है– धर्म चिंतन पूरे आग्रह से ज़ारशाही को समर्थन देता जान पड़ता है। इस स्थिति में रूसी चिंतक और रचनाकार – जो उच्च या उच्च-मध्य वर्ग से ही आते थे– मानव केंद्रित परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत सोचने को बाध्य हुए। तब उन्हें महसूस हुआ कि मनुष्य जीवन की आपदाओं का मूल कारण समाज के भीतर सक्रिय राजनीतिक-वैधानिक प्रणालियाँ हैं। दूसरी तरफ, उक्त प्रणालियों के भार के नीचे उन्हें अनेकानेक संवेदनशील व्यक्ति पिसते नज़र आए। गौर कीजिए कि इन लोगों को उक्त प्रणालियों और सामान्य लोगों के व्यवहार में एक जुड़ाव दिखलाई पड़ा – *ये प्रणालियाँ अपनी तरफ से समाज में सक्रिय थीं और सामान्य* लोगों ने उन्हें स्वीकार करके अपने व्यवहार में ढाल लिया था। इस भाँति संवेदनशील व्यक्तियों ने स्वयं को पूरे विकृत समाज के समक्ष विरोध की भूमिका के अंतर्गत खड़ा महसूस किया। समस्याओं के भार से दबा और साथ ही उसके विरोध का साक्षी यह यथार्थ अपनी संपूर्णता में रूसी अराजकतावादी चिंतन की धुरी था।

3.2.1 तुर्गनेव की औपन्यासिक दृष्टि

उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार तुर्गनेव ने तत्कालीन समाज के इस वैचारिक परिवेश को अपने लेखन में जगह दी। रूसी कथा लेखन की आंतरिक प्रकृति को समझने के लिए यह परिवेश बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। दूसरी तरफ, लेखक की रचनाधर्मिता परिवेश को ग्रहण करने की प्रक्रिया में स्वयं को सक्रिय तरीके से ढालती है। आइये, पहले इस परिवेश के कुछ ज़रूरी तत्वों पर विचार करें।

तुर्गनेव के समय रूसी समाज के भीतर एक तरफ बेहद बेचैनी थी और दूसरी तरफ उपन्यास साहित्य रूप की दृष्टि से पर्याप्त विकसित हो चुका था। मैं जिस बेचैनी की यहाँ बात कर रहा हूँ वह मध्य वर्ग के लोगों में विशेष रूप से दिखने लगी थी, चूँकि वे इस बेचैनी को नैतिक रूप से समझने तथा प्रस्तुत करने में यकीन रखते थे और इस तरह बेचैनी को प्रभावी आकार देने में सक्षम थे। तुर्गनेव ने अपने वक्त के वरिष्ठ कथाकार गोगोल और दुब्रोल्युबोव से सीख लिया था कि रचना में जितनी भूमिका लेखक के अपने पसंद नापसंद की होती है उतनी ही समाज के अन्य व्यक्तियों द्वारा अपनाई गई विपरीत सम्मति की होती है। तुर्गनेव यह मानते थे कि रचनाकार की अपनी अस्मिता होती है जिसके बल पर वह पात्रों या चरित्रों की अस्मिता पहचानता है और उन्हें, अर्थात् पात्रों को रचना के पृष्ठों में पूरी आजादी देता है। रचनागत इस संश्लिष्ट वस्तु को सामान्य विचारक तथा लेखक समझ नहीं पाए जिसके फलस्वरूप उन्होंने तुर्गनेव के उपन्यास **बाप और बेटे** को लेकर पर्याप्त विवाद किया था। आलोचकों का मानना था कि सामज में सबसे मूल्यवान वस्तु स्थायित्व, मानवीयता, कालसिद्ध नियमावली और संगति होती है, जबकि तुर्गनेव उस संदेहशीलता और सुगबुगाहट को पहचानना चाहते थे जो सामाजिक असंतोष और मध्यवर्गीय संवेदनशीलता के मिश्रण का नतीजा थी। कृपया सोचें कि तुर्गनेव को रूसी समाज में उत्पन्न इस नयी गतिकी का कितना सही आभास हुआ था। तुर्गनेव अपने लेखन में हिंसा पर, असमानता पर, तीखे नकारवादी विचारों पर और निराशाजन्य क्षोभ पर एक साथ नज़र रखे हुए थे और चाहते थे कि रूस का सामान्य शिक्षित पाठक इस नये वैचारिक तत्व से परिचित हो। यह भी दिमाग में रखना होगा कि तुर्गनेव में एक ठोस मानवीय तथा इहलौकिक विचार पैदा हो रहा था जिसकी अर्थवत्ता से इनकार करना आसान न था। इसी चीज़ ने तुर्गनेव को बेहद मानवीय और प्रासंगिक बनाया।

3.2.2 दोस्तोव्यस्की के उपन्यासों में विचारधारा

उक्त सवालों पर दोस्तोव्यस्की के लेखन में गहन विचार मिलता है। दोस्तोव्यस्की तुर्गनेव से आगे जाकर मनुष्य की मनुष्यता और अस्मिता को इस तरह मानने लगे थे मानो जीवन में वह अकेली ही सब कुछ है, और इस पर किसी तरह की बहस संभव नहीं। मनुष्यता की अवधारणा को दोस्तोव्यस्की के उपन्यासों में एक अटल और गंभीर विश्वास के साथ चित्रित किया गया और उसे लगभग धार्मिक संज्ञा दी गई। दोस्तोव्यस्की में यह विचार नज़र आता है कि मनुष्य-व्यवहार को अदेखे-अनजाने अर्थात् रहस्यमय तत्व से जोड़कर समझा जा सकता है, चूँकि समाज की विकृतियों का संदर्भ लाने से मनुष्यता की हानि होती है। मसलन, **अपराध और दंड** शीर्षक उपन्यास में दोस्तोव्यस्की मानव हत्या का प्रश्न प्रस्तुत करते हुए बतलाते हैं कि तथाकाकथित निरर्थक अथवा समाज के लिए हानिकर और अमानवीय जिंदगी जीने वाले व्यक्ति में भी मनुष्यता होती है। वे यह भी सोचते थे कि समाज या राजनीति से जुड़ा गंभीरतम विचार भी महत्व की दृष्टि से उक्त मनुष्यता का समकक्ष नहीं है। इसी कारण अपराध का व्यक्ति पर ऐसा असर होता है, चूँकि वह अपराध है, कि कोई भी विचार या व्याख्या व्यक्ति को संदेह और वेदना से उबार नहीं सकते। इसी तरह **बौड़म** (इडियट) शीर्षक उपन्यास में वे मानव-चरित्र की ऐसी परतें खोलते हैं जो संवेदनधर्मी शब्दों, बिंबों और चित्रों के माध्यम से ही पाठक के लिए ग्राह्य बन पाती हैं। इस उपन्यास का केंद्रीय पात्र एक ऐसा सरल, भावुक और स्वयं में खोया हुआ व्यक्ति है जो आसपास की हर चीज़ को विस्मय से देखता है। विस्मय, सौंदर्य और उलझन से प्रभावित रचनाधर्मिता उस दृष्टि का आधार बनते हैं जिसे दोस्तोव्यस्की ने अपनी रचनाओं में क्रिश्चियन रहस्यवाद से मंडित किया है। यह

रहस्यवाद काल्पनिक न होकर उन्नीसवीं सदी के रूस की सांस्कृतिक-वैचारिक इयत्ता से जुड़ा है। रहस्यवाद का यह ठोस रूप आज भी अनेकानेक पाठकों तथा आलोचकों के लिए प्रेरणा का विषय है। कारण यह है कि दोस्तोव्यस्की ने अपने समकालीनों से काफी आगे जाकर मनुष्य-आत्मा की आंतरिकता को पहचाना और उसे गरिमामय रूप देकर प्रतिष्ठित किया। साथ ही, दोस्तोव्यस्की ने अपने ढंग से उन सभी विचारों का जवाब दिया जो रूसी मध्य वर्ग को नये संदर्भ में परेशान करते थे।

3.2.3 तोल्सतोय के उपन्यास

रूसी परिदृश्य में दोस्तोव्यस्की के बाद तोल्सतोय आते हैं। जिस भाँति तुर्गनेव और दोस्तोव्यस्की अपने वक्त की चिंताओं से विचलित थे, उसी तरह तोल्सतोय भी ठोस सामाजिक सरोकार को अपनी रचना में पूरा महत्व देते हैं और इसकी नये परिप्रेक्ष्य में जाँच करते हैं। यह आश्चर्य मिश्रित जिज्ञासा का विषय है कि दोस्तोव्यस्की ने जिस सवाल को रहस्य की शक्ल देकर पेश किया, तोल्सतोय ने उसे समाज के सामान्य व्यक्ति के श्रम से जोड़कर देखा। तुर्गनेव उच्च शिक्षित वर्ग से आते थे और दोस्तोव्यस्की मध्य वर्ग से। तोल्सतोय का संबंध इन दोनों लेखकों के विपरीत भूस्वामी वर्ग तथा ज़ारशाही तंत्र से था। इसके बावजूद वे रहस्य पर चोट करते हैं, और सांस्कृतिक प्रश्न को धार्मिकता से निकाल कर पूरी तरह सामाजिक बनाते हैं। तोल्सतोय में विचार तत्व तुगर्नेव और दोस्तोव्यस्की की निस्बत अधिक ही नहीं, गुणात्मक रूप से भी भिन्न है। वे मानव व्यवहार को समाज के बीच रखते हैं और जीवन-समस्याओं के अद्‌भुत पारखी हैं। तोल्सतोय में न केवल समाज की बल्कि इतिहास की समझ भी बहुत गहरी है।

तोल्सतोय की खूबी यह है कि वहाँ हमें रूस की धरती की, वहाँ की प्रकृति की, और वहाँ के किसान जीवन की सच्ची तस्वीर देखने को मिलती है। प्रभुता-सम्पन्न वर्ग में पैदा होने के बावजूद तोल्सतोय अपने वर्णनों में सरल किसान की दृष्टि लाते हैं और कहते हैं कि मनुष्य व्यवहार को असल में प्रकृति का गणित अनुशासित करता है। इस अर्थ में यह अनुशासन जीवन प्रवाह और मानव-शक्ति का अनुशासन है जिसके अधीन मनुष्य सदा अपने सामान्य समाज की स्वाभाविक क्रिया से जुड़ा रहता है। तभी तोल्सतोय को गाँव पसंद आता है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास **युद्ध और शांति** में एक प्रमुख पात्र को जब भी नगर-जीवन के भीतर रहते हुए ऊब और नीरसता महसूस होती है तो वह कुछ महीनों के लिए गाँव में जाकर रहता है। एक ओर जहाँ नगर में ज़ार की दरबारी संस्कृति से प्रभावित जीवन का ठहराव है, वहीं दूसरी ओर ग्राम-जीवन की क्रियाओं में मनुष्य की निजता और मुक्तता है। गाँव से लौटकर यह पात्र फिर से स्वयं को कृत्रिम दरबार-केंद्रित संस्कृति का भार वहन करने में सक्षम पाता है।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शांति जैसे महत्वपूर्ण विषय पर लिखने के लिए तोल्सतोय को इस ग्रामीण किसान के दृष्टिकोण से बहुत सहायता मिली। उसी के बल पर तोल्सतोय देख पाए कि रूसी मानस को स्थायित्व, स्वाभाविकता और मनुष्य जीवन के भीतर निरंतर बहने वाली कविता की ज़रूरत है। यह कविता जीवनी-शक्ति का वाहक है। तोल्सतोय यह भी देखते हैं कि व्यापक रूसी समाज को मुख्य खतरा उस तंत्र से है जो दरबार के आसपास पैदा हो गया है और जिसे मानव-समाज की स्वाभाविकता से कोई लेना-देना नहीं है। तथाकथित आधुनिक शासन तंत्र और समाज व्यवस्था ने तोल्सतोय में प्रतिक्रिया उत्पन्न की। इसके परिणामस्वरूप वे गहरे स्तर पर रूसी समाज की अस्मिता से जुड़े। तोल्सतोय की नज़र में यह आधुनिकता, श्रम के शोषण पर आधारित थी और अन्यायपूर्ण होने से इसमें संवेदनशून्यता घर कर गई थी। इस संवेदनशून्यता ने ही युद्धजनित विभीषिका को जन्म देकर पूरे समाज के सामने चुनौती प्रस्तुत की। तोल्सतोय यहाँ एक साथ उस बेचैनी और समाजगत अनैतिकता को नया परिप्रेक्ष्य देते हैं जिसका वर्णन तुर्गनेव और दोस्तोव्यस्की में देखने को मिलता है। तभी तोल्सतोय अपने पूर्ववर्तियों और समकालीनों की निस्बत अधिक स्पष्ट और मूर्त नज़र आते हैं।

तोल्सतोय मनुष्य-जीवन की त्रासदी के भी अद्भुत चितेरे हैं। उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में वे सामान्यतया यूरोप के लिए और विशेषकर रूस के लिए अच्छे भविष्य की कल्पना नहीं कर पाते थे। मनुष्य जीवन के भीतर प्रवाहित ऊर्जा को उनके उपन्यासों में निरंतर खतरे का सामना करना पड़ता है। जब भी उनके शक्तिशाली पात्र समाज के नियमों का भार झेलते हैं तो अनेक बार आंतरिक प्रेरणा के अधीन मुक्त होने की सोचते हैं। लेकिन तभी वे समाज के व्यवहार-नियम की नैतिकता तोड़ते हुए अपराधी भी महसूस करते हैं। यह अपराध बोध उस अवस्था में अतिरिक्त रूप से मारक हो उठता है जब समाज अपने सदस्य को दंडित करने, बल्कि कुचलने की सोचता है। गरिमावान पात्रों पर पड़ने वाली यह दुहरी मार ऐसे विध्वंस का कारण बनती है कि तोल्सतोय की कथा रचना गहरी त्रासदिकता में डूब जाती है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास **अन्ना करेनिना** में यही देखने को मिलता है।

तोल्सतोय के वर्णनों पर टिप्पणी करते हुए जार्ज लुकाच ने कहा है कि वहाँ यथार्थवाद का नया रूप उभरा है। यह रूसी सांस्कृतिक संदर्भ में ही संभव था। तोल्सतोय से पहले रूसी उपन्यास में प्रकृतिवादी वर्णनों की परंपरा थी। उनके भीतर पाठक को या तो तीखे विचार मिलते थे, या फ़िर रहस्य-मंडित विश्वास और नैतिकता मिलती थी। मैंने इसके कारण की ओर संकेत करते हुए ऊपर तुर्गनेव के उच्चवर्गीय जीवन या दोस्तोव्यस्की की मध्यवर्गीय संवेदना का हवाला दिया है। तोल्सतोय ने विशेषकर फ्रांसीसी विचार और संस्कृति को संदेह की नज़र से देखा और रूसी जीवन की सादगी को केंद्र में रख़ा। इस सादगी ने तोल्सतोय को उपन्यास के भीतर कवि, चित्रकार, आदि न बनाकर साधारण प्रस्तोता बनाया। उनके उपन्यास आलेखधर्मी हैं जहाँ रूसी जीवन के अनेकानेक विवरण हैं। पात्रों को भी तोल्सतोय इन विवरणों के बीच रखकर गढ़ते हैं। इस प्रक्रिया में कुछ ऐसा होता है कि सामान्य दिखने वाले जीवन-पटल पर कुछ ही पृष्ठों बाद परिवर्तन हुआ महसूस होता है। असल में परिवर्तन को पकड़ने का यह तोल्सतोय का अपना तरीका है जो एक ओर यथार्थवादी फ्रांसीसी उपन्यास से अलग है और दूसरी ओर रूस के पूर्ववर्ती समाजधर्मी उपन्यास से। लुकाच इसी नये यथार्थवादी रूप को रेखांकित करते हैं। बीसवीं सदी के प्रारंभ में मैक्सिम गोर्की ने इस यथार्थवाद को आगे विकसित करते हुए रूसी उपन्यास को समृद्ध किया।

3.2.4 मैक्सिम गोर्की और समाजवादी यथार्थवाद

उपन्यास आलोचना में गोर्की को समाजवादी यथार्थवाद का प्रयोक्ता बतलाया गया है। इस विशेषण के पीछे जों समझ काम करती है उसका ताल्लुक वर्ग-विचारधारा से है। गोर्की ने अपनी रचना में स्पष्ट रूप से समाजवादी विचारधारा को अपनाया। गोर्की की संवेदना को निकट से परखें तो वहाँ श्रमिक वर्ग का दमदार और प्रेरणादायी रूप पाएँगे। गोर्की श्रमिक वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका से परिचित हैं और मानते हैं कि मानवता का भविष्य केवल श्रमिक वर्ग के नेतृत्व में सुरक्षित है। गोर्की को यह भी पता है कि आधुनिक श्रमिक वर्ग समकालीन शोषण से संघर्ष करके उसे समाप्त करने में सक्षम है। गोर्की के उपन्यासों में वह सख्ती है जो असल मे साधारण रूसी व्यक्ति की ईमानदार मनुष्यता का प्रतिफलन है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास **माँ** में पाठक का रूसी चरित्र की इसी दृढ़ता से सामना होता है। इस उपन्यास में यह पाकर अचंभा होता है कि जहाँ कहीं भी नायक अपनी मध्यवर्गीय संवेदनशीलता के चलते अनेक बार हतोत्साहित होता है या उलझन में फंसकर निराश या परेशान होता है वहाँ उसकी अशिक्षित माँ उसे समर्थन देकर थामती है। उपन्यास की संरचना में माँ का यह पात्र रूसी दृढ़ता का प्रतीक बनता है। गोर्की अपने लेखकीय परिप्रेक्ष्य को लेकर जरा भी संशयशील या अनिश्चित नहीं है। वे पाठक को समाजवादी भविष्य की मानवीय परिकल्पना के लिए तैयार करते हैं। रूसी कथा इस प्रक्रिया में तुर्गनेव तथा तोल्सतोय से शुरू होती है और गोर्की की समाजवादी परिकल्पना से पुष्ट होती हुई बीसवीं सदी के मध्य शोलोखोव की रचनाशीलता से सार्थक रूप में जुड़ जाती है।

3.3 जर्मन उपन्यास लेखन

सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से यूरोप के एक महत्वपूर्ण देश जर्मनी में विचार, दर्शन और चिंतन का उभार या विकास तो हुआ, लेकिन कथा लेखन में फ्रांस या रूस के टक्कर की रचनाएँ कम ही सामने आईं। इसका कारण क्या रहा होगा? मैंने इस खंड की पहली इकाई में कथा के विकास को सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन से जोड़ा है और कहा है कि कथा अपने मूल में सामान्य जनजीवन की ऊर्जा से मूल्यवत्ता और दृढ़ता प्राप्त करती है। जहाँ फ्रांस में अठारहवीं सदी की क्रांति ने जनता में उत्साह का संचार किया, वहाँ रूस में उन्नीसवीं सदी ने अपनी जनता को बीसवीं सदी की समाजवादी क्रांति के लिए तैयार किया। या कहें कि परिवर्तन प्रक्रिया की तरंग को रूसी कथा ने बहुत प्रामाणिक ढंग से अपने भीतर दर्ज किया। यह जर्मनी में न हो पाया। परिवर्तनविहीन जर्मन समाज ने अमूर्त दर्शनों की तो परंपरा विकसित की, लेकिन साहित्य में जर्मन मानस बाकी यूरोपीय लेखन का पिछलग्गू बना रहा। केवल बीसवीं सदी के तीस या चालीस के दशक में वहाँ टॉमस मान अथवा फ्रांज काफ्का सरीखे उपन्यासकार उभरे।

इसका यह अर्थ नहीं कि जर्मनी के सांस्कृतिक परिवेश में उपन्यास की संभावना बिल्कुल ही न थी। अपने प्रारंभिक काल में, जिसे रोमांसवाद का काल माना जाता है, जर्मन समाज ने अनेक प्रतिभाएँ उत्पन्न कीं। इनमें गेटे का नाम सर्वोपरि है। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी के संधिकाल में सक्रिय गेटे ने अपनी कथा रचनाओं के माध्यम से ऐसी मानववादी-नैतिक दृष्टि विकसित की जिसकी मिसाल बाकी यूरोपीय लेखन में मुश्किल से मिलेगी। गेटे ने **यंग वर्थर** तथा अन्य उपन्यासों में मानवीय संबंधों को एक साथ प्रकृति तथा समाज की नज़र से परखा और पाया कि मानव चेतना का काम इतिहास में हस्तक्षेप करते हुए सुंदर और काम्य की सृष्टि करना है। गेटे ने जड़ परंपरा पर प्रहार किए और नैतिक व्यवहार को नए ढंग से व्याख्यायित किया। गेटे ने प्रकृति को मनुष्य-व्यवहार के भीतर देखा। अर्थात् उनके अनुसार प्रकृति मनुष्य के नैतिक संसार का अभिन्न हिस्सा है और उसे बल प्रदान करती है। परंपरावादियों को यह मान्य न था। वे प्रकृति को परंपरा के लिए हानिकारक मानते थे। गेटे द्वारा परंपरा पर किए गए प्रहार आगे चलकर धर्म पर हुए प्रहारों में बदल गए। इसी से उन्नीसवीं सदी में जर्मनी के अनेक कथा लेखकों ने सामाजिक सरोकारों को रचना का विषय बनाया। यह आमतौर पर समृद्ध अंग्रेज़ी उपन्यास की प्रेरणा के अधीन हुआ। इसमें काफी यांत्रिकता भी देखी गई। जिन लेखकों ने विशेष रूप से जर्मन कथा को समृद्ध किया उनमें हीनरीख वान क्लीस्ट, गोटफ्राइड कैलर, जार्ज बकनर, स्टिफ्टर, रिल्के, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अपने ढंग से इन लेखकों ने तत्कालीन समाज के महत्वपूर्ण पक्षों पर टिप्पणी की। यह भी देखा गया कि इन लेखकों ने साहित्य की अन्य विधाओं में भी निरंतर लिखा। यह इस बात का सूचक है कि प्रारंभिक जर्मन कथा का वह प्रभाव न हो पाया जो साहित्य के अन्य क्षेत्रों में था।

3.4 उन्नीसवीं सदी के अंग्रेज़ी उपन्यास

अंत में हम अंग्रेज़ी कथा पर आते हैं जिसका अद्भुत विस्तार और विकास उन्नीसवीं सदी में हुआ। कहा जा सकता है कि प्रभाव और प्रेरणा की दृष्टि से उन्नीसवीं सदी की अंग्रेज़ी कथा विश्व के भीतर बेजोड़ है। यद्यपि वहाँ स्तैंधाल, बाल्ज़ाक, दोस्तोव्यस्की अथवा तोल्सतोय जैसे कथा लेखक तो नहीं हैं, लेकिन परिवर्तन-भावना का इतना तीव्र संचार है कि पाठक **इन** रचनाओं को पढ़कर एक साथ चमत्कृत और उत्साहित होता है।

3.4.1 चार्ल्स डिकेन्स के उपन्यासों में यथार्थवाद

इंगलैंड में उन्नीसवीं सदी की कथागत विविधता अद्भुत है। उसमें सामाजिक चेतना का शक्तिशाली संचार तो है ही, पूरा समाज, अर्थात् समाज के सब हिस्से अपनी निकटता और मूर्तता में उपस्थित हैं। डिकेंस को लें। सामान्य अंग्रेज़ी आलोचना को डिकेंस में भावुकता नज़र आती है। इस भावुकता को इंगलैंड में कमजोरी माना जाता है। समझा जाता है कि जो लेखक भावुक है वह समाज की गहरी समझ विकसित कर पाने में असमर्थ होता है। यह विचार की अजीबो-गरीब व्याख्या है। अंग्रेज़ी आलोचना यह नहीं देख पाती कि भावुकता और भावुकता में फर्क होता है। एक भावुकता वह भी होती है जहाँ आप इंसानियत के सदियों से संजोए गए महत्वपूर्ण मूल्यों को अपनी आँखों के सामने समाप्त होता देख कर खिन्न होते हैं और उन पात्रों के लिए स्नेह से भर उठते है जो वर्तमान में भी कहीं उन मूल्यों से प्रभावित-परिचालित हैं।

कौन हैं ये पात्र? डिकेंस में ये पात्र उस मूल क्रिश्चियन भावना का उदाहरण हैं जो प्राचीन इतिहास में मनुष्यता का समानता-केंद्रित सपना बनकर उभरी। इस मनुष्यता में प्रेम और लगाव के साथ-साथ त्याग और नैतिक साहस भी है। यह तथाकथित आधुनिक जीवन के तामझाम की ओर आकृष्ट नहीं होती, बल्कि उसे हिकारत की नज़र से देखती है। इसके बावजूद ऐसे पात्र डिकेंस में बहुत कम हैं जहाँ ऐसी मनुष्यता के इस असाधरण परिप्रेक्ष्य को उपन्यासों का आधार बनाते हैं और तब उस समाज की बखिया उधेड़ते हैं जिसे पूंजीवाद ने मात्र धन और लोभ के लिए पैदा किया है। बल्कि यहाँ बखिया उधेड़ना आंशिक रूप में ही सच है क्योंकि डिकेंस अपने समाज की पूरी प्रणालियों को दृष्टि के केंद्र में ले आते हैं और तब पाठक को दिखलाते हैं कि वहाँ दमन, त्रास, आपाधापी और संवेदनशून्यता का निर्माण होता है। पूंजीवाद की इसके विभिन्न रूपों में जितनी आलोचना डिकेंस में मिलती है वैसी संभवतः विश्व के किसी अन्य लेखक की कृतियों में नहीं मिलती। कथा के भीतर डिकेंस के आलोचना-विस्तार की कल्पना कीजिए – वहाँ आपको कारखाने के आसपास का त्रासद जीवन तो नज़र आएगा ही, लेकिन साथ ही आपका राज्यसत्ता के विभिन्न रूपों से भी सामना होगा। इस राज्यसत्ता में नौकरशाही शामिल है, न्यायपालिका शामिल है, धन बटोरने वाले छोटे-बड़े लोगों का हुजूम है और साथ ही धर्म संस्थाओं से जुड़े अनेकानेक लोगों का घृणित व्यवहार है। हम यह देखकर भी चमत्कृत होते हैं कि डिकेंस कल्पना के बल पर दमनकारी व्यक्तियों की पूरी मानसिकता को भी विस्तार से प्रस्तुत करते हैं। सोचिए, इस परिप्रेक्ष्य में सरलता और स्नेह का तर्क अपने-आप ही मधुर और भावुक नज़र आएगा।

डिकेंस की मूल्यता इसमें भी निहित है कि वे अपने उपन्यासों में एक के बाद एक जीवंत पात्रों का परिचय कराते हैं और इस तरह मानव-व्यवहार के समृद्ध रूप को रेखांकित करते हैं। ये पात्र कारखाने से लेकर शहर की सुदूर गलियों तक बिखरे पड़े हैं। उससे भी आगे आप उन्हें गाँवों में, कस्बों में, जेलों में, अपराध तंत्र के भीतर आयु के विभिन्न मुकामों पर सक्रिय पाते हैं। उनकी मदद से डिकेंस इंगलैंड का पूरा समाज ही पाठक के सामने खड़ा कर देते हैं। यहाँ यह जानना भी रोचक होगा कि डिकेंस को उन्नीसवीं सदी के लंदन से गहरा लगाव है। वे इसकी गलियों से, इसके कूचे-कूचे से वाकिफ़ हैं और अपने विवरणों में मनुष्यता का रंग भरते हुए लंदन को एक विशाल जीवंत समाज का प्रतीक बनाने में सफल होते हैं।

3.4.2 जार्ज एलियट और हार्डी का उपन्यास लेखन

इसी तरह का जीवन-विस्तार हमें जार्ज एलियट और टॉमस हार्डी में भी मिलता है। दोनों में ही मुख्य रूप से इंगलैंड का गाँव और कस्बा विद्यमान है। दोनों में किसान जीवन से जुड़ी कर्मठता और सादगी पर बल है। यहाँ जार्ज एलियट उक्त सादगी को क्रिश्चियन रहस्य से किंचित मंडित करती है जबकि हार्डी इसे मानवधर्मी विचार की मदद से वेदना और तीखी खिन्नता का विषय बनाते हैं। यह हार्डी का त्रासदिक लोक है। लेकिन इस लोक में किसी अन्य अस्तित्व की छाया देखना अनुचित होगा। बीसवीं सदी के मार्क्सवादी आलोचक आर्नल्ड

कैटल ने हार्डी में किसान जीवन और उत्पादन के ध्वस्त होने का उल्लेख करते हुए कहा है कि वहाँ हार्डी एक पूरे वर्ग की पीड़ा और हताशा देखकर बेचैन हैं। यह सही भी है। जिस तरह पूंजीवाद ने धरती पर किसान द्वारा किए गए उत्पादन को नष्ट करके मानव-संबंधों पर चोट की है उसे देखकर किसी संवेदनशील मनुष्य में उसके, अर्थात् पूंजीवाद के लिए जुगुप्सा पैदा होगी तथा आसपास उम्मीद की किरण न देखकर त्रासदिक भावना उपजेगी।

अंग्रेज़ी उपन्यास में यथार्थवादी लेखन की परंपरा : एक बार फिर पीछे जाएँ तो उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में अंग्रेज़ी के महान् ऐतिहासिक उपन्यासकार वाल्टर स्कॉट ने अभूतपूर्व ढंग से अंग्रेज़ी कथा को समृद्ध किया। स्कॉट में यद्यपि कुछ परिचित ऐतिहासिक पात्र तो हैं लेकिन साथ ही अनेकानेक ऐसे सामान्य लोग मिलते हैं जो परिचित पात्रों से अधिक अपने समय की सच्चाई को अभिव्यक्त करते हैं। साथ ही स्काट एक कालखंड को इस भाँति प्रस्तुत करते हैं कि वहाँ न केवल अतीत की छाया नज़र आती है बल्कि आने वाले वक्त की प्रवृत्तियाँ भी अपनी संभावना में नज़र आने लगती हैं। यहाँ यह भी न भूलना होगा कि वाल्टर स्कॉट की रचनाओं से ही प्रसिद्ध फ्रांसीसी उपन्यासकार बाल्ज़ाक ने प्रेरणा ली और उपन्यासों में इतिहास को प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया।

3.5 अंग्रेज़ी उपन्यास में नारी अनुभव और चेतना का उभार

यदि यह समझना हो कि सामाजिक यथार्थ किस भाँति टेढ़े या सीधे रूप में प्रतिच्छवित होता है तो हमें उन्नीसवीं सदी के इंगलैंड की औपन्यासिक कृतियाँ पढ़नी चाहिए। उन्नीसवीं सदी के अंग्रेज़ी के उपन्यास में पाँच महत्वपूर्ण नाम हैं : वाल्टर स्कॉट, जेन आस्टिन, चार्ल्स डिकेंस, जार्ज एलियट और टॉमस हार्डी। इनके साथ एमिली ब्रांटे का नाम भी जोड़ा जा सकता है, यद्यपि उसने केवल एक उपन्यास लिखा। तब संख्या छह होती है। पहले तो हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर जाता है कि इन छह उपन्यासकारों में तीन स्त्रियाँ हैं – जेन आस्टिन, जार्ज एलियट और एमिली ब्रांटे। तीनों को ही अपने जीवन काल में अपने लेखक होने का तथ्य छुपाना पड़ा। उन्होंने अपने उपन्यासों के साथ पुरुष नाम छपवाए। अर्थात् न ये स्त्रियाँ उपन्यासकार के रूप में आगे आना चाहती थीं और न ही स्वयं को लिखने से रोक सकती थीं। इंगलैंड में सामाजिक उभार इस तरह का था कि अनेकानेक स्त्रियाँ सपने देखती थीं, डरती थीं, प्रतिरोध की कायल **थीं** और परिवेश के आंतरिक तर्क को जानना चाहती थीं। उनके सरोकार भी विविध थे। विवाह और प्रेम से शुरू करके वे नारी अस्तित्व में गहरे विद्यमान भय, त्रास, क्रोध, आदि मसलों पर सोचना चाहती थीं। उन्हें यह पाकर भी परेशानी होती थी कि नैतिकता खास तौर पर नारी वर्ग का दमन करती है। धर्म को लेकर भी वे चिंतित थीं, चूँकि अपने विभिन्न रूपों में धर्म उनके जीवन से जुड़े सवालों का संतोषजनक उत्तर देने में सक्षम न था। इन सरोकारों और सवालों के बीच वे निरंतर नारी-व्यक्ति की अस्मिता और पहचान का मसला उठाती थीं और स्पष्ट रूप से पाठक को इस गहरी सामाजिक ज़रूरत से अवगत कराती थीं।

इस अर्थ में आस्टिन, एलियट और ब्रांटे का लेखन ऐतिहासिक दृष्टि से लैस चाहे न हो, लेकिन वह निश्चित तौर पर समयबद्ध, इहलौकिक और साहसपूर्ण लेखन था। उदाहरण के लिए, आस्टिन के लेखन का महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि वह परंपरा को जाने-अनजाने अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाती थी और पारंपरिक पात्रों की जड़बुद्धि पर, उनके अहंकार पर हँसती थी। हमारे समय के प्रसिद्ध आलोचक एडवर्ड सईद ने आस्टिन द्वारा लिखित उपन्यास **मैन्सफील्ड पार्क** में शोषण की वह तस्वीर देखी है जिस पर इंगलैंड के उच्च वर्ग की समृद्धि आधारित थी। एमिली ब्रांटे ने अपनी कृति **वुदरिंग हाइट्स** में भाषिक तथा विचारधारात्मक संरचना से सूत्र ग्रहण करके ईसाइयत पर तीखा और अकल्पनीय प्रहार किया तथा उसके लबादे में छिपी इंगलैंड के उच्च वर्ग की अमानवीयता दिखलाई। जार्ज एलियट ने रचना के

भीतर वस्तु रूप में सक्रिय पात्रों को धर्म और नैतिकता का विरोध करते हुए चित्रित किया। एलियट अपनी तरह की दार्शनिक और चिंतनशील लेखिका थी और कई बार मानव-अस्तित्व में आध्यात्मिकता, नैतिकता और रहस्यधर्मी प्रेरकों का महत्व दिखलाती थी। लेकिन साथ ही उसने अपने उपन्यास **मिडलमार्च** में एक बेहद नीतिपरायण युवती को जो संन्यासिनी बनने का सपना देखती थी विवाह का निर्णय लेते दिखलाया। यही नहीं, उससे आगे विवाह में यह युवती यौन असंतोष की पीड़ा झेलती है और कुछ समय बाद पति के भतीजे के प्रति आकृष्ट होती है। पति की मृत्यु के उपरांत वह पति के भतीजे से विवाह भी करती है। कहने का तात्पर्य यह कि इंगलैंड के उपन्यास लेखन में इस तरह के नारी-अनुभव की उपस्थिति पूरे विश्व उपन्यास में बेजोड़ है, क्योंकि वहाँ नारी पूरे साहस से समाज, नैतिकता और धर्म के विरोध में खड़ी नज़र आती है।

3.6 उपन्यास और सामाजिक गतिमयता का अंतःसंबंध

सांस्कृतिक पटल पर नज़र आने वाले इस पूरे विकास को मात्र जागरण या नवजागरण कहना गलत होगा। असल में, यह लेखन उस आक्रोश का हिस्सा है जो उन्नीसवीं सदी में इंगलैंड में उच्च वर्ग के विरुद्ध निरंतर बढ़ रहा था। इसके मूल में एक तरफ नगरों के उद्योगीकरण से होने वाला सामाजिक विभाजन था, वहीं दूसरी तरफ गाँव के भीतर बढ़ने वाले पूंजीवादी संबंध भी थे। गाँव बहुत लंबे समय से प्रकृति और मनुष्य के सह-अस्तित्व का साक्षी रहा है। प्रकृति उसके जीवन में सदैव उपस्थित रहती है और उसके व्यवहार की लय को अपने ढंग से नियमित-अनुशासित करती है। लेकिन साथ ही मनुष्य अपने लंबे व्यवहार-क्रम के दौरान बढ़ती हुई उत्पादनशीलता के समानांतर परिवर्तन की तरफ भी गतिशील होता है। यह पूरी चीज़ बहुत कठिन और अनेक बिंदुओं पर मारक भी होती है। मसलन, उन्नीसवीं सदी के भीतर दिखने वाला किसानी जीवन का क्रमशः लोप। इसे अंग्रेज़ी उपन्यासकार टॉमस हार्डी ने अपनी कथा में पूरी ईमानदारी और गंभीरता से प्रस्तुत किया। चूँकि मानव इतिहास में, उसके विकास की अनिवार्यता के क्रम में किसान-जीवन समाप्त हो रहा था, इसलिए हार्डी ने वहाँ त्रासदी देखी। इस त्रासदी का संबंध किसान के समाप्त होने से था ही, लेकिन अधिक महत्वपूर्ण अर्थ में नयी शक्तियों के अमानवीकरण में था। पूंजीवाद किसान-जीवन को समाप्त कर रहा था और उसके स्थान पर लेनदेन और नग्न लाभ-लोभ के अजीबो-गरीब रिश्ते कायम कर रहा था। यहाँ हार्डी किसी भी स्तर पर आशा की किरण नहीं देख पाते। हार्डी गाँव के चितेरे हैं-और वहाँ मानवीय गरिमा को मिटते या स्थानापन्न होते पाकर परेशान होते हैं। यह परेशानी उन्हे भावुक बनाती है। साथ ही, इस परेशानी के चलते वे इतिहास से हटते चरित नायकत्व को फिर से याद करते हैं, उसे अपने उपन्यासों में स्थान देते हैं और इस तरह उक्त निराशा को नया आयाम प्रदान करते हैं। इस अर्थ में हार्डी की निराशा महान त्रासदी में बदल जाती है।

3.7 सारांश

इस इकाई में हमने उन्नीसवीं सदी के रूसी, जर्मन और अंग्रेज़ी उपन्यास लेखन के महत्व का जायजा लिया है। इन तीनों उपन्यास-धाराओं में हमें यूरोपीय जीवन के अंतर्विरोध देखने को मिलते हैं। वहाँ उपन्यास हमें इस सच से अवगत कराता है कि पूंजीवाद अलग-अलग तरीकों से बढ़ रहा है, और साथ ही अपनी प्रक्रिया में नयी सामाजिक ताकतों को भी उत्पन्न कर रहा है। उपन्यास के माध्यम से यूरोप की यह दुनिया बेहद बीहड़ और विकट नज़र आती है। इसमें सर्वाधिक सार्थक बात यह है कि वैज्ञानिक तथा मानव-केंद्रित चिंतन का प्रसार होता है और धर्म, आध्यात्मिक सरोकार और जड़ परंपरागत मूल्यों को गहरी चुनौती मिलती है। साथ ही इससे समाज के भीतर नये वर्गों के आगमन का संकेत मिलता है जो कालांतर में पूंजीवाद को हटाने और उसके स्थान पर समानताधर्मी राजनीतिक सरंचनाएँ कायम करने में

सक्षम होंगे। अगली इकाई में एक ऐसे औपन्यासिक उभार की बात करेंगे जो यूरोप का होने के बावजूद कई बिंदुओं पर उससे तात्विक रूप में अलग था और जिसे एक नये ढंग की कथा भी कहा जा सकता है। यह उभार अमरीका में देखने को मिला। उपर्युक्त अंतर्विरोधों की उपस्थिति और अमरीकी कथा के उभार की पृष्ठभूमि में हम बीसवीं सदी के उपन्यास को रखेंगे ताकि उसका एक परिप्रेक्ष्य विकसित किया जा सके। कुछ परिचय तीसरी दुनिया के उपन्यासों का भी देंगे।

3.8 शब्दावली

अराजकतावाद : आज हम इस शब्द में नकारात्मक ध्वनि पाते हैं। उन्नीसवीं सदी में यह शब्द मुक्ति की कामना से जुड़ा था। जिन लोगों ने उस समय दमनकारी सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार किये वे व्यापक रूप से अराजकतावादी कहलाते थे।

त्रासदी : त्रासदी को प्रायः नाटक के संदर्भ में समझा जाता है। लेकिन असल में त्रासदी का संबंध किसी विधा से न होकर उस चेतना और विचारधारा से होता है जिसे लेखक अपनी रचना में व्यक्त करता है। इस अर्थ में त्रासदी अपने समाज पर तीखी टिप्पणी बनती है।

अभ्यास

1. रूसी उपन्यास के संदर्भ में दोस्तोव्यस्की और तोल्सतोय की विशेषताएँ बतलाते हुए उनकी भिन्न उपन्यास-दृष्टि पर टिप्पणी कीजिए।
2. अंग्रेज़ी उपन्यास में नारी चेतना का उभार क्यों महत्वपूर्ण है? इसका उन्नीसवीं सदी के यथार्थ से क्या संबंध है? स्पष्ट कीजिए।

इकाई 4 बीसवीं सदी के उपन्यास

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 अमरीकी उपन्यास : पृष्ठभूमि
4.3 बीसवीं सदी का उपन्यास साहित्य
4.4 प्रथम विश्व युद्ध और उपन्यास में बदलाव
4.5 उद्योगवाद का आलोचक उपन्यासकार डी.एच. लारेंस
4.6 उपन्यास में मनोवैज्ञानिक आयाम
4.7 साम्राज्यवाद के सीधे प्रभाव से उत्पन्न उपन्यास
4.8 तीसरी दुनिया के उपन्यास
4.9 सारांश
खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

एम एच डी-13 (उपन्यास : स्वरूप और विकास) के तीसरे खंड की यह चौथी और अंतिम इकाई है। इस इकाई में आप बीसवीं सदी के उपन्यासों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे। बीसवीं सदी में प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में लिखे गए उपन्यासों पर इस इकाई में विचार किया गया है। बीसवीं सदी के उपन्यासों में यथार्थवाद के साथ-साथ आधुनिकतावाद का भी प्रभाव उपन्यासकारों पर दिखाई देता है। इकाई में इस पर भी विचार किया गया है। इस इकाई में तीसरी दुनिया के उपन्यासों का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस इकाई का उद्देश्य आपको उन्नीसवीं सदी के अत्यंत शक्तिशाली अमरीकी उपन्यास का परिचय देकर उसका सूत्र बीसवीं सदी के विश्व उपन्यास से जोड़ना है। इसमें आपको उपन्यास रूप के भीतर बढ़ते विघटन का स्पष्ट अनुमान होगा। यह विघटन बहुत रोचक है और बतलाता है कि इसके कारक समाज की संरचनाओं में विद्यमान हैं।

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में मैंने उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय उपन्यास की किंचित विस्तार से चर्चा करते हुए कहा है कि वहाँ हमें सार्थक कथा का बहुत ऊँचा प्रतिमान देखने को मिलता है। यूरोपीय उपन्यास ने आलोचना को यथार्थवाद जैसी अवधारणा विकसित करने की क्षमता दी जिससे हम साहित्य की प्रासंगिकता और मूल्यवत्ता को ठीक तरह पहचान सकते हैं। आज इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में भी हमारे पास साहित्य-संबंधी समझ और आकलन के लिए यथार्थवाद से बेहतर अवधारणा नहीं है क्योंकि असल में लेखक अंततः अपने जीवन के यथार्थ में विद्यमान किन्हीं चीज़ों के विरोध या समर्थन से जुड़कर ही मानव व्यवहार की गुणवत्ता अर्जित करता है। इस इकाई में हम उपन्यास के भीतर यथार्थवाद के नये रूपों से परिचय पाएँगे और यह देखेंगे कि उक्त रूप किस सीमा तक उन्नीसवीं सदी के यथार्थवाद से कम या अधिक महत्वपूर्ण हैं। पहले हम एक नजर उन्नीसवीं सदी के अमरीकी उपन्यास पर डालें जो एक साथ यूरोपीय और गैर यूरोपीय था। अर्थात् अमरीका में नये बसने वाले और वहाँ प्रभुत्व कायम करने वाले लोग तो यूरोपीय देशों से आए थे लेकिन एक नयी ज़मीन, एक नयी सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि में काम करने के क्रम ने उन्हें बिल्कुल अलग किस्म का अनुभव दिया। इस इकाई में तीसरी दुनिया के उपन्यासों पर भी थोड़ा-सा प्रकाश डाला गया है। दक्षिण अमरीका, अफ्रीका और एशिया के देश जिन्होंने औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध जबर्दस्त संघर्ष किया था, उपन्यास लेखन में इनका योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। एशिया

के कई देशों में वहाँ की विकसित भाषाओं में जो उपन्यास साहित्य लिखा गया है, उसका अध्ययन अलग पाठ्यक्रम में किए जाने की ज़रूरत है। अफ्रीका और लैटिन अमरीका के देशों में लिखे गए उपन्यासो की भाषा स्पेनिश, अंग्रेज़ी, फ्रेंच आदि रही हैं जो औपनिवेशिक भाषाएँ थीं। तीसरी दुनिया के देशों के संदर्भ में भाषा के इस सवाल पर भी इकाई में विचार किया गया है।

4.2 अमरीकी उपन्यास : पृष्ठभूमि

भाषा की नजर से अमरीकी उपन्यास को अंग्रेजी उपन्यास भी कहा जा सकता है, लेकिन विशेषकर उन्नीसवीं सदी में इंगलैंड तथा अमरीका के उपन्यासों में उतना ही अंतर है जितना यूरोप के देशों अथवा समाजों के साहित्य में मिलता है। इसका कारण यह कि उन्नीसवीं सदी का अमरीकी अनुभव बिल्कुल अलग ढंग का था। इस अनुभव का मूल सूत्र अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में होने वाली अमरीकी स्वतंत्रता की लड़ाई है। अमरीकी समाज का उत्थान, उसकी खासियत तथा पहचान ठीक ढंग से निर्मित भी तभी हुई जब वहाँ के लोगों ने इंगलैंड तथा बाकी यूरोपीय देशों के आर्थिक-सामाजिक बंधन से मुक्ति पाई। उन्नीसवीं सदी शुरू होते-होते अमरीकी आजादी को 24 वर्ष हो चुके थे, और वहाँ का नेतृत्व परिवर्तन के ऐसे मोड़ पर था जहाँ समस्याएँ ही समस्याएँ थीं। लेकिन स्वतंत्रता-युद्ध के बीच विकसित हुई क्रांतिधर्मी चेतना ने ऐसे मानस का भी निर्माण कर लिया था जो अत्यधिक तर्कशील, इहलौकिक और मनुष्य-केंद्रित थी। उन्नीसवीं सदी के अमरीकी मनुष्य को लगता था कि समस्याएँ चाहे जितनी बड़ी हों, उनसे पार पाना संभव भी है और ज़रूरी भी।

इस संदर्भ में व्यक्ति-केंद्रित धार्मिक नियमावली को ही लें। यह उन्नीसवीं सदी में बेहद रूढ़ हो चली थी। मानव-व्यवहार को ईसाई नैतिकता, पाप-पुण्य, दंड विधान, शुद्धतावादी आचरण और आत्मदमन के आदर्श पर परखा जाता था। इसमें व्यक्ति-ऊर्जा, सहजता, सरलता और स्वाभाविकता के लिए कोई स्थान न था। उन्नीसवीं सदी के भीतर इस व्यवहार-नियम का विरोध रोमन कैथेलिक सामाजिकता के बल पर होता था। जाहिर है कि दोनों ही गलत थे।

अमरीकी कथा ने इन दोनों व्यवहार-नियमों को परखने का बीड़ा उठाया और समाज की जटिल तस्वीर पेश की। इस जटिल तस्वीर का प्रभावी चित्रण जिन दो उपन्यासकारों में मिलता है वे हैं हाथर्न और मार्क ट्वेन। हाथर्न की दृष्टि समस्यामूलक और त्रासदिक है, लेकिन त्रासदी में, उसकी द्वंद्वात्मकता और जटिलता में वे समाज और मानव मन की पीड़ा का, मनुष्य की ऊँचाइयों और कमजोरियों का गहन चित्रण प्रस्तुत करते हैं। हाथर्न के प्रसिद्ध उपन्यास रक्तवर्णी अक्षर में विवाहित स्त्री और प्रेमी के संबंध का वर्णन एक साथ व्यक्ति-केंद्रित आकर्षण, समाजगत संवेदनशून्यता, धार्मिक रूढ़िवादिता और प्रकृतिगत सरलता के बीच विद्यमान खींचतान का प्रतीक बन जाता है। रूढ़िवादिता और रोमांटिक विचार का टकराव भी इस उपन्यास में तीखी व्याख्या का विषय बनकर उभरता है। इसमें मनुष्यता अनुभव के रहस्यात्मक आयाम छूकर अनोखी, वरेण्य और प्रेरणादायी हो उठती है। हाथर्न इस त्रासदी को जिस तर्क के आधार पर विकसित करते हैं वह मनुष्यधर्मी और सामाजिक है।

यह कल्पना करना मुश्किल है कि उक्त समाज की विकटता और कठिनता के सामने कोई विनोदप्रिय भी हो सकता है। लेकिन मार्क ट्वेन में यही चीज उपस्थित है। कुछ अर्थों में मार्क ट्वेन का मानव-समर्थक नायक अमानवीय संस्थाओं और विचार-प्रणालियों के सक्रिय विरोध में खड़ा होकर हाथर्न की त्रासदिकता का रूपांतरण कर देता है और उसे करुणा में बदलता है। हम ट्वेन को जितना पढ़ते हैं उतना ही चकित और प्रसन्न होते हैं और साथ ही जानते हैं कि ट्वेन निरंतर दास-प्रथा को, रंग भेद और व्यापक सामाजिक असमानता को अपनी आलोचना का लक्ष्य बनाते हैं। ट्वेन के जितने प्रशंसक थे, उतने ही विरोधी भी थे चूँकि ट्वेन

को दमन, वैचारिक रूढ़ि और परंपराशील व्यवहार से नफरत थी। ये चीजें उनके उपन्यासों में और विशेषकर **हकलबरी फ़िन** में पूरे प्रभाव के साथ मौजूद हैं।

तीसरे महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं हरमन मैलविल। उनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास **मोबी डिक** है। इसके अतिरिक्त **बिली बड** का भी कथा आलोचना में अनेक बार उदाहरण दिया जाता है। मैलविल अपने समकालीनों के निस्बत किंचित अधिक जागरूक थे और वे समाज के भीतर होने वाले परिवर्तन को बार-बार अपनी रचना का विषय बनाते थे। समाज और इतिहास के भीतर विकसित मिथकों को भी मैलविल खासा महत्व देते थे और परिवेश की वास्तविकता में उनका सुंदर गुंफन करते थे। इस कारण उनकी कृतियों में एक जीवंत प्रवाह की उपस्थिति बार-बार महसूस होती है। मैलविल की खासियत यह थी कि वे सामान्य लोगों की जीवन पद्धति में महामानव की कल्पना करते थे और इस तरह अमरीकी मानव की क्रांतिकारिता की ओर निरंतर ध्यान खींचते थे। दूसरी ओर, मैलविल अपने स्वर की गंभीरता को हास्य की मदद से खंडित भी करते थे। यह हास्य अमरीकी समाज की विकट स्थिति से पैदा होने वाला हास्य था। इस हास्य के जरिये मैलिवल मनुष्यता की तह तक पहुँचते थे जहाँ सरलता, बेबाकी और ईमानदारी का वास होता है।

4.3 बीसवीं सदी का उपन्यास साहित्य

उन्नीसवीं सदी का काल यूरोपीय-अमरीकी कथा का स्वर्णिम काल है। इस काल में उपन्यास ने प्रभाव और प्रेरणा की नयी ऊंचाइयों को छुआ और उस सच्चाई को प्रामाणिक ढंग से दर्ज किया जो उन्नीसवीं सदी के भीतर होने वाली क्रांतिकारी उथल-पुथल से पैदा हुई थी। उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय उपन्यास को सच्चे अर्थों में सामाजिक और राष्ट्रीय अनुभव का इतिहास कहा जा सकता है। इसमें उपस्थित जीवन की विविधता बाकी साहित्य रूपों के लिए चुनौती का काम करती है। बीसवीं सदी के प्रसिद्ध मार्क्सवाद आलोचक रैल्फ फॉक्स ने अपनी पुस्तक 'उपन्यास और लोक जीवन' में ठीक ही उपन्यास को महाकाव्य के समकक्ष रखते हुए उसे आधुनिक युग का महाकाव्य कहा है।

जिस रूप में उन्नीसवीं सदी का यूरोपीय उपन्यास उभरा उससे विश्व के बाकी महाद्वीपों में भी लेखन के भीतर नये तत्व और प्रेरणा बिंदु विकसित होने लगे। यह सीधे-सीधे एक महाद्वीप के लेखन का बाकी महाद्वीपों में होने वाला विस्तार न था, बल्कि यूरोप द्वारा शोषित और त्रस्त बाकी दुनिया के समाजों में पैदा होने वाली ऊर्जा और संघर्षधर्मिता का हिस्सा था। साथ ही, स्वयं यूरोप में क्रांतिकारी उभारों की प्रक्रिया समस्याग्रस्त और धीमी हो गई। इससे किस भाँति बीसवीं सदी का उपन्यास लेखन प्रभावित हुआ, यहाँ यह देखना ज़रूरी है।

चूँकि इस पूरे खंड में हमने उपन्यास को सामाजिक विकास के विशेष चरण या चरणों के साथ जोड़कर देखा है, इसलिए बीसवीं सदी में भी इस विकास को समझने तथा उसके और उपन्यास के बीच स्थापित संबंध को समझने की कोशिश करेंगे। इस कोण से सोचने पर हम पाएँगे कि बीसवीं सदी में विश्व पूंजीवाद के संबंध बहुत गहरे स्तर पर संकटग्रस्त हुए। संकट की इस प्रक्रिया के दौरान सामान्य जनता निरतर आहत होती गयी चूंकि अब उसे अपने परिवेश में कुछ भी सकारात्मक नहीं मिल रहा था।

बीसवीं सदी के सबसे बड़े विषय थे प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध। हम प्रायः युद्धों को विभीषिका नहीं मानते, बल्कि आदर्शों की दिशा में प्रवृत्त सामूहिक क्रिया मानते हैं। चाहे मध्ययुगीय युद्ध हों चाहे बाद के, उनमें मनुष्यता को कुछ न कुछ सही और प्रेरक नजर आया है। परंपरागत अर्थ में युद्धों के माध्यम से अनेक समाज, कबीले, क्षेत्र या देश अपना भाग्य आजमाते थे और अपने सपनों को कार्यरूप देते थे। मसलन, तीसरी दुनिया के अनेक देशों ने आजादी की लड़ाई लड़ी और इस दौरान अपने भीतर कितने ही गुणों **और मूल्यों को**

विकसित होते देखा। आज भी हमारे देश के लोग स्वतंत्रता की लड़ाई को गौरव-भावना से याद करते हैं और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में हुए संघर्ष से बहुत कुछ सीखते हैं। वहीं संघर्ष हमें यह भी स्मरण कराता है कि धर्म, सम्प्रदाय, जाति तथा कर्म के आधार पर समाज का विभाजन मनुष्य तथा मनुष्य के बीच दरार पैदा करता है और देश को कमजोर करता है। सोचिये, मेरा संकेत किस तरफ है। मैं पहले का सवाल ही पूछ रहा हूँ कि जब इतिहास के भीतर अधिकतर युद्ध किसी न किस आदर्श या मूल्य के इर्दगिर्द लड़े गए तो प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध को विभाभिका, त्रासदी, विध्वंस और इस तरह अन्य विशेषणों से क्यों जोड़ा गया।

इस सवाल का जवाब खोजने के दौरान हम पाते हैं कि बीसवीं सदी के दोनों विश्व युद्ध साम्राज्यवादी ताकतों के बीच व्यावसायिक हितों को दृष्टि में रखकर लड़े गए थे, अर्थात् उनमें किसी आदर्श का नहीं, बल्कि मुनाफे का तर्क काम कर रहा था।

4.4 प्रथम विश्व युद्ध और उपन्यास में बदलाव

शुरू में हम पहले विश्व युद्ध पर विचार करें। इसे तत्कालीन पूंजीवादी विसंगतियों का परिणाम कहा जा सकता है। यूरोप के व्यापक संकट का कारण विद्यमान सामाजिक संबंधों द्वारा उत्पन्न हुई वह बाधा थी जो मनुष्य की उत्पादनशीलता के मार्ग में खड़ी हो गई थी। लोग काम करना चाहते थे लेकिन पूंजीपति वर्ग को मुनाफे की दृष्टि से मिलें बंद करना उपयोगी लग रहा था। कारण कि यदि मिलें चलती रहतीं तो उत्पादन बढ़ता और उत्पादन बढ़ने से बाजार-भावों में गिरवट आती। दूसरी तरफ, उपनिवेशों में शोषण के चलते निर्धनता इस कदर बढ़ रही थी कि वहाँ की जनता में परेशानी और असंतोष पैदा हो रहा था। विभिन्न यूरोपीय पूंजीवादी देश इन उपनिवेशों को कच्चा माल देने वाले और किसी सीमा तक उत्पादित चीज़ों के बिकने का केंद्र मानते थे। ये पूंजीवादी देश एक दूसरे के उपनिवेशों को छीनने की फिराक में थे। इस तरह प्रथम विश्व युद्ध पूंजीवादी देशों के बीच होने वाली आर्थिक प्रतिद्वंद्विता के कारण घटित हुआ था।

यह नहीं कि उन समाजों के पास इस संकट का जवाब नहीं था। मसलन, जवाब यह था कि उक्त समाजों की बहुसंख्यक जनता मुनाफे के तर्क से मुक्ति पाकर एक नये ढंग की व्यवस्था अपना सकती थी जिसमें सामाजिक आवश्यकताओं की आपूर्ति पर बल हो, केवल मुनाफे पर नहीं। लेकिन ऐसी व्यवस्था पूंजीवाद से बाहर संभव थी, उसके अंदर नहीं। इस कारण पूंजीवादी ताकतें सामाजिक आवश्यकता के सिद्धांत पर संदेह करने लगी थीं और उसके विरोध में खड़े होने को तैयार थीं।

ज़ाहिर है कि यह सच उस यथार्थवाद की अगली कड़ी था जिसे उन्नीसवीं सदी के उपन्यास ने समझा था और जिसने उन्नीसवीं सदी के उपन्यास को इतना अर्थवान और महत्वपूर्ण बनाया था। उन्नीसवीं सदी के उपन्यास का केंद्र यूरोप का सामान्य जन है और बीसवीं सदी तक आते-आते, खास तौर पर बीसवीं सदी के दूसरे दशक में, इस सामान्य जनता की सामाजिक भूमिका स्पष्ट होने लगी थी। इस जनता को पूंजीवाद के विरोध में खड़े होकर बाजारों के वितरण की आपाधापी का विरोध करना था और आपाधापी के मूल कारण पूंजीवाद को समाज से हटाना था। आप गौर करेंगे कि बीसवीं सदी का उपन्यास इस सच्चाई के प्रति शंकित है, लेकिन लगातार इससे चिंतित रहता है। अर्थात वह अपने मूल यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य से दूर हो रहा है।

हमें इस व्यापक पृष्ठभूमि में बीसवीं सदी के उपन्यास को रखना है तभी हम उसके नये रूप को समझ सकते हैं।

बीसवीं सदी के शुरूआती उपन्यास लेखन में हम मनुष्य की बिल्कुल अलग ही तस्वीर पाते हैं। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी उपन्यासकार जोज़फ कोनरेड को लें। उनकी कृतियों के प्रधान पात्र संदेहों से घिरे हैं। वे समाज के भीतर अपनी स्थिति के बारे में सोचते हैं। उन्हें लगता है कि जो परिवेश हमें दिख रहा है वह अधूरा सच है। उन्हें यह भी लगता है कि दूसरे लोगों की स्थिति बिल्कुल विपरीत है। कोनरेड की राय में यदि ऐसा है तो संभव है कि अपने से भिन्न नज़रिया सही हो। मैं इसे व्यक्ति-चरित्र के भीतर अनिश्चय से पैदा हुई फांक कहता हूँ क्योंकि एक ही पात्र अपनी समझ को सही भी मानता है और गलत भी। सवाल उठता है कि ऐसा क्यों होता है? कहीं इसका कारण यह तो नहीं कि देशों के बीच धन को लेकर, रंग, जाति, कौम को लेकर या दमनकारी और दमित के बीच संबंध को लेकर ऐसा विभाजन पैदा हो गया है कि एक ही सच्चाई दो व्यक्तियों को अलग नज़र आती है।

कोनरेड इस विभाजन की राजनीति पर सोचते हैं और चाहते हैं कि क्या ही अच्छा हो कि मनुष्य-मनुष्य के बीच का भेद मिट जाए। साथ ही उन्हे विरोध और संघर्ष की अवधारणाओं पर भी पूरा विश्वास नहीं है। स्वयं कोनरेड पोलेंड में पैदा हुए थे और युवावस्था में एक शरणार्थी के तौर पर इंगलैंड आए थे। इंगलैंड में न वे पोलिश रह गए थे और न ही इंगलिश बन पाए थे। पीछे छूटे पोलेंड की संघर्षधर्मी राजनीति से कोनरेड प्रसन्न न थे, लेकिन इंगलैंड के शासक वर्ग की परंपरागत विचारधारा भी उन्हें अच्छी न लगती थी। बीसवीं सदी के पहले दशक में इंगलैंड द्वारा अपने उपनिवेशों का शोषण भी उन्हें अनुचित प्रतीत होता था। सोचिये, कितने सवाल थे जिनसे कोनरेड निरंतर घिरे रहते थे। इन संदेहों और संशयों की तीव्र अंतर्धारा उनके **अंधकार का हृदय**, **प्रश्चिमी नजर के नीचे**, **खुफिया एजेंट और लार्ड जिम** शीर्षक उपन्यासों में उपस्थित रहती है। यह अंतर्धारा उन नयी प्रवृत्तियों की विद्यमानता के कारण पैदा हुई थी जिन्होंने आगे चलकर प्रथम विश्व युद्ध जैसे भयंकर घटना-क्रम को जन्म दिया। कारण, कि इन प्रवृत्तियों के केंद्र में उपनिवेशवाद था जिसका तत्कालीन यूरोपीय समाजों के पास कोई उत्तर न था। इन प्रवृत्तियों के कारण बीसवीं सदी का यूरोपीय व्यक्ति स्वयं भीतर से टूटने लगा क्योंकि उसके पास वह यथार्थवादी दृष्टिकोण न बचा था जो उन्हे संपूर्णता में देखकर उनका समाधान बतलाता।

कोनरेड एक तरह से आधुनिक यूरोपीय कथा के जनक हैं और इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि वे समस्याओं के राजनीतिक समाधान की ओर भी संकेत करते और साथ ही उससे बचते भी हैं। यह कोनरेड की लेखकीय ईमानदारी का सूचक है कि वह अपनी रचना में इस विपरीत चिंतन कर्म को प्रतिच्छवित करते हैं और स्वयं एक सांस्कृतिक-वैचारिक अजूबा बन जाते हैं। प्रसिद्ध अफ्रीकी लेखक चिनुआ अचेबे ने कोनरेड को नस्लवादी करार देते हुए उनकी तीखी आलोचना की है जो आज के संदर्भ में काफी सही है। लेकिन हमें यह न भूलना चाहिए कि कोनरेड इस नस्लवाद को जिस तरह अपनी रचना में झलकाते हैं उसमें उनकी लेखकीय स्वीकृति या सहमति शामिल नहीं है। यदि यह नस्लवाद लगता है तो कोनरेड इससे अवगत नहीं हैं क्योंकि वह इस सवाल से पूरी शिद्दत से जूझते हैं। यह बीसवीं सदी के बाद के उपन्यास में नज़र आया कि लेखकों ने देशों तथा समाजों के बीच विद्यमान विभाजन को पहचानना भी बंद कर दिया और उपन्यास को पूरी तरह सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ से काट दिया।

मुझे यह कहने में कोई कठिनाई नहीं है कि बीसवीं सदी के शुरू का आधुनिक यूरोपीय उपन्यास धीरे-धीरे आधुनिकतावादी होता गया। यहाँ जानबूझकर 'आधुनिक ' और आधुनिकतावादी ' उपन्यास के बीच के अंतर पर बल दिया जा रहा है। आधुनिक वह है जो वर्तमान संदर्भ की सच्चाई को पहचानता है और उसे स्वीकार करता है। इसके विपरीत आधुनिकतावादी वह है जो मात्र वर्तमान को सच कहता है और वर्तमानता को सीमित परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करके केवल उसी का महत्व रेखांकित करता है। आधुनिकतावाद अतीत के साथ कोई संबंध स्वीकार नहीं करता, सिवा यह कहने के कि वर्तमान से पहले का

सब कुछ अप्रासंगिक, अनुपस्थित और गलत है। यह आधुनिकतावादी दर्शन धीरे-धीरे बीसवीं सदी के उपन्यास को अपनी गिरफ्त में लेता गया। कुछ उपन्यासकारों की मदद से आधुनिकतावादी कथा का रूप हमें समझ आता है। अब हम उस पर विचार करें।

4.5 उद्योगवाद का आलोचक उपन्यासकार डी एच लारेंस

कोनरेड की खूबी यह थी कि निजी राजनीतिक पूर्वाग्रहों की छाया के बावजूद उनके उपन्यासों में बदलते सामाजिक यथार्थ की प्रामाणिक तस्वीर उभरी। इस सामाजिक बदलाव को विश्व स्तर पर घटित होते देखकर कोनरेड काफी असंतुष्ट एवं खिन्न थे। कला के स्तर पर भी कोनरेड इतने संवेदनशील थे कि पात्रों की आंतरिक टूटन को वे राजनीतिक आयाम देते थे। यह दूसरी बात है कि अवचेतन के धरातल पर वे सफेद चमड़ी वाले व्यक्ति के नज़र को अहमियत देते थे और बाकी को अविकसित, असंस्कृत, आदि मानते थे।

डी एच लारेंस का लेखकीय चरित्र भिन्न प्रकार का है। उनका आग्रह है कि मनुष्य को सभ्यता और इतिहास ने विकृत किया है। लारेंस के मुताबिक मनुष्य की समस्याओं का मूल उसकी तर्कशीलता है। तर्कशीलता ने ही मनुष्य को उद्योग एवं उत्पादन के लिए प्रेरित किया और तर्कशीलता ने उसे नकारात्मक अर्थ में आधुनिक बनाया। यदि मनुष्य अपनी आधारभूत शक्ति को समझता, अपने भीतर पैठकर देखता तो उसे मालूम होता कि सही अर्थवत्ता का स्रोत वह स्वयं है। इस तरह मनुष्य का शत्रु उद्योग, तर्कशीलता और इतिहास-दृष्टि है, ये ही मनुष्य को आधुनिकता के बियाबान में ढकेलते हैं।

यहाँ मैं लारेंस के नजरिये में व्याप्त उद्योग और मशीन की तथाकथित नकारात्मक प्रकृति को रेखांकित करना चाहता हूँ। दिलचस्प चीज़ यह है कि लारेंस उत्पादन को ही गलत मानते हैं और भेद नहीं करते कि वह उत्पादन पूंजीवादी है या समाजवादी। अपने चर्चित उपन्यास **'बेटे और प्रेमी'** में वे उद्योग को मशीन से, कोयले और खनिज से, क्षुद्र और सुनियोजित व्यवहार से जोड़ते हैं। बेटे के पात्र में लारेंस को आधुनिक मनुष्य का त्रास नजर आता है। एक ओर मां का खालीपन है और दूसरी ओर प्रेमिका/प्रेमिकाओं और युवतियों के अपने दृष्टिकोण। बेटा इनके बीच झूलता है और आधुनिक मनुष्य की टूटन की ओर बढ़ता है। एक अन्य स्तर पर यही टूटन लारेंस के **इंद्रधनुष्य, लेड़ी चटर्ली का प्रेमी** सीखे उपन्यास में भी नजर आती है।

हमें यह सोचना है कि लारेंस में उद्योग, विवेकधर्मिता और प्रगति के लिए संदेह क्यों पैदा हुआ। मेरी राय में इसका कारण प्रथम विश्व युद्ध के तर्क में फंसा पूंजीवाद था। अचानक स्वयं पूंजीवाद मनुष्य-ज्ञान और प्रगति के विरोध में खड़ा हो गया था, क्योंकि वहीं पूंजीवाद को अपना नया शत्रु समाजवाद नजर आता था। लारेंस पूंजीवाद का विरोध अवश्य करते हैं लेकिन पूंजीवाद के रूप में नहीं, बल्कि उद्योग के रूप में। यह निश्चय ही मनुष्य-विरोधी तर्क है क्योंकि उद्योग, श्रम और उत्पादन के बल पर मनुष्य वर्ग-विभाजन, असामनता और दासता से मुक्ति पा सकते हैं। लारेंस की नजर में उत्पादन ही गलत है चूंकि वह मनुष्य को त्रेक बनाता है।

आप पूछ सकते हैं कि लारेंस का लेखन जिसमें आधुनिक उद्योग और उत्पदन का विरोध किया जा रहा है आधुनिकतावादी क्यों कर है। इसका जवाब यह है कि आधुनिकता और आधुनिकतावाद दो अलग चीज़ें हैं। लारेंस आधुनिकता-विरोधी हैं लेकिन बीसवीं सदी में, यानी आधुनिक काल में वे ऐसे नये चिंतन को तरजीह देते हैं जो उन्नीसवीं सदी के चिंतन की तर्कशीलता को नकार कर समकालीन स्थिति की नयी इतिहासेतर परिभाषा गढ़ते हैं। अर्थात् आधुनिकतावाद उन्नीसवीं सदी के इतिहास-समाज चिंतन के विकल्प के तौर पर मात्र मनुष्यधर्मी चिंतन की भांति उभरा जिसमें वर्ग-विभाजन के लिए कोई स्थान न था। अब आप समझ सकते हैं कि लारेंस क्यों बार-बार गैरसमाजवादी अथवा समाजवाद-विरोधी तर्क प्रस्तुत

करते हैं और कहते हैं मनुष्य को इतिहास से बाहर प्रकृति में जाना होगा। निर्धनता और असमानता से जूझ रहे करोड़ों लोगों को यह दर्शन समझ न आए तो यह स्वाभाविक ही है। बीसवीं सदी के उपन्यास में आधुनिकतावाद का यही रूप नजर आता है।

4.6 उपन्यास में मनोवैज्ञानिक आयाम

बीसवीं सदी के आधुनिकतावादी उपन्यास का एक अन्य आयाम जेम्स ज्वायस और वर्जीनिया वूल्फ की रचनाओं में देखने को मिलता है। यह आयाम मनोवैज्ञानिकता का है। इसके अनुसार यथार्थ मनुष्य के बाहर उस तरह नहीं रहता जिस तरह अंदर रहता है। अंदर का यथार्थ न केवल बाहर के यथार्थ की तस्वीर है बल्कि उन भावनाओं और प्रतिक्रियाओं का भी परिचायक है जो व्यक्ति की अपनी और इस भाँति गहरे अर्थ में मानवीय होती है। यह आयाम उस समय के फ्रांसीसी उपन्यास में, विशेषकर मार्सेल प्रूस्त की कृतियों में भी देखा गया। जेम्स ज्वायस ने अपने उपन्यासों के लिए एक ऐसा पात्र चुना जो बाहर की स्थितियों को मात्र देखता था। ज्वायस ने इस पात्र की आंतरिक प्रतिक्रियाओं और उसके आत्मालापों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए **यूलिसीज़** नामक बृहद उपन्यास लिखा। यह **यूलीसीज़** ग्रीक नायक न होकर बीसवीं सदी के प्रारंभ का यूरोपीय व्यक्ति है और वह जितना अपने आसपास देखता है उससे बहुत अधिक मात्रा में सोचता है। ज्वायस ने इस पात्र के आंतरिक मनोगत कार्यकलापों को एक दिन की अवधि में संकलित करने की दृष्टि से यह उपन्यास लिखा। इस उपन्यास में भौगोलिक दूरियों को कम करके आंकते हुए कालगत दूरियों का परिमाण दिया गया है। मसलन, इस उपन्यास का नायक वर्तमान पर सोचते हुए अचानक अतीत मे चला जाता है और उन लोगों के बारे में सोचने लगता है जिनसे वह कभी पहले मिला था। ज्वायस के मुताबिक व्यक्ति के मानसिक गड्ड-मड्ड में एक तरतीब देखी जा सकती है जो सार्थकता की, नैतिकता की, सामाजिकता और आधुनिकता के साथ-साथ ही मनुष्यत्व की भी तरतीब होती है। यही कार्य किंचित कम विस्तार में लेकिन अधिक गहन और कवितात्मक ढंग से वर्जीनिया वूल्फ ने भी अपने उपन्यासों में किया। प्रश्न यह है कि लारेंस अथवा ज्वायस और वूल्फ में हमें प्रथम विश्व युद्ध के कारकों और उनके पीछे की तत्कालीन राजनीति और विचारधारा की छाया दिखाई देती है। इसके जवाब में यह कहा जा सकता है कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद यूरोपीय देशों की प्रभावी विचारधारा में परिवर्तन हुआ - वह उन्नीसवीं सदी के विवेकवान सोच से अलग तर्कविहीन रहस्यधर्मी और व्यक्ति-केंद्रित होती गई। व्यक्ति का मन और उसमें झलकने वाला परिवेश अजूबा बन गया और दूसरी तरफ लेखकों ने सचेत ढंग से वर्तमान को अतीत से इस तरह जोड़ना शुरू किया मानो उनके बीच कोई संबंध या तालमेल न होता हो।

4.7 साम्राज्यवाद के सीधे प्रभाव से उत्पन्न उपन्यास

मैंने ऊपर कोनरेड के लेखन पर चर्चा की और उस संदर्भ में कहा है कि नये काल में औपन्यासिक पात्रों के भीतर मानसिक विभाजन होने लगा। इसका कारण साम्राज्यवाद के अंतर्गत पैदा होने वाला सच्चाई का दुहरा रूप था। प्रश्न था भी यही। वह चिंतन जो विकसित पश्चिमी समाज में ज्ञान, विवेक, स्वतंत्रता, समानता और न्याय पर बल देता था, क्योंकर अन्य देश में विपरीत व्यवहार नियमों पर बल देता था? इस सवाल को कोनरेड के ही काल में रुडयार्ड किपलिंग ने उठाया और यूरोपीय यथार्थ के समकक्ष पूर्वी देशों का यथार्थ रखा। किपलिंग की नजर में यूरोपीय दुनिया का आधारभूत सत्य सामाजिक विकास और बेहतर चिंतन: था, जबकि पूर्वी देशों के लोगों के लिए परंपराओं की जकड़ में फंसे होने के कारण यरोपीय पद्धति कोअ अपनाना असंभव था। इस दृष्टि नें किपलिंग के लेखन पर नकारात्मक प्रभाव डाला जहाँ पूर्वी समाजों की अजीबोगरीब तस्वीर मिलती है। मसलन, किपलिंग अपने प्रसिद्ध उपन्यास **किम** में भारतीय पात्रों की मानसिकता को समझने में असफल है। साथ ही

यह रोचक है कि वे इस असफलता को उच्चता का तर्क देकर स्वयं को विकृति के आरोप में बरी भी करते हैं। इस अर्थ में इसे सही कहा जाएगा कि किपलिंग साम्राज्यवादी चेतना के लेखक हैं।

साम्राज्यवादी समझ से जुड़ा यह विषय ई एम फोर्स्टर के **ए पैसेज टु इंडिया** शीर्षक उपन्यास में चित्रित हुआ है। इस उपन्यास में लेखक ने अपनी प्राथमिकता को भूलकर साम्राज्यवादी नौकरशाही और औपन्यासिक समाज को आमने-सामने रखा है और यह स्थापना पेश की है कि जब तक साम्राज्यवादी ताकत और उपनिवेशों की जनता का असमान संबंध समाप्त नहीं हो जाता तब तक मनुष्य-मनुष्य के बीच सम्मानजनक रिश्ता संभव नहीं है। फिर भी, हमें इस औपन्यासिक निष्कर्ष की तह में जाकर देखना चाहिए। क्या साम्राज्यवाद की यह आलोचना शोषण के अंत की अवधारणा पर आधारित है, अथवा समस्या को व्यक्तियों के बीच संभव मित्रता, भलमनसाहत और मानवीय मूल्यवत्ता की मदद से सुलझाने की सलाह देती है? बीसवीं सदी की औपन्यासिकता इस बिंदु पर समाज के संघर्षों से मुँह मोड़ती है और सार्वभौम मूल्यों को गढ़ने की कोशिश करती है। यह कोशिश उसे कृत्रिम और अमूर्त बनाती है। रहस्यवाद इसी का परिणाम है जिसका आधुनिकतावादी चिंतन में बोलबाला है। यह देखकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि **ए पैसेज टु इंडिया** का एक अन्य प्रमुख ब्रिटिश पात्र भारतीय मनीषा का कायल है और प्रायः अपने में मगन रहता है। यह नारी पात्र धीरे-धीरे हिंदुस्तानी जनता के बीच लगभग पूजा जाने लगता है। फोर्स्टर को इस परिप्रेक्ष्य के तहत कीर्तन, कृष्ण पूजा, आदि भी आवश्यक लगते हैं। इस तरह उदार मानवतावाद के असर में पनपने वाले फोर्स्टर के सार्वभौम मूल्य अप्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

उधर जर्मन, फ्रांसीसी और रूसी उपन्यास में यह बिखराव नहीं है। बल्कि जर्मन उपन्यास में, विशेषसकर टामन मान और काफ्का में नयी स्थिति का बेबाक चित्रण है। काफ्का पूंजीवादी स्थिति में फंसे मनुष्य को उसकी बेचारगी, करुणा और त्रासदी के साथ प्रस्तुत करते हैं और समाज में फैली एक ऐसी यांत्रिकता को प्रस्तुत करते हैं जिसने मनुष्य को अदृश्य रूप में अपना शिकार बनाया है। काफ्का में वर्तमान स्थिति के वर्णनों की भरमार है और ये वर्णन यथार्थ की एक के बाद दूसरी परत उघाड़ते जाते हैं। काफ्का के उपन्यासों में प्रस्तुत मनुष्य को दिमाग में रखकर आधुनिकतावाद से प्रभावित इस रचना को आलोचना का लक्ष्य बनाया गया है और कहा गया है कि काफ्का अपनी आधुनिकतावादी दृष्टि के कारण बीसवीं सदी के मनुष्य में नायकत्व या परिवर्तनशीलता नहीं पहचान पाते। इसका संदर्भ काफ्का की **कैसल** और **मैटामोर्फोसिस** जैसी कृतियाँ हैं। यह आलोचना एक तरह से सही भी है और नहीं भी। एक ओर इससे काफ्का का मूल भाग्यवाद सामने आता है, वहीं उस पूंजीवाद का चेहरा भी समझ आता है जो पूरे समाज तंत्र में व्याप्त हो गया है। काफ्का अपनी कृतियों में पूंजीवादी संरचना को अदृश्य और बेहद संवेदनहीन वस्तु के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

जर्मन उपन्यास के दूसरे महत्वपूर्ण स्वर टामस मान में सामाजिकता पर बल मिलता है। मान सचेत रूप से पूंजीवाद की आलोचना करते हैं और दिखलाते हैं कि असमानता और अन्याय से ग्रस्त समाज में मानव व्यहवार की अस्मिता सुरक्षित नहीं रह सकती। मान के अनुसार पूंजीवाद की सभी सकारात्मक संभावनाएँ बीसवीं सदी तक आते-आते विशेषकर प्रथम विश्व युद्ध के बाद समाप्त हो गई हैं। इस समझ के कारण अपने **मैजिक माउंटेन** शीर्षक उपन्यास में वे पात्रों की बेचैनी को गहरे असंतोष से जोड़ते हैं। लुकाच ने इस नज़रिये को बहुत महत्वपूर्ण माना है और इसे समाजवाद समर्थक कहा है। आलोचना की शब्दावली में लुकाच इसे आलोचनात्मक यथार्थवाद की संज्ञा देते हैं।

यहाँ फ्रेंच के अस्तित्ववादी लेखकों की रचनाओं का उल्लेख करना ज़रूरी है, जिन्होंने दो विश्वयुद्धों के बीच घिरे यूरोप के मध्यवर्ग की मानसिक दशा का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण किया है। आल्बेयर कामु और ज्यां पॉल सार्त्र के उपन्यासों का प्रभाव यूरोप के बाहर तीसरी

दुनिया के देशों में भी छठे-सातवें दशक में दिखाई देता है। **कामु** के **प्लेग** और **अजनबी** और सार्त्र के **उबकाई** उपन्यासों में पूंजीवादी दुनिया की अमानवीय तस्वीर उभरती है। ये उपन्यासकार अपने उपन्यासों में अस्तित्व के प्रश्न को मानव सत्व से जोड़ कर देखते हैं। व्यक्ति और समाज के द्वंद्व की जितनी तल्ख अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में दिखाई देती है, वैसी दोस्तोव्यस्की और काफ्का के लेखन में ही दिखाई देती है।

बीसवीं सदी का रूसी उपन्यास कुछ ऐसे प्रश्नों का सामना करता है जो इससे पूर्व अप्रत्याशित थे। कारण, कि रूस में होने वाला क्रांतिकारी बदलाव उपन्यास के सामने नयी आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को रखने का बायस बना। मसलन, यह सवाल उठा कि समाजवादी निर्माण के संदर्भ में उपन्यास की भूमिका क्या होनी चाहिए। यह सवाल काफी तीव्रता से शोलोखोव के उपन्यासों में, विशेषकर **धीरे बहे दोन** में उपस्थित है। शोलोखोव ने विश्व युद्ध को उसकी वास्तविकता में दिखला कर यह स्पष्ट किया कि वर्तमान स्थितियों में मनुष्य को व्यक्ति-व्यवहार से ऊपर उठकर सामाजिकता की प्रतिष्ठा करनी होगी। तभी आज का व्यक्ति उस नायकत्व को प्राप्त करेगा जिसकी समाजवादी निर्माण को ज़रूरत है।

रूसी उपन्यास में इस नज़रिये का विलोम भी दिखलाई पड़ा। सोल्ज़ेनित्सिन ने अपने उपन्यासों में समाजवादी तंत्र की खामियों और कमजोरियों को पकड़ा और वस्तुपरक ढंग से दिखलाया कि उक्त तंत्र की उपस्थिति मनुष्य की स्वतंत्रता के लिए चुनौती है। इस तरह रूसी उपन्यास के सरोकार बीसवीं सदी में बिल्कुल अलग ढंग के रहे हैं।

4.8 तीसरी दुनिया के उपन्यास

बीसवीं सदी के उपन्यास पर होने वाले साम्राज्यवादी प्रभाव ने एक आश्चर्यजनक प्रवृत्ति को जन्म दिया। है। जहाँ विशेषकर यूरोपीय उपन्यास में बिखराव आया है, वहीं बाकी दुनिया की भाषाओं में उपन्यास ने नया रूप अख्तियार किया है। अब तक हमने इस पूरे खंड में पढ़ा है कि उपन्यास का उदय और विकास पश्चिमी समाजों में हुआ जिसके पीछे वहाँ पूंजी का उदय और पूंजी के बीच होने वाला परिवर्तन था। इस पूंजी ने पश्चिमी समाजों को सक्रिय बनाया, उनमें उपस्थित सामान्य जनता को परिवर्तन के केंद्र में रखने का आधार पैदा किया और सामान्य जनता की शिरकत से सामंतवाद और राजशाही को उखाड़ फेंका। हमने यह भी पाया है कि यूरोपीय समाजों के भीतर विकसित पूंजी ने उन्नीसवीं सदी के बाद अपनी सामाजिक भूमिका को संकुचित होते देखा। पूंजी के सामने उभरा यह नया सवाल उपन्यास के लिए भी दुरूह और विकट बन गया। कारण, कि पूंजी अपने भीतर कारगर मानवीय श्रम के विरोध में काम करने लगी। इसे आपने बीसवीं सदी के उपन्यास के बारे में पढ़ते हुए महसूस किया होगा।

बीसवीं सदी में साम्राज्यवाद की उपस्थिति का दूसरा पहलू भी है। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप अनेकानेक देशों में उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष होने लगे। इन संघर्षों की प्रकृति तार्किक, ऐतिहासिक और मानवीय आदर्शों से प्रेरित थी। जिन्हें आज तीसरी दुनिया के देश कहा जाता है वहाँ की सामान्य जनता ने इस तरह के संघर्ष के दौरान अपनी संस्कृति, विचार परंपरा और राष्ट्रीय अस्मिता को परखा और इस तरह औपनिवेशिक सत्ता का विरोध किया। कई बार यह विरोध अधूरा और असफल भी रहा। इन कारकों ने अपनी संपूर्णता में विभिन्न समाजों में उपन्यास लेखन की भिन्न परंपरा अथवा परंपराएँ विकसित कीं। जिन दो-तीन परंपराओं का नाम यहाँ लिया जाना चाहिए, वे हैं लातीनी-अमरीकी उपन्यास, अफ्रीकी कथा और भारत-पाकिस्तान जैसे देशों का उपन्यास।

लातीनी-अमरीकी उपन्यास की बीसवीं सदी की लंबी कथा में विशेष पहचान है। इस पहचान का संबंध लातीनी-अमरीकी देशों के विकट सामाजिक-राजनीतिक देशों के यथार्थ से है। इस

यथार्थ में बहुत कुछ चौंकाने वाला और हिंसक है। कुछ सीमा तक इन समाजों को ऐसी अराजकता का शिकार कहा जा सकता है जो सभ्यता और बर्बरता जैसे विरुद्धों के टकराव से आती है। लातीनी-अमरीकी समाज विकसित यूरोपीय देशों का पिछवाड़ा रहे हैं। वहाँ निर्धनता, बीमारी, असमानता, कुटिलता और स्वार्थपरता का समझ में न आने वाला सामंजस्य मिलता है। बीसवीं सदी के उपन्यास ने इस यथार्थ को जिस तरीके से पकड़ा है उसकी सबसे अच्छी मिसाल गेब्रियल गार्सिया मार्खेज की रचनाएँ हैं, जिनमें उन्नीसवीं सदी के समृद्ध यूरोपीय उपन्यास से भिन्न तरीके का यथार्थवाद उपस्थित है। इस यथार्थवाद को प्रायः जादुई यथार्थवाद की संज्ञा दी जाती है चूंकि यहाँ सीधे कार्यकारण के स्थान पर चौंकाने वाले, ऊपर के अयथार्थपूर्ण दिखने वाले चित्र और बिंब मिलते हैं। मार्खेज़ के उपन्यासों के शीर्षक भी इस तरह के यथार्थवाद की तरफ संकेत करते नजर आते हैं। मसलन, मार्खेज़ के एक उपन्यास का शीर्षक है - **हैज़े की बीमारी के दिनों में प्रेम**।

लातीनी-अमरीकी उपन्यास में व्यवस्था का अत्यंत मारक रूप देखने को मिलता है, और साथ ही यह भी कि सत्ता के चरित्र को पहचान पाना असंभव है। तभी वर्णनों के सामान्य तर्क से बाहर जाकर उस तर्क को तोड़कर सत्य का निर्माण करना ज़रूरी हो जाता है। आप कई बार यथार्थ को कृत्रिमता के इस्तेमाल से बेहतर समझ पाते हैं।

अफ्रीकी उपन्यास की सबसे बड़ी समस्या भाषा रही है। मसलन, अफ्रीकी लेखक किस भाषा में लिखे। यह इतिहास की विडंबना है कि अफ्रीकी समाजों को समृद्ध स्थानीय भाषा नहीं मिली। इस कारण उन्हें अपने अनुभवों और विचारों की व्यापक सामाजिक अभिव्यक्ति के लिए औपनिवेशक स्वामियों की भाषा पर निर्भर रहना पड़ा। ये भाषाएँ प्रायः दो थीं - फ्रेंच और अंग्रेज़ी। अपनी भाषा का प्रश्न अफ्रीकी उपन्यास को हमेशा परेशान करता रहा है।

यह समस्या तब और विकट हो जाती है जब अंग्रेजी और फ्रेंच बोलने वाले श्वेत अफ्रीकी नागरिक अधिकाधिक अफ्रीकी अनुभव के विरुद्ध प्रतिक्रिया करते हैं। प्रसिद्ध अफ्रीकी उपन्यासकार नदीन गोर्डिमर का उदाहरण तीन स्तरों पर कठिनाई पैदा करता है। नदीन गोर्डिमर श्वेत रंग की हैं, अफ्रीकी हैं और स्त्री हैं। बल्कि इससे भी आगे वे राजनीतिक दृष्टि से लैस हैं जो बीसवीं सदी के यूरोपीय उपन्यास लेखकों के बारे में सही नहीं है। इसी तरह अचेबे और गूगी अंग्रेज़ी में लिखते हैं, लेकिन रचना में वे अफ्रीकी क्रांतिकारी चेतना के वाहक हैं। अनेक अफ्रीकी कथा लेखकों का प्रमुख सरोकार यह है कि उनकी मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि उन्हें निरंतर पश्चिम की ओर खींचती है, जो भीतर से उन्हे अपनी संस्कृति के प्रति अपराध बोध देता है। लेकिन भाषा और औपन्यासिक रूप से जुड़ी समस्याओं के बावजूद अफ्रीकी उपन्यास बीसवीं सदी का अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम बनकर उभरता है।

अंत में हमें बीसवीं सदी के उपन्यास का एक अन्य रूप भी दिखता है जिसके अंतर्गत उत्तर आधुनिक विचारधारा का प्रतिफलन मिलता है। कथा लेखन का यह रूप पूर्व औपनिवेशिक समाजों के उच्च मध्य वर्ग में पनपा है। इस कथा लेखन की प्रभावी भाषा अंग्रेज़ी है और कुछ सीमा तक इस नाते भी एक अंतर्राष्ट्रीय उपन्यास की तस्वीर सामने आने लगी है। वी एस नायपाल, सलमान रुश्दी, रोहिंटन मिस्त्री, आदि इसी श्रेणी के लेखक हैं। इस उपन्यास लेखन की सबसे बड़ी सीमा यह है कि यह बेहद अकादमिक है और स्वयं को संचार माध्यम, शिक्षा संस्थान, आदि की मदद से पाठकों के साथ जोड़ती है।

4.9 सारांश

आपने एम एच डी-13 के खंड 3 की चौथी इकाई का अध्ययन कर लिया है। इस इकाई में आपने अमरीकी, यूरोपीय और तीसरी दुनिया के बीसवीं सदी के उपन्यासों के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की है। बीसवीं सदी का उपन्यास शुरू से ही विश्व युद्धों और पूंजीवादी संकट

के कारण समस्याग्रस्त हुआ। केवल वही उपन्यास विकसित हो पाया जो पूंजीवाद को बाहर से पहचानने की कोशिश करता था या उसके विरोध में खड़ा था। शुरू में कुछ उपन्यासों ने पूंजीवाद की आंतरिकता को भी समझा - मसलन, आधुनिकतावादी उपन्यास ने। लेकिन शीघ्र ही इस उपन्यास में विकास की संभावनाएँ समाप्त हो गईं। इसके विपरीत एक नये ढंग का उपन्यास लातीनी-अमरीकी देशों में तथा अफ्रीका महाद्वीप में उभरा। समाजवादी देशों की कुछ कथा रचनाओं के साथ-साथ हम केवल लातीनी-अमरीकी और अफ्रीकी उपन्यास को ही महत्व के स्तर पर स्वीकार कर सकते हैं।

अभ्यास

1. बीसवीं सदी के उपन्यास लेखन की विशिष्टताओं का मूल्यांकन कीजिए।
2. तीसरी दुनिया के उपन्यासों का संक्षिप्त उल्लेख करते हुए बताइए कि ये किस रूप में उपन्यासों की यूरोपीय परंपरा से अलग है।
3. उपन्यास रचना के संदर्भ आधुनिकतावाद और यथार्थवाद का अंतर स्पष्ट कीजिए।

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. रैल्फ फॉक्स : उपन्यास और लोकजीवन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. जार्ज लुकाच : उपन्यास का सिद्धांत, मैकमिलन कं. इंडिया लि., नई दिल्ली।

ROUGH WORK

ROUGH WORK

ROUGH WORK

ROUGH WORK